ग. ६२६

[illegible]

[illegible]

[illegible]

दोहा–गौरि गिरा गणराज श्री, हरि हर ब्रह्म मनाय ॥ श्रीपुरुषोत्तममासकी, भाषा लिखत बनाय ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीमत् लम्बोदर ईशाननन्दन आनन्दके बढानेवाले आप विघ्नरूपी वल्लीके नाश करनेको कुठार हो अशुभ दूर करते हो मैं आपकी शरणको प्राप्त होताहूँ ॥ १ ॥ मैं सद्गुरुके चरणकमलको प्राप्त होताहूं जिनकी कृपालेशसे आनन्दित हो सज्जन प्रपंचरूपी सागरके पार होजाते हैं ॥ २ ॥ किसी समय तीर्थयात्राके उद्देशसे परमधार्मिक पुराणके जाननेवाले व्यासजीके शिष्य धर्म अर्थ काम मोक्षकी विद्यामें चतुर

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः ॥ श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ श्रीमल्लंबोदरेशाननंदनानंदवर्द्धन ॥ विघ्नवल्ली-कुठारेश त्वां प्रपद्ये महाशुभम् ॥१॥ वंदे सद्गुरुपादाब्जं यत्कृपालेशनंदिताः ॥ जायंते सज्जनाः सद्यः प्रपंचार्णवपारगाः॥२॥ कदाचित्पर्यटंस्तीर्थयात्रामुद्दिश्य धार्मिकः ॥ सूतः पौराणिको व्यासशिष्यो धर्मार्थकोविदः ॥ ३ ॥ बहुतीर्थाम्भसि स्नातः समगान्नैमिषालयम् ॥ तत्रापश्यद्द्विजगणैर्वेष्टितं शौनकं प्रभुम् ॥ ४ ॥ मूर्तिमद्भिरिवादित्यैर्वेदवेदांगपारगैः ॥ दिगंबरैर्मुक्तकेशैरंबुवाताशनैरपि ॥ ५ ॥ निराहारैर्निष्कपटैस्तपसा दग्धकिल्बिषैः ॥ आब्रह्मस्पृहणीयैः सच्छ्रद्धापूतांतरात्मभिः ॥ ६ ॥ आस्तिक्यैर्ब्रह्मसंदोहचिंतानिस्तीर्णहायनैः ॥ परिशंकितमार्तण्डैः शापानुग्रहकारकैः ॥ ७ ॥ बह्वृचैः सामगैर्दिव्यैर्यजुषां गण-पाठकैः ॥ आथर्वणैरुग्रतेजैः सर्वलोकनमस्कृतैः ॥ ८ ॥

सूतजी ॥ ३ ॥ अनेक तीर्थोंमें स्नान करके नैमिषारण्यमें आये; वहां ब्राह्मणोंके सहित कुलपति शौनकजीको देखा ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाश-मान वेदवेदांगके पारगामी दिगम्बर खुले केश जल और पवनके आहारवाले ॥ ५ ॥ निराहार रहनेवाले कपटसे रहित तपसे क्षीणपाप ब्रह्मपर्यन्त श्रेष्ठ श्रद्धासे पवित्र आत्मावाले ॥ ६ ॥ आस्तिक्य ब्रह्मज्ञानके पात्र चिन्तासे रहित सूर्यके शंकित करनेवाले शापानुग्रह करनेमें समर्थ ॥ ७ ॥ बहुत ऋचा अर्थात् ऋग्वेदके जाननेवाले साम गानेवाले दिव्य यजुर्वेदी गणोंके पवित्र करनेवाले अथर्वज्ञाता उग्र तेजस्वी सब लोकोंसे नमस्कृत ॥ ८ ॥

JAIPUR.

बहुत ऋचाओंके जाननेवाले वृद्धसम्मत भार्गवकुलोत्पन्न देवताओंमें इन्द्रकी समान ॥ ९ ॥ इनको देखतेही उन्होंने सत्य और विनयवान पवित्र ऋषिको प्रणाम किया और प्रीतिसे हाथ जोडे, वह सुन्दर लोचन सुन्दर वचन कहनेवाले थे ॥ १० ॥ उन ब्राह्मी लक्ष्मीसे विराजमान महातेजस्वीने उनको देख इस प्रकारकी प्रसन्नता प्राप्त की जिस प्रकार मृतकशरीरमें प्राण आजाते हैं ॥ ११ ॥ और हर्षसे गद्गद कण्ठ हो मुनीश्वरने उन सूतजीसे कहा; हे महाभाग सूत ! आओ, तुम बडे भाग्यवान् हो ॥ १२ ॥ तुम अत्यन्त शुभशील हो जो मेरे नेत्रगोचर हुए हो ॥ १३ ॥ तुम चिरकालतक

बह्वृचं भार्गवमुनिं शौनकं वृद्धसंमतम् ॥ शिष्यैरुपेतं श्रीमद्भिर्गीर्वाणैरिव वासवम् ॥ ९ ॥ दृष्ट्वाशु ननामैनं सूतो वि-
नयवाञ्छुचिः ॥ प्रयतः प्रांजलिः प्रह्वः शिववाक् शुभलोचनः ॥ १० ॥ तमालोक्य महातेजा ब्राह्म्या लक्ष्म्या विरा-
जितः ॥ स जातोऽतीव हृष्टात्मा प्राणान्प्राप्य यथा तनुः ॥ ११ ॥ हर्षगद्गदया वाचा तमुवाच मुनीश्वरः ॥ एहि
सूत महाभाग भाग्यवानसि सांप्रतम् ॥ १२ ॥ अत्यंतशुभशीलस्त्वं यन्मे दृष्टोऽसि वै भवान् ॥ १३ ॥ चिरंजीव चिरं
पाहि गृणतो नः शुभानन ॥ तिष्ठस्वोच्चासने शुभे मद्दत्ते धूतपातक ॥ १४ ॥ श्लाघनीयोऽसि पूज्योऽसि व्यासशिष्य-
शिरोमणे ॥ कथयस्व कथामेकां पृच्छामि त्वां हरिप्रियाम् ॥ १५ ॥ चिंतितां चिरकालं मे हृदये परिवर्तिनि ॥
नास्ति त्वत्सदृशो भूमौ संदेहतिमिरापहः ॥ १६ ॥ एवं पृष्टः शौनकेन सूतश्चातुर्यभूषणः ॥ प्रत्युवाच प्रसन्नात्मा
विनयानतकन्धरः ॥ १७ ॥

जीओ हमको संसारसागरसे पार करो, आप ऊंचे आसनपर बैठिये यह हम आपके लिये प्रदान करते हैं ॥ १४ ॥ आप प्रशंसाके योग्य व्यासशिष्य सबके शिरोमणि हो मैं तुमसे एक कथा पूछताहूं सो आप कहिये वह नारायणसम्बन्धी कथा है ॥ १५ ॥ वह बहुत कालसे विचारी हुई मेरे हृदयमें वर्तमान है आपके समान कोई अन्धकारका दूर करनेवाला नहीं है ॥ १६ ॥ जब चतुराईके भूषण सूतजीसे इस प्रकार पूछागया तब वह प्रसन्न हो

विनयसे शिर झुका कहने लगे ॥ १७॥ सूतजी बोले—शौनकजी ! सुनिये जिस कारण मैं यहां आयाहूं; हे करुणानिधे ! आपहींके दर्शनकी अभिलाषा थी ॥ १८॥ हे स्वामिन् ! प्रथम मैं पुष्करतीर्थको गयाथा वहां स्नान कर देवता पितरोंको तृप्त कर ॥ १९॥ फिर पापनाशिनी यमुनाके तटपर गया । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! वहांसे पुष्कल तीर्थको गया ॥ २० ॥ फिर गंगामें स्नान कर काशी गया वीणा कृष्णवेणी गण्डकी पुलहाश्रम ॥ २१ ॥ धेनुमती रेवती सरस्वतीके तटमें तीन रात रहकर हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! फिर मैं गोदावरीको गया ॥ २२ ॥ सीता अलकनंदा यवटोदा कृतमाला कावेरी निर्विंध्या ताम्रपर्णिका ॥ २३ ॥ तापी वैहायसी नंदा पापमोचनी नर्मदा पयोष्णी सुरता शुभ्रा अधः दोनों शोणभद्र नद ॥ २४ ॥ हे विप्र ! भद्रा दृषद्वती जो तपस्वियोंसे सेवित रहती है इस प्रकार उसमें स्नान कर पापरहित हो चर्मण्वती नदीके तटपर आया ॥ २५ ॥ फिर वहांसे नियमित हो कल्याणी जगदम्बाके दर्शनको गया जो देवी सम्पूर्ण भय और संसारभय नाश करनेवाली है ॥ २६ ॥

सूत उवाच ॥ शृणु विप्रेश वक्ष्याम यतोऽहमागतः प्रभो ॥ त्वदीयदर्शनाह्लादपूरितः करुणानिधे ॥ १८ ॥ आदावहं गतः स्वामिंस्तीर्थं पुष्करसंज्ञितम् ॥ स्नात्वाचम्य च संतर्प्य सुरानृषिगणान्पितॄन् ॥ १९ ॥ ततः प्रयातो यमुनामापगां पापनाशिनीम् ॥ तस्यानु वै गतस्तीर्थं पुष्कलं भो द्विजेश्वर ॥२०॥ सुरनद्यामनुस्नातस्ततः काशीमुपागतः ॥ वीणायां कृष्णवेणायां गण्डक्यां पुलहाश्रमे ॥ २१॥ धेनुमत्यां तु रेवत्यां ततः सरस्वतीतटे ॥ त्रिरात्रमुषितो ब्रह्मंस्ततो गोदावरीं गतः ॥ २२ ॥ सीतामलकनंदां वा यवटोदामथो नदीम् ॥ कृतमालां च कावेरीं निर्विंध्यां ताम्रपर्णिकाम् ॥ ॥ २३ ॥ तापीं वैहायसीं नदां नर्मदां पापमोचनीम् ॥ पयोष्णीं सुरतां शुभ्रामधःशोणानदद्वयम् ॥ २४ ॥ भद्रां दृषद्वतीं विप्र तापसैरुपसेविताम् ॥ पापसंघान्नाशयित्वा ततश्चर्मण्वतीं नदीम् ॥ २५ ॥ ततः प्रयातः प्रयतः कल्याणीं जगदंबिकाम् ॥ सर्वाभयकरीं देवीं संसारभयनाशिनीम् ॥ २६ ॥

जगद्धात्री महामाया सुरेश्वरीको नमस्कार करके फिर सिद्धक्षेत्रमें आनकर प्राप्त हुआहूँ ॥ २७ ॥ हे श्रेष्ठ ! इनके सिवाय और भी सिद्ध क्षेत्रोंमें गया फिर कुरुजांगल देशोंमें गया जहां भगवान् प्रभु ॥ २८ ॥ व्यासपुत्र महातेजस्वी शुकदेवजी ब्रह्मरूप पापरहित प्राप्त हुए थे ॥ २९ ॥ जहां श्रीकृष्णके ध्यानमें मन लगाये सबके उपकारी राजोंमें शिरोमणि राजा परीक्षित् जन्ममरणकी निवृत्तिके निमित्त ॥ ३० ॥ वह महाबाहु राजा विरक्त होकर देहादि सम्पूर्ण वस्तुओंको मलकी समान मानता हुआ स्थित था ॥ ३१ ॥ वहां अपनी इच्छासे घूमते हुए उसके अनुग्रह करनेको आये

नमस्कृत्य जगद्धात्रीं महामायां सुरेश्वरीम् ॥ सिद्धक्षेत्रं सदा रम्यं प्राप्तवान्भुवि संस्तुतम् ॥ २७ ॥ एतेष्वन्येषु तीर्थेषु व्रजन्नागतवान्विभो ॥ कुरुजांगलकं देशं यत्रागाद्भगवान्प्रभुः ॥ २८ ॥ व्यासपुत्रो महातेजाः शुकदेवः प्रतापवान् ॥ ब्रह्मभूतो मुनिवरः श्रीमान्विगतकल्मषः ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णपदविन्यस्तमना भूतोपकारकः ॥ जन्ममृत्युनिवृत्त्यर्थं राजा क्षत्रशिरोमणिः ॥ ३० ॥ विरक्तस्य महाबाहोर्विष्णुरातस्य भूपतेः ॥ देहादि सकलं वस्तु मलभूतं तु मन्यते ॥ ॥ ३१ ॥ यदृच्छयागतस्तत्र तस्यानुग्रहकारणे ॥ श्रुत्वा तमागतं दिव्यं मुनिभिः परिवारितम् ॥ ३२ ॥ गतोऽहमपि तत्रैव संस्थितस्तदनुग्रहात् ॥ श्रुत्वा विष्णुकथास्तत्र भवसागरमोचनीः ॥ ३३ ॥ चित्तं कृत्वा मनोधीर ऐहिकामुष्मिकां गतिम् ॥ निराकृत्य हरेः स्थानमंजसैव प्रपद्यते ॥ ३४ ॥ तत्रानेकाः कथाः श्रुत्वा ब्रह्मरातप्रसादतः ॥ गते परीक्षिति स्थानमनावर्तनमुत्तमम् ॥ ३५ ॥

उन दिव्य महात्माओंको मुनियोंसे युक्त आया जान ॥ ३२ ॥ मैंभी वहां गया और उसके अनुग्रहसे स्थित हुआ वहां भवसागरसे छुडानेवाली विष्णुकी कथा सुनी ॥ ३३ ॥ जो मनुष्य एकान्त मनसे धीरतायुक्त कथा सुनते हैं उनको उभयलोककी प्राप्ति होती है और पापरहित हो वह नारायणके स्थानको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥ वहां शुकदेवजीके प्रसादसे अनेक कथाओंको श्रवण कर परीक्षित्के पुनरागमनरहित स्थानके प्राप्त होनेपर ॥ ३५ ॥

किं जहां जाकर कोई शोच नहीं रहता मनीषी जिसकी अभिलाषा करते हैं वहां राजा गया; नारायणकी कथा सुननेमे यह गति हुई इसमें कुछ चित्र नहीं है ऐसा जानकर ॥ ३६ ॥ कि, एकही बार जिनका स्मरण करनेसे पातकोंके समूह नष्ट होजाते हैं जिससे फिर मनुष्यका जन्म नहीं होसकता है ॥ ३७ ॥ फिर इस साधुसम्मत परीक्षित्की मुक्ति क्यों न होती है, हे ब्राह्मणो ! ऐसा विचारकर मैं आपके समीप ॥ ३८ ॥ यहां आनकर प्राप्त हुआ हूं कि आप यहां यज्ञ कररहे हैं आपको देखकर प्रसन्न हुआ हूं अव मैं आपसे यह जाननेकी इच्छा करता हूं कि आपका क्या निश्चय

यत्र गत्वा न शोचंति स्पृहयंति मनीषिणः ॥ नैतच्चित्रं गतिं ज्ञात्वा हरिलीलाश्रुतेः किल ॥ ३६ ॥ सकृद्यन्नाम संस्मृत्य यावत्पातकसंततिम् ॥ दग्धुं शक्तो भवेत्कर्त्तुं जन्मनापि न शक्यते ॥ ३७ ॥ तत्कथं मुच्यते नायं परीक्षित्साधुसंमतः ॥ इति संचिंतयन् विप्राः सन्निधिं भवतामहम् ॥ ३८ ॥ प्राप्तवान्सत्रिणो ज्ञात्वा भवतः कलितो भवात् ॥ तदनुज्ञामथेच्छामि यत्कर्तास्यद्य निश्चितम् ॥ ३९ ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मां स्मरथ सत्तमाः ॥ स्वल्पभाग्यतरं मूढं सर्वथा ज्ञानजल्पकम् ॥ ४० ॥ जातं च प्रतिलोमेन मूर्खं पंडितमानिनम् ॥ एवं चोक्त्वा ततो धीमान्वेदवेदांगपारगम् ॥ ४१ ॥ शौनकं प्रत्युवाचेदं प्रहसञ्श्लक्ष्णया गिरा ॥ साधु पृष्टं महाभाग निष्पापोऽसि भवान् किल ॥ ४२ ॥ त्वत्समो नास्ति लोकेषु वेदव्यासगृहालयम् ॥ प्रश्नमेनं वदस्वाद्य यन्मे हृदि चिरं स्थितम् ॥ ४३ ॥

है ॥ ३९ ॥ हे श्रेष्ठ ! जो आप मुझे स्मरण करते हैं इस कारण मैं धन्य और अनुगृहीत हूं मैं स्वल्पभाग्ययुक्त मूढ और वृथा ज्ञानजल्पक हूं ॥ ४० ॥ प्रतिलोमसे उत्पन्न मूर्ख और वृथा पंडितमानी हूं परम आप यह जानकर वह बुद्धिमान् वेदवेदांगके पारगामी ॥ ४१ ॥ शौनकजीसे हँसते हुए मनोहर वाणीसे बोले; हे महाभाग ! आपने भली वात पूछी है आप पापरहित हो ॥ ४२ ॥ आपकी समान लोकमें कोई नहीं है आप वेदव्यासके गृहरूप हो सो आप मेरा प्रश्न कहिये जो चिरकालसे मेरे हृदयमें स्थित है ॥ ४३ ॥

हे ब्रह्मन् ! तुम्हारे सिवाय संदेहरूपी रोगकी औषधी नहीं है चैत्रादि महीनोंके ईश्वरादि देवता हैं ॥ ४४ ॥ परन्तु यह तो आप कहिये कि, अधिमासका स्वामी कौन है पूज्य और मानका देनेवाला कौन है उसमें क्या व्रत दान और भोजन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ उसमें जप दान उपवास और साधन क्या है सो कहिये किस कृत्यसे देवता प्रसन्न होते और क्या फल देते हैं ॥ ४६ ॥ हे सूत ! औरभी आप विधान कहिये; कारण कि व्यासजीके आप शिष्य हो जो मनुष्य पृथ्वीमें परभाग्यानुवर्ती उत्पन्न होते हैं ॥ ४७ ॥ नित्य दरिद्रसे पीडित रोगी पुत्रोंकी

न कश्चित्त्वदृते विद्वन् संदेहामयभेजषम् ॥ सात मध्वादयो मासाः सेश्वरास्ते श्रुता मया ॥ ४४ ॥ अधिमासस्य कः स्वामी पूज्यमानश्च कस्तदा ॥ तस्मिन् किंस्वित्प्रकर्त्तव्यं व्रतदानादि भोजनम् ॥४५॥ जपदानोपवासादि साधनं किंतु भण्यताम् ॥ तुष्येत्कृतेन को देवः किं फलं वा प्रयच्छाति ॥ ४६॥ अन्यच्च ब्रूहि नः सूत व्यासशिष्योऽस्ति वै भवान् ॥ नरा ये भुवि जायंते परभाग्यानुवर्त्तिनः ॥ ४७ ॥ दारिद्र्यपीडिता नित्यं रोगिणः पुत्रकांक्षिणः ॥ जडा मूका दांभिकाश्च हीनविद्याः कुचेष्टिनः ॥ ४८॥नास्तिका लंपटा रौद्रा जर्जराः परसेविनः ॥ नष्टाशा भग्नसंकल्पाः क्षीणकृत्याः कुरूपिणः ॥ ४९ ॥ निःश्वासाश्रोपमायत्ताः सततं दुःखभागिनः ॥ इष्टपुत्रकलत्रादिपितृमातृवियोगिनः ॥ ५० ॥ शोकदुःखातिशुष्कांगाः स्वेष्टवस्तुविवर्जिताः ॥ पुनर्नैवंविधास्ते स्युर्यत्कृतेन श्रुतेन च ॥५१॥नारीणामपि भो सूत दृष्ट्वा दुःखान्यनेकशः ॥ वैधव्यवांध्यदौर्भाग्यहीनांगत्वाद्युराधयः ॥ ५२ ॥

इच्छा करनेवाले जड मूक पाखण्डी हीनविद्या कुचेष्टावाले ॥ ४८ ॥ नास्तिक लम्पट रौद्र जराग्रसित परसेवी नष्ट आशावाले भग्नसंकल्प क्षीणकृत्य कुरूपी ॥ ४९ ॥ निःश्वास लेनेवाले उपमामें तत्पर निरंतर दुःखभागी पुत्र कलत्र मित्रादि इष्ट जन और माता पिताके वियोगी ॥५०॥ शोक दुःखसे शुष्क अंगवाले अपनी इष्टवस्तुसे रहित इस प्रकारके वह किसी कृत्य वा शास्त्रके सुननेसे नहीं सो कहिये ॥५१ ॥ हे सूत ! इसी प्रकार स्त्रियोंके अनेक

दुःख देखकर विधवा वंध्या दुर्भाग्ययुक्त हीनांग महारोगिणी ॥५२॥ दुःखसे पीडित सर्वांगवाली महांदुःखसे युक्त हैं सो आप शीघ्रतासे इनके दुःख दूर होनेके उपाय कहो जिससे मैं प्रसन्न हूं ॥५३॥ हे प्रिय! आप सर्वज्ञ और सब शास्त्रोंके निधान हो। सूतपुत्र यह वचन सुन बहुत प्रसन्न हुए ॥५४॥ और शंख चक्र गदाधारी हृषीकेशको स्मरण करते हुए बोले ॥ ५५ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये ऋषिसूतसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूतजी बोले—हे द्विजराजशिरोमणे ! आप एकाग्रचित्त होकर सुनो । एक समय ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठिरने श्रीकृष्णसे

दुःखपीडितसर्वांगा वीक्ष्य दुःखान्विताः प्रभो ॥ तद्ब्रूहि त्वं हि मामांशु येन प्रीतोऽभवं पुनः ॥५३॥ सर्वज्ञः सर्वशास्त्राणां निधानं त्वमसि प्रिय ॥ सूतपुत्रस्त्विमां वाचं श्रुत्वा सहृष्टमानसः ॥५४॥ प्रत्युवाच हृषीकेशं स्मरञ्शंखगदाधरम् ॥५५॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये ऋषिसूतसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ शृणुष्वैकाग्रचित्तस्त्वं द्विजराजशिरोमणे ॥ श्रीकृष्णं पांडुतनयो ज्येष्ठः पप्रच्छ धर्मवित् ॥ १ ॥ धार्मिकः सत्यसंधो यः कुंतीहृदयतोपकः ॥ यदा द्यूतजितः पार्थः क्लेशितो धृतराष्ट्रजैः ॥ २ ॥ कोपेन वेणीं संगृह्य कृष्णा दुःशासनेन वै ॥ आकृष्टा तत्र वासांसि श्रीकृष्णेनैव रक्षिता ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरः स्वदेशं च त्यक्त्वा कामवनं गतः ॥ ज्ञातवृत्तांत आगत्य वासुदेवः प्रतापवान् ॥ ४ ॥ यादवैरावृतः श्रीमान् सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥ दृष्ट्वा तानुरुतापान्वै रौरवाजिनवाससः ॥ ५ ॥

पूछाथा ॥ १ ॥ धार्मिक सत्यसंध कुंतीके हृदयको संतोष करनेवाले जब द्यूतसे दुर्योधनादिद्वारा जीते गये तब क्लेशित हुए ॥ २ ॥ और उसी समय क्रोधसे द्रौपदीके बाल पकडने और वस्त्र खींचे जाने पर जब श्रीकृष्णने रक्षा की ॥ ३ ॥ और युधिष्ठिर अपना देश छोडकर वनमें गये तब उनका यह वृत्तान्त सुनकर प्रतापवान् श्रीकृष्णजी ॥ ४ ॥ यादवोंसे युक्त श्रीमान् सात्यकि आदिके सहित इनको रुरुसम्बन्धी मृगचर्म धारण किये देख ॥ ५ ॥

कि जटाधारी धूलिसे रूखे शरीरयुक्त हैं इसी प्रकारकी पांचालीकी भी दशा देख वह भक्तवत्सल भक्तके दुःखसे दुःखी हो ॥ ६ ॥ कि वह सत्पुरुषोंके पति धृतराष्ट्रके पुत्रोंसहित त्रिलोकी भस्म करनेकी इच्छा करने लगे और वह विश्वात्मा भ्रुकुटी कुटिल करने लगे ॥ ७ ॥ युगान्ताग्निकी समान आकारवाले कोटिसूर्यके समान शरीर किये क्षुभित सागरको जलाते हुएभी श्रीकृष्णजी ॥ ८ ॥ उस समय सीताके वियोगसे दुःखी रामचन्द्रकी समान अर्जुनको लक्षित होने लगे तब अर्जुन वीर यह देख रोमाञ्चयुक्त होगया ॥ ९ ॥ तब वह विष्णु जगत्पति विभुको प्रणाम करता हुआ स्तुति

जटिलान्धूलिरूक्षांश्च पांचालीमपि तादृशीम् ॥ भक्तदुःखेनातिदुःखी सर्वदा भक्तवत्सलः ॥ ६ ॥ दग्धुकामः स त्रैलोक्यान् धार्त्तराष्ट्रान्सतां पतिः ॥ चक्रे कोपं स विश्वात्मा भ्रुकुटीकुटिलेक्षणः ॥ ७ ॥ युगांताग्निसमाकारः कोटिसूर्य-कलेवरः ॥ ददृशे रुक्मिणीनाथो दिधक्षन्निव सागरम् ॥ ८ ॥ सीतावियोगं स तदा साक्षाद्दशरथात्मजः ॥ तमालक्ष्य तदा वीरो ह्यर्जुनो जातवेपथुः ॥ ९ ॥ प्रणम्य स्तुतवान्विष्णुं भवाय जगतां विभुम् ॥ बिडोजानुजमत्युग्रं कालाग्निमिव दीपितम् ॥ १० ॥ अर्जुन उवाच ॥ देवदेव महादेव क्षमस्व जगदीश्वर ॥ नायं ते कोपसमयः संयच्छानंदय प्रभो ॥ ११ ॥ भूतभव्यभवन्नाथ भक्तेशोपात्तविग्रह ॥ यच्चक्षुःपतनेनैव जगतः प्रलयो भवेत् ॥ १२ ॥ कृपां कुरु जगन्नाथ साधूनां त्वं परायणः ॥ कंसकेशिकचाणूरमुष्टिकारिष्टमर्दनः ॥ १३ ॥

करने लगा कारण कि उस समय कालाग्निकी समान उनका महाक्रोध बढरहाथा ॥ १० ॥ अर्जुनने कहा, हे देवदेव महाबाहो ! आप क्षमा कीजिये। हे विभो ! यह आपके क्रोधका समय नहीं है इससे रोककर आनन्द दीजिये ॥ ११ ॥ भूतभव्यभवद्रूप अपनी इच्छासे शरीर धारण करनेवाले आपके भ्रू फेरनेसे ही जगत् नष्ट होसकता है क्रोधकी आवश्यकता क्या है ॥ १२ ॥ हे जगन्नाथ ! कृपा कीजिये, आप साधुओंके परायण हो। हे कंस केशी चाणूर मुष्टिक और अरिष्टके मारनेवाले ! ॥ १३ ॥

व्योमासुर वत्सासुरके निधनकर्ता कालियके शासक बकासुर और यक्षके नियामक हे महाराज! रक्षा करो २ यह जगत् आपहीका है ॥ १४ ॥ हे विदांवर! आपही कहिये कि आपके क्रोध करनेपर कौन रक्षा कर सक्ता है इस प्रकार स्तुति कर शत्रुघाती अर्जुनने श्रीकृष्णको प्रणाम किया ॥ १५ ॥ तब क्रोधरहित होनेसे श्रीकृष्ण अत्यन्त शोभित हुए और वे सब कोई तारागणके समान शोभित हुए ॥ १६ ॥ तब द्वारकाके स्वामी जगत्के आदिकारण भक्त समूहके तारक संसाररोगके निवारक ॥ १७ ॥ गोकुलके आनन्ददाता देवेश लीलासे शरीर धारण करनेवाले हरिको नमस्कार कर युधिष्ठिरजी यही बात

व्योमवत्साहिकालेयबकयक्षनियामकः ॥ त्राहि त्राहि महाराज जगदेतत्त्वदीयकम् ॥ १४ ॥ त्वत्कोपदग्धं कस्त्राता कृपां कुरु विदांवर ॥ इति स्तुत्वा ननामाशु फाल्गुनः परवीरहा ॥ १५ ॥ वीतरोषो हरिर्जातः शुशुभे सात्वतां पतिः ॥ सर्वे शुशुभिरे तत्र तारका इव निर्मलाः ॥ १६ ॥ ततः कुशस्थलीनाथं जगतामादिकारणम् ॥ तारणं भक्तसंघानां वारणं भवसंततेः ॥ १७ ॥ गोकुलानंददेवेशं लीलागोत्रधरं हरिम् ॥ नत्वापृच्छत्सुमनसा त्वं च पृच्छसि मां तु यत् ॥ ॥ १८ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्कृष्णो विष्णुः कृष्णाहिमर्दनः ॥ दध्यौ मुहूर्तमात्रं तु सिद्धसेवितपंकजः ॥ १९ ॥ ध्यात्वाऽऽश्वास्य सुहृद्वर्गं कृष्णां शशिनिभाननाम् ॥ वक्तुमारभत प्रश्नं यः कृतो धर्मसूनुना ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ शृणु राजन् महाभाग सर्वधर्मभृतां वर ॥ प्रश्नोऽयं दुर्द्धरः साधो मदन्येन कुरूद्वह ॥ २१ ॥

पूछने लगे जो तुमने मुझसे पूछी ॥ १८ ॥ यह वचन सुन कालियनागमर्दनकर्ता विष्णु कृष्ण एक मुहूर्तमात्र ध्यान करतेहुए जिनके चरणोंका सिद्ध मुनि सेवन करते हैं ॥ १९ ॥ इस प्रकार ध्यान कर अपने सुहृद्वर्ग और पांचालीको समझाकर श्रीकृष्णजी युधिष्ठिरके किये प्रश्नको कथन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीकृष्ण बोले—हे राजन्! महाभाग सर्व धर्मोंके जाननेवाले! सुनिये. हे कुरूद्वह! मेरे सिवाय दूसरा तुम्हारा प्रश्न कथन करनेको समर्थ नहीं है ॥ २१ ॥

अनुक्रमसे तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर पृथक् २ देताहूं. हे प्रभो ! आजतक मैंने किसीके आगे यह कथन नहीं किया ॥ २२ ॥ चैत्रादिक महीने लव पक्ष नाडिका आधा पहर पहर महीना दिन मुहूर्त दोनों अयन ॥ २३ ॥ वर्ष युग संख्या क्रमसे चारों युग क्रमसे सब नदी समुद्र कूप हृद बावडी उज्ज्वल जलके झरने ॥ २४ ॥ औषधी द्रुमवल्ली सम्पूर्ण द्रुम (वृक्ष) वनस्पति पुर ग्राम अनेक पत्तन ॥ २५ ॥ यह सब मूर्तिमन्त स्वामीके गुणोंसे पूजित होते हैं ऐसा कोईभी नहीं जो श्रेष्ठगुणयुक्त पूजित न हो ॥ २६ ॥ अपने २ अधिकारमें स्थित हुए सबही पूजित होनेसे फल देते हैं;

अनुक्रमेण ते वत्स प्रश्नानामुत्तरं पृथक् ॥ मयापि कथितं नास्ति कस्याचित्पुरतः प्रभो ॥ २२ ॥ मध्वादयोमासवरा लवपक्षाश्च नाडिकाः ॥ यामार्द्धयामसहितो मुहूर्तस्त्वयने उभे ॥२३॥ हायनं युगसंख्यानं चतुर्युगमनुक्रमात् ॥ नद्योऽर्णवा ह्रदाः कूपा वापीपल्वलनिर्झराः ॥ २४ ॥ औषधीद्रुमवल्ल्यश्च सर्वे चैव द्रुमाश्च ये ॥ वनस्पतिपुरग्रामा गिरयः पत्तनानि च ॥२५॥ एते सर्वे मूर्तिमंतः पूज्यंते स्वामिनो गुणैः ॥ न ह्येषां कश्चिदप्यस्ति अपूज्यः प्रभुर्हूर्जितः ॥ २६ ॥ स्वे स्वेऽधिकारे सततमचत सुफलप्रदाः ॥ स्वस्वामियोगमाहात्म्याद्यथायोगेन पांडव ॥ २७ ॥ अधिमासः समुत्पन्नः कदाचिन्मनुजर्षभ ॥ तमूचुः सकला लोका असहायं जुगुप्सितम् ॥२८॥ अनर्हो मलमासोऽयं रविसंक्रमवर्जितः ॥ अस्पर्शोऽकर्मकस्तुच्छः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ २९ ॥ श्रुत्वैतद्वचनं लोकान्निरुद्योगो हतप्रभः ॥ दुःखितोऽतीव संत्रस्तो मृत्युमङ्गीचकार सः ॥ ३० ॥

हे पाण्डव ! अपने स्वामीके योगमाहात्म्यसे यथायोग्य ॥ २७ ॥ अधिमास किसी समय प्रगट हुआ है हे मनुष्यश्रेष्ठ ! उसको जनोंके बीचमें विना विचारे यह भयानक वचन कहे गये ॥ २८ ॥ यह सूर्यसंक्रान्तिसे रहित मलमास कहावेगा यह अस्पृश्य कर्महीन तुच्छ और सब कर्मसे बहिष्कृत होगा ॥ २९ ॥ यह वचन सुन वह निरुद्योग और प्रभारहित होगया और बडे दुःखसे व्याकुल हो उसने अपनी मृत्यु स्वीकार की ॥ ३० ॥

और हृदयमें चिन्ता कर यह मेरी शरणको प्राप्त हुआ, और मनमें विचार कर नारायणकी स्तुति करने लगा ॥ ३१ ॥ वैकुंठमें जाकर परमासनपर स्थित हो हाथ जोडे दोनों नेत्रोंमें जल बहाता ॥ ३२ ॥ अधिमास कहने लगा; हे देवाधिदेव जगन्निवास जगत्के गुरु भूतपति ! आपको नमस्कार है। हे अनाथोंके नाथ ! सब जगत्के पालक विश्वपालक गोपाल दीनोंके दुःख दूर कर्ता ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार आपने जानकीका रावणके घरसे उद्धार किया जैसे गौतमकी धर्मपत्नीका उद्धार किया इसी प्रकार मेरा उद्धार करो ॥ ३४ ॥ जैसे आपने दुष्ट कंसके हाथसे देवकीकी रक्षा की और

हृदये चिंतयित्वा तु मामसौ शरणं गतः॥ चेतसा चिंतयंस्तत्र तुष्टाव जगदीश्वरम् ॥३१॥ गत्वा वैकुंठभवनमास्थितः परमासने ॥ प्रांजलिः प्रणतो भूत्वा मुंचन्नश्रूणि नेत्रयोः ॥३२॥ अधिमास उवाच ॥ देवाधिदेवेश जगन्निवास जगद्गुरो भूतपते नमस्ते ॥ अनाथनाथाखिलविश्वपाल गोपाल नारायण वासुदेव ॥ ३३ ॥ यथा विभो ते निमिराजपुत्री पौलस्त्यदुष्टेन छलाद्धृता ॥ विमोचिता गौतमधर्मपत्नी तथैव मां पाहि रघुप्रवीर ॥ ३४ ॥ यथा देवकी कंसदुष्टाद्विमुक्ता चिरग्राहग्राही गजेंद्रोऽपि मुक्तः॥ जरासंधराजन्यनीता महीपास्तथा पाहि मां रुक्मिणीनाथ विष्णो ॥३५॥ यथाजामिलः कोऽपि लुब्धोऽबलायां यथा गोपिका याज्ञसेनी गरिष्ठा ॥ दरिद्री कुचैलो द्विजेंद्रोऽचिंतस्ते विभो जानकीजीवनाधीश पाहि ॥ ३६ ॥ त्वदीयं पदद्वंद्वमासाद्य तत्र ऋषेरंगना लोकमाता तवैव ॥ कृपानीरधिं शेवधिं सेवकानां कथं जानकीजीवनं नो भजामः ॥ ३७ ॥

नाकेसे ग्रहण किये गजेन्द्रको छुडाया जरासंधके हाथसे जैसे अनेक राजाओंको छुडाया, हे रुक्मिणीनाथ ! इसी प्रकार आप मेरी रक्षा करो ॥ ३५ ॥ जैसे वेश्याके लोभी अजामिलको आपने छुडाया जैसे गोपी और द्रौपदीकी रक्षा की, दरिद्र मैले वस्त्रधारी सुदामाकी जैसी रक्षा की. हे विभो जानकीजीवन ! उसी प्रकार मेरी रक्षा करो ॥ ३६ ॥ आपहीके दोनों चरणकमलकी प्राप्ति कर ऋषिपत्नी आनंदलोकको प्राप्त हुई। कृपासागर

भक्तोंसे सेवित जानकीजीवनका हम क्यों न भजन करें ॥ ३७ ॥ आपकी इच्छासे अग्नि शीतल होती है और आपकी आज्ञासे सुमेरु चलत्वको पाता है और सागर लघुत्वको प्राप्त होसक्ता है बृहस्पति जडत्वको और सूर्य अंधकारको प्राप्त हो सक्ता है । हे रुक्मिणीवल्लभ ! हमारी रक्षा क्यों नहीं करते ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्ण बोले—जब यह श्रेष्ठ मास इस प्रकार स्तुति कर विरामको प्राप्त हुआ और शोकसे पृथ्वीमें गिरा, तब उसकी प्रार्थना सुन नेत्रोंमें जल भर ॥ ३९॥ नम्र होकर आगे स्थित हुए उस अधिमाससे कहा । हे वत्स २ ! यह क्या दुःख तुम्हारे ऊपर पडा है ॥ ४० ॥

तव त्विच्छया शीततामेति वह्निश्चलत्वं सुमेरुर्नदीशो लघुत्वम् ॥ जडत्वं सुरेज्यस्तमस्त्वं दिनेशो भवान्रुक्मिणीवल्लभः किन्न पासि ॥ ३८॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ स्तुत्वैवं विररामायं यदा मासविभूषणः ॥ गत्वा धरण्यां शोकेन तत्क्षणात्साश्रुलोचनः ॥ ३९ ॥ तमुवाच विनम्रांगमधिमासं पुरः स्थितम् ॥ वत्स वत्स किमित्येवं दुःखमग्नोऽसि सांप्रतम् ॥ ४० ॥ यत्किंचिद्धृद्गतं शल्यमुद्धरामि वदाशु मे ॥ न मत्पादाब्जशरणं प्राप्य शोचितुमर्हति ॥ ४१ ॥ पतितोऽपि महाबाहो किं पुनस्त्वत्समो जनः ॥ मल्लोकं विद्धि निर्दोषं निर्दुःखमजरं वरम् ॥ ४२ ॥ त्वामत्र दुःखितं दृष्ट्वा विस्मिता मे पुरःसराः ॥ मर्तुकामोऽसि येन त्वं तद्ब्रूहि शरणं गतः ॥ ४३ ॥ अधिमास उवाच ॥ विभो वेत्सि भवान्सर्वं नाज्ञातं किंचिदस्ति ते ॥ चराचरगुरुः स्वामी साक्षी सर्वस्य चेतसः ॥ ४४ ॥

जो तुम्हारे हृदयका दुःख है वह मैं दूर करूंगा तुम कहो मेरे चरणोंकी शरणमें प्राप्त होकर फिर प्राणी शोच नहीं करते हैं ॥ ४१ ॥ हे महाबाहो ! पतित होकरभी प्राणी आपकी समान शोच नहीं करते, कारण कि मेरा लोक दोषरहित दुःखरहित जरारहित और श्रेष्ठ है ॥ ४२ ॥ तुमको दुःखी देखकर मेरे अनुचर दुःखी हुए जिस कारण तुम मरनेकी इच्छासे मेरी शरण आये हो वह कहो ॥ ४३॥ अधिमास बोला—हे विभो ! आप सब कुछ जानते हो कुछभी आपको अज्ञात नहीं है आप चराचरके गुरु स्वामी साक्षी और सबके अन्तःकरणके साक्षी हो ॥ ४४ ॥

आप कूटस्थ सबमें स्थित हो कोईभी आपसे रहित नहीं है फिर क्यों आप मेरे दुःखको नहीं जानते इससे मेरे बराबर कोई अल्पभाग्य नहीं है ॥ ४५ ॥ हे विभो ! तौ भी आप मेरे दुःखका कारण सुनिये, जो बडा अद्भुत है सब जन्तु सामान्य धर्मवाले सुखसे जीते हैं ॥ ४६ ॥ सो मैं सबसे हीन हो मृत्युकी इच्छा करता हूं । क्षण लव मुहूर्त पक्ष महीने दिन रात वे अपने नामाधिकारको प्राप्त हो देवताओंके समान प्रसन्न होते हैं परन्तु मेरा न कुछ नाम है न कोई स्वामी और न कुछ आश्रय है॥ ४७॥ ४८॥ यह निष्कर्मा है ऐसा सब मिलकर कहते हैं कि; अहो ! यह मलमास निकृष्ट है

किं मे न वेत्सि हृद्दुःखमल्पभाग्यतरस्त्वहम् ॥४५॥ तथापि शृणु मे
कूटस्थः सर्वसंस्थोऽसि न त्वया रहितः क्वचित् ॥ तत्र हीनत्वमापन्नो मृत्युमिच्छामि सत्पते ॥
भूमन्दुःखकारणमद्भुतम् ॥ सामान्यधर्मिणः सर्वे सुखं जीवंति जंतवः ॥४६॥ न मे नाम न मे स्वामी
क्षणा लवा मुहूर्त्तानि पक्षा मासा दिवा निशम् ॥४७॥ नामाधिकारप्रभुभिर्मोदंते निर्जरा यथा ॥ मलमासो निषिद्धोऽयं नित्यं व्याख्यांति
न मे किंचिद्व्यपाश्रयः ॥ ४८ ॥ निष्कर्मा च विहीनश्च सर्वे संभूय दुर्जनाः ॥ कुजीविताद्वरो मृत्युर्नित्यदग्धः कथं स्वपेत् ॥ ५० ॥
मां सदा ॥ ४९ ॥ तस्माद्धि मर्तुमिच्छामि नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ न जीविष्ये न जीविष्ये पुनःपुनरुवाच ह ॥५१॥ एवं विज्ञातिमुक्त्वा वै सोऽ-
तत्कुरुष्व महाराज यत्ते मनसि वर्त्तते ॥
धिमासस्तदा विभो ॥ विसंज्ञं निपपाताशु पादमूलमुपानतः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार सब प्राणी मुझसे कहा करते हैं ॥ ४९ ॥ इस कारण मैं मरनेकी इच्छा करता हूं जीना नहीं चाहता कुजीवनसे मृत्यु होनी श्रेष्ठ है नित्य दग्ध कैसे हो सकता है ॥ ५० ॥ हे महाराज ! जो आपके मनमें वर्तता है सो आप कीजिये मैं इस प्रकारसे न जिऊंगा न जिऊंगा ॥ ५१ ॥ इस प्रकारसे जब अधिमासने कहा तब फिर मूर्च्छित हो श्रीभगवान्‌के चरणोंमें गिर पडा ॥ ५२ ॥

इसके देखनेसे सब पार्षद विस्मयको प्राप्त होगये, हे राजन्! इस प्रकार उसे देखकर मुझको भी दया आई ॥ ५३ ॥ हे राजन् ! उस समयका वृत्तान्त सुनो मैं तत्त्वसे कहता हूँ तब मैंने दृष्टिसे गरुडजीके प्रति कथन किया ॥ ५४ ॥ तब गरुडजी अपने पंखोंसे आदरसहित उसको पवन करने लगे तब वह उठकर फिर कहने लगा। हे प्रभो! मुझे यह बात नहीं रुचती ॥ ५५ ॥ हे करुणानाथ ! जो मैं तुम्हारी शरण आयाहूं इससे मेरी रक्षा करो आप गोपियोंके हृदयकी कामाग्नि शांतकर्ता जनवल्लभ हो ॥ ५६ ॥ हे महाभाग ! तब उस कम्पित हुएके प्रति मैं कहने लगा ॥ ५७ ॥ इति

विस्मिताः पार्षदाः सर्वे तदशर्मविलोकनात् ॥ ममापि करुणा जाता पारपूर्ण नराधिप ॥ ५३ ॥ शृणु राजंस्ततो वृत्तं यत्तद्वक्ष्यामि तत्त्वतः ॥ कटाक्षेण समादिष्टः सुपर्णस्तमवीजयत् ॥ ५४ ॥ पक्षवातेन तरसा वीजयामास सादरम् ॥ उत्थितः पुनरेवाह नैतन्मे रोचते विभो ॥ ५५ ॥ पाहि मां करुणानाथ यत्ते शरणामागतः ॥ गोपीहृदयकामाग्निशमनो जनवल्लभः ॥ ५६ ॥ तमुवाच महाभागो वेपमानं मदंतिकम् ॥ ५७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्येऽधिकमासविज्ञप्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ साधु साधु सुरश्रेष्ठ यन्मामनुसृतो भवान् ॥ यत्ते दास्ये तदप्राप्यं सुरैर्ऋषिगणैरपि ॥१॥ न मामुपेतः कुत्रापि शोकवान्दृश्यते नरः ॥ तस्माद्भवतु सुस्वस्थः सर्वाधिकतरो भवान् ॥ २ ॥ कीर्त्या लक्ष्म्यानुभावेन बलेन चरितेन च ॥ शौर्यवीर्यगुणज्ञानप्रज्ञाधैर्यपराक्रमैः ॥ ३ ॥

श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये अधिकमासविज्ञप्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीभगवान् बोले, हे सुरश्रेष्ठ ! जो तुमने मेरी शरण ली इस कारण तुम धन्य हो, जो मैं तुमको दूंगा वह देवताओं और ऋषियोंको भी अप्राप्य है ॥ १ ॥ मुझको प्राप्त होकर कोई मनुष्य शोकित नहीं दीखता है इससे तुम स्वस्थ हो, कारण कि, सबसे अधिकतर हो ॥ २ ॥ कीर्ति लक्ष्मीके अनुभाव बल और चरित्र शूरता वीरता गुण ज्ञान प्रज्ञा धैर्य पराक्रमसे युक्त होनेके कारण ॥ ३ ॥

यह सब जगत् मेरा आत्मा है, शोकरहित होकर भय त्यागन करदो, तुम मासोंके अधिपति मेरी समान होगे ॥ ४ ॥ वैराग्य ऐश्वर्य धर्म अर्थ प्रताप अनुग्रह आश्रम श्री भाग्य सुख लालित्यता गुण ऐश्वर्य तप यज्ञ ॥ ५ ॥ सुख संतुष्टि करना केलि चतुरता सुष्ठुता विद्या विनय निपुणता धर्म कर्म सतुउक्ति ॥ ६ ॥ इन गुणोंसे मैं पुरुषोंसे उत्तम हूं इसी कारण पण्डितजन मुझे पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ ७ ॥ जब कि, मैं तेरा स्वामी हूं तो तू भी उत्तमताको प्राप्त हो, मनसेही तेरा नाम पुरुषोत्तम ऐसा विख्यात होगा ॥ ८ ॥ नाममात्रके ग्रहणसेही सबके पाप दूर करनेवाला होगा फिर यदि मैंने

यन्मदात्मं जगत्सर्वं वीतशोको भयं त्यज ॥ ततस्तु मम सादृश्यमश्रीयाः साधिपो भव ॥ ४ ॥ वैराग्यैश्वर्यधर्मार्थ-प्रतापानुग्रहाश्रमैः ॥ श्रीभाग्यसौख्यलालित्यगुणैश्वर्यतपोध्वरैः ॥ ५ ॥ सखे संतुष्टिकरुणाकेलिदाक्षिण्यसौष्ठवैः ॥ वि-द्याविनयनैपुण्यधर्मकर्मसदुक्तिभिः ॥ ६ ॥ एतैरन्यैर्गुणैः शुद्धैरुत्तमः पुरुषेष्वहम् ॥ तस्मादाभिज्ञासततं विदुर्मां पुरुषो-त्तम म् ॥ ७ ॥ त्वमप्युत्तमतां याहि यतोऽहं भवतः प्रभुः ॥ मनसैव हि ते नाम विख्यातं पुरुषोत्तमः ॥ ८ ॥ नाममात्रेण सर्वेषामघकंदानिकृंतनः ॥ किं पुनर्दत्तनामानि मत्कृपानितरात्मनाम् ॥ ९ ॥ यथाहं नैर्जरे चक्रे मुख्यः सर्वोत्तमो-त्तमः ॥ विधूय किल्बिषाटोपमुद्धरामि भवार्णवात् ॥ १० ॥ तथा त्वमपि भक्तानां दुःखदारिद्र्यखंडनः ॥ भविष्यास जगत्पूज्यः स्वर्धुनी सरितां यथा ॥ ११ ॥ सर्वे मासाः कृताः काम्या न मया त्वं कृतस्तथा ॥ कर्मदाः सन्त्विमे सर्वे निष्कर्मफलदो भवान् ॥ १२ ॥

नामकरण किया तो मेरी कृपासे तू क्यों न श्रेष्ठ हो ॥ ९ ॥ जिस प्रकार देवचक्रमें मैं सबसे श्रेष्ठ हूं इसी प्रकार मनुष्योंके पाप दूर कर संसारसागरसे पार कर देताहूं ॥ १० ॥ इसी प्रकार तुमभी अपने भक्तोंके दुःख दरिद्र दूर करोगे और गंगाकी समान जगत् तारनेमें समर्थ होगे ॥ ११ ॥ सब महीने काम्यफलके देनेवाले हैं तुम विना कामना फल देते हो यह और सब कर्म फल देनेवाले और तुम निष्कर्म फलके देनेवाले हो ॥ १२ ॥

जो जो मासोंके अध्यक्ष और इष्ट फल देनेवाले हैं वे उन्हींके हैं परन्तु तेरा अध्यक्ष और सत्कर्म करनेवाला मैं हूं ॥ १३ ॥ इसमें सन्देह नहीं कि मैं कर्मसे मुक्त हुए पुरुषोंको मुक्ति देता हूं अकाम वा सकाम जो तुममें श्रेष्ठ आचरण करेगा ॥ १४ ॥ जो ब्रह्मस्थान आनंदरूप है जो भोगरूप है वह मैं सम्पूर्ण देनेवाला हूं यह वार्ता सत्य है इसमें सन्देह नहीं ॥ १५ ॥ जहां जाकर फिर प्रवृत्ति नहीं होती भोगान्तमें उसी स्थानको प्राप्त होताहै जिसको महाभाग्यवान् ब्रह्मचारी यत्न करते हैं ॥ १६ ॥ वे मनुष्य त्रिलोकीके दुःख भोगनेवालोंको देखते हैं उसका जो उग्र कारण है उसको वे कोई नहीं

अध्यक्षादिष्टदातारो ये ये मासाधिपाः स्मृताः ॥ त्वदीयोऽस्म्यहमध्यक्षस्त्वयि सत्कर्मकारिणाम् ॥ १३ ॥ कर्मभिर्वै वि-
मुक्तानां मोक्षदोऽहं न संशयः ॥ अकामो वा सकामो वा यस्त्वय्याचरते शुभम् ॥ १४ ॥ आनंदं ब्रह्मसदनं यश्च
भोगसमुच्चयः ॥ तत्सर्वदोऽहमुक्तस्तु सत्यंसत्यं वदाम्यहम् ॥ १५ ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते भोगान्ते तत्प्रयास्यति ॥ यजन्ते वै
महाभागा ऋषयो ब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥ त्रैलोक्यदुःखभोक्तारो दृश्यते ते जनाः सदा ॥ तत्र कारणमत्युग्रं न ते
जानंति केचन ॥ १७ ॥ शृणु तत्ते प्रवक्ष्यामि जायंते ये त्वकर्मिणः ॥ सकामकर्मणः सर्वे मासिमासि भवंति
ते ॥ १८ ॥ प्रवयःकामनिपुणा न तु कैवल्यदायिनः ॥ कारणेन समं कार्यं सर्वदैतान्निगद्यते ॥ १९ ॥ अगाधध्येयसंबन्धो
यथा नानाव्यवस्थितः ॥ यादृशी कर्मणोऽवस्था श्रद्धातो देशकालतः ॥ २० ॥

जानते हैं ॥ १७ ॥ सुनो मैं तुमसे कहताहूं जिससे अकर्मवाले उत्पन्न होते हैं सकाम करनेवाले महीने महीनेमें होते हैं ॥ १८ ॥ जो अवस्था-युक्त काममें निपुण हैं परन्तु वे कैवल्य देनेवाले नहीं हैं ऐसा कहा है कि कारणके समान कार्य सदा होतेहैं ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आधाराधेय सम्बन्धसे अनेक प्रकारकी व्यवस्था है जिस प्रकार कर्मकी अवस्था देशकालके अनुसार है ॥ २० ॥

इस सम्पूर्ण उपकरणमें कालही बलवान् है कारण कि, कालके अनुसारही मनुष्य कर्म करते हैं ॥ २१ ॥ और कर्मके अनुसार फल पाकर फिर तपित होते हैं इस कारण कालका माहात्म्य जाननेमें कोईभी समर्थ नहीं ॥ २२ ॥ एक मुट्ठी बीज लेकर बोये जाते हैं परन्तु कालके योगसे उसमें असदृश फल लगते हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषोत्तम ! आमोंका यद्यपि एकही वंश है परन्तु उनमेंभी समानता नहीं होती यही कालका योग है सो आप देखिये ॥ २४ ॥ माताके गर्भाशयमें पिताके वीर्यसे प्राप्त होकरभी वह एक समयमें जन्मको प्राप्त होकर कालसेही उनकी समानता

सर्वोपकरणे यत्र कालो हि बलवत्तरः ॥ यादृशं कालमासाद्य कुरुते कर्म मानवः ॥ २१ ॥ फलं तु तादृशं लब्ध्वा भूय एव प्रतप्यते ॥ अतः कालस्य माहात्म्यं न केनाप्यवगम्यते ॥ २२ ॥ एकमुष्टिगृहीतानां बीजानां रोपणं तथा ॥ फलान्यसदृशान्यव जायंते कालयोगतः ॥ २३ ॥ एकवंशसमुद्भूतैः सहकारैर्न साम्यता ॥ लभ्यते कालयोगेन पश्य त्वं पुरुषोत्तम ॥ २४ ॥ मातुर्गर्भाशये लग्नाः पितृवीर्यमुपाश्रिताः ॥ एककालाः कुतस्तेऽपि न कालेन समानता ॥ २५ ॥ तस्मात्काम्येषु मासेषु सकामाविहितं नरैः ॥ यत्तत्प्रभुसमादिष्टं यथोक्तं फलदं भवेत् ॥ २६ ॥ किंचिद्भोगानिहालभ्य पश्चाल्लोकांतरं गताः ॥ तत्तद्भोगांतमासाद्य पतंति क्षीणकर्मिणः ॥ २७ ॥ निर्वर्त्य कर्म सर्वेऽपि क्लिश्यंते त्वतिसंकटैः ॥ त्वयि सद्धर्ममिच्छंतः सूरयो गुणभूषणाः ॥ २८ ॥

नहीं होती ॥ २५ ॥ इस कारण काम्य मासोंमें मनुष्य काम्यकर्म करते हैं जो प्रभुने कहा है उसके अनुसार करनेसे यथेष्ट फल मिलता है ॥ २६ ॥ कुछ भोगोंको यहाँ प्राप्त हो पीछे लोकान्तरोंमें जाकर उन भोगोंको भोग्यकर्म क्षीण होनेपर फिर यहां पतित होते हैं ॥ २७ ॥ कर्मसेही निवृत्त होकर फिर संकटमें पडते हैं परन्तु गुणभूषित कवि आपसेही श्रेष्ठ धर्मकी इच्छा करते हैं ॥ २८ ॥

जो धीरतासे मुझको आश्रय किये हैं वह निरामय रहते हैं इस कालका प्रभु मैंहीं हूं दूसरा नहीं है ॥ २९ ॥ ॥ इस कारण इसमें जो कृत्य करेगा उसको अनन्त फल प्राप्त होगा; जो मनुष्य इसमें निष्काम वा सकाम कर्म करेंगे ॥ ३० ॥ वे निर्मल हो नित्य भुक्ति मुक्तिको प्राप्त होंगे, जिन मनुष्योंने इसमें कृत्य किये हैं वह मैं सर्वथा बलसे ग्रहण करताहूं ॥ ३१ ॥ जिस प्रकार राजा अपने छठे भागको नहीं छोडता है इसी प्रकार मुझे कर्म अर्पण करनेसे कभी उसके कर्मका अन्त नहीं होता ॥ ३२ ॥ इससे अनन्त सुखकी प्राप्ति और अन्तमें मुक्ति मिलती है पापरहित होकर

मामाश्रित्य च धैर्येण ह्यस्मिन्काले निरामये ॥ कालस्यास्य प्रभुर्नित्यमहमास्मिन्न चेतरः ॥ २९ ॥ तस्मात्कृत्यफलस्यास्मिन्संख्यानं नैव लभ्यते ॥ निष्कामं च सकामं च कर्तास्मिन्संचितं जनैः ॥ ३० ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं नित्यं मय्यधीशे मलात्मभिः ॥ अस्मिन्कृत नरैः कर्म बलादादद्मि सर्वथा ॥ ३१ ॥ यथा भूमिपतिर्भागं स्वीयं षष्ठं न मुंचाति ॥ मद्दत्तकर्मणामंतो न भवेत्कर्हिचित्स्फुटम् ॥ ३२ ॥ अतोऽनंतसुखावाप्तिरंते मोक्षफलं लभत ॥ विधूय पापतिमिर निर्मलो जायते जनः ॥ ३३ ॥ त्वयि ये व्रतिनो दाता दानस्नानजपे रताः ॥ सर्वे सत्कृत्यरहिता देवतीर्थगुरुद्विषः ॥ ३४ ॥ जायंते दुर्मुखा दुष्टाः परभाग्योपजीविनः ॥ न कदाचित्सुखं तेषां स्वप्नेऽपि शशशृंगवत् ॥ ३५ ॥ तिरस्कृत्य भवंतं ये मलमासेऽतिदांभिकाः ॥ नाचरिष्यंति सद्धर्म सदा निरयवासिनः ॥ ३६ ॥

वह मनुष्य निर्मल हो जाता है ॥ ३३ ॥ जो व्रती चतुर दान स्नान और जप आपमें अर्पण करते हैं वे सुखी होते हैं और जो सब सत्कृत्यसे रहित देवता तीर्थ और गुरुसे द्वेष करते हैं ॥ ३४ ॥ वे दुष्ट पराये भाग्यके उपजीवी दुर्मुख होते हैं उनको स्वप्नमेंभी कभी सुख नहीं मिलता जैसे खरगोशके शृंग नहीं होते ॥ ३५ ॥ जो मनुष्य इस मलमासमें धर्मका तिरस्कार कर दंभता करते हैं और धर्म नहीं करते वे सदा नरकमें पडते हैं ॥ ३६ ॥

फिर वे नरकसे निकलकर अल्पभागी थोडे विद्यावाले हो यहां जन्म लेते हैं प्रत्येक तीसरे वर्षमें जो पुरुषोत्तम मासको प्राप्त होकर ॥ ३७ ॥ धर्म नहीं करते वे कुंभीपाक नरकमें पडते हैं। दुष्कृतकारी जीव पृथ्वीमें जन्म ले सदा शोच करते हैं ॥ ३८ ॥ पुत्र मित्र कलत्रोंकी आशासे शोचते हुए विलाप करते दुःखाग्निमें पडते हैं ॥ ३९ ॥ जिनके अज्ञानसे वैष्णव श्रेष्ठ पुरुषोत्तम मास वृथा बीत जाता है उनको किस प्रकार सुखकी प्राप्ति हो सकती है ॥ ४० ॥ स्त्रीवाले स्वरूपवान् गुणी दीर्घजीवी चतुर विद्यावान् आज्ञा संपादन करनेवालोंका ॥ ४१ ॥ सद्वृत्तिवाले साधु धैर्यशाली

अल्पभाग्यास्त्वल्पविद्या जाताश्च नरकेष्विह ॥ पुरुषोत्तममासाद्य वर्षेवर्षे तृतीयके ॥ ३७ ॥ अविशेषकृतो जीवाः कुंभीपाके पतंति ते ॥ शोचंति सततं जीवा भूमौ दुष्कृतकारिणः ॥ ३८ ॥ पुत्रमित्रकलत्राप्तशोकसंविग्नमानसाः ॥ विलपंति पतंत्येते दुःखदावानले चिरम् ॥ ३९ ॥ ते कथं सुखमेधंते येषामज्ञानतो गतः ॥ श्रीपुरुषोत्तमो मासो वैष्णवः पुरुषोत्तमः ॥ ४० ॥ सदाराणां सरूपाणां गुणिनां दीर्घजीविनाम् ॥ चतुराणां सुविद्यानामाज्ञासपादिनां तथा ॥ ४१ ॥ सद्वृत्तिह्रतचित्तानां साधूनां धैर्यशालिनाम् ॥ सुमुखानां वदान्यानां पुत्राणां शीलवृत्तिनाम् ॥ ४२ ॥ श्यामा च श्यामवर्णा च श्यामा षोडशवार्षिकी ॥ अप्रसूता भवेच्छ्यामा श्यामा मधुरभाषिणी ॥ ४३ ॥ श्यामा गुणवती दिव्या सर्वालंकारभूषिता ॥ चतुरा शीलसंपन्ना चित्तेनारुंधतीसमा ॥ ४४ ॥ सुभगा दर्शनीयांगी कुरंगीनयनांचला ॥ करिकुंभस्तनी रम्या शुभा ताराधिपानना ॥ ४५ ॥

सुमुख चतुर शील वृत्त और पुत्रवानोंका ॥ ४२ ॥ तथा श्यामा श्यामवर्णा अर्थात् सोलह वर्षकी स्त्री श्यामा अप्रसूता श्यामा और मधुरभाषिणी श्यामा होती है ॥ ४३ ॥ श्याम गुणवाली दिव्य सम्पूर्ण अलंकारसे भूषित चतुर शीलसे सम्पन्न चित्तमें अरुंधतीकी समान ॥ ४४ ॥ सुन्दर दर्शनीय शरीरवाली कुरंगीचंचलनेत्र गजकुंभके समान स्तनवाली सुन्दर चन्द्रमाके समान मुखवाली ॥ ४५ ॥

पदविन्यासचातुर्यं दृष्ट्वा लज्जति चाप्सराः ॥ स्वांगरागेण रुचिरा वल्लीव कनकोत्कृता ॥ ४६ ॥ स्वरनिर्जितवित्तेश-तरुणी पतिदेवता ॥ आज्ञाकरी सदा पत्युश्चोदनां चरती शुभाम् ॥४७॥ ईदृशी सुखदा रामा कथं तत्सद्मचारिणी ॥ यस्य ज्ञातो गतो मासो वैष्णवः पुरुषोत्तमः ॥ ४८ ॥ भ्रातरः पंडिताः शूरा नवयौवनशालिनः ॥ प्रभिन्ना इव मातंगाः पराक्रमहतारयः ॥ ४९ ॥ ईदृशान्कथमीप्सन्ते न कृते पुरुषोत्तमे ॥ सुकृतं किंचिदप्येव न दत्तं दानमार्थिने ॥ ॥५०॥ सुरूपः सुमुखः शूरः सत्यवादाहिते रतः ॥ दृढेंद्रियबलोपेतो हरिभक्तिपरायणः ॥५१॥ चातुर्यगुणसंपन्नः सुलक्षणसमन्वितः ॥ अंगदो धार्मिको विद्वान्सात्त्विकः सततं घृणी ॥५२॥ सर्वांगशोभनोऽतीवजातगात्रोथ भाग्यवान् ॥ यत्र यत्र प्रयात्यग्रे धनराशिस्ततस्ततः ॥ ५३ ॥

जिसके चरण रखनेकी चतुरता देखकर अप्सरा लज्जित होती है अपने अंगरागसे मनोहर सुवर्णवेलिके समान ॥ ४६ ॥ स्वरसे कुबेरकी स्त्रियोंको जीतनेवाली तरुणी पतिव्रता सदा पतिकी आज्ञा करनेवाली उसके कथनका आचरण करनेवाली ॥ ४७ ॥ इस प्रकारकी सुख देनेवाली स्त्री उसको कैसी प्राप्त होतीहै जिसको पुरुषोत्तम मास अज्ञानसे बीतता है ॥ ४८ ॥ पंडित शूर नवीन यौवनशाली हाथीकी समान बली पराक्रमसे शत्रुओंके मारनेवाले भाई ॥ ४९ ॥ उसको कैसे प्राप्त होसकते हैं जिसका पुरुषोत्तम मास अज्ञानसे बीतता है जिसने कुछ सुकृत नहीं किया अर्थियोंको दान नहीं दिया ॥ ५० ॥ रूपवान् सुमुख शूर सत्यवादी हितमें तत्पर दृढेन्द्रियवाला हरिभक्तिपरायण ॥ ५१ ॥ चतुरताके गुणसे सम्पन्न अंगदवान् सात्त्विक धर्मात्मा निरन्तर दया करनेवाला ॥ ५२ ॥ सर्वांगसे शोभित पुष्टगात भाग्यवान् जहां जहां जाय वहीं उसके आगे धनराशी स्थित हो ॥ ५३ ॥

जिसका मन लोभ और धर्मके प्रमादमें तथा क्रोधमें रत न हो इस प्रकारका सन्तान विना पुरुषोत्तमकी अर्चाके किस प्रकार होसक्ता है ॥ ५४ ॥ देवकीनंदन देवका पुरुषोत्तम मासमें पूजन करना चाहिये अथवा चंद्रमौलि जगत्के आनंददाता शंकरका पूजन करै ॥ ५५ ॥ सूर्य ईश वा गणाधीश चंडिका भक्तवत्सला महामाया महालक्ष्मी बंध मोक्षकी विधान करनेवाली है ॥ ५६ ॥ मेरी आज्ञासे वे सब मनुष्य तुम्हारा पूजन करेंगे तेरा माहात्म्य पृथ्वीमें आजतक किसीने नहीं जाना है ॥ ५७ ॥ ज्ञानदृष्टिसे ऋषि मेरे हृदयकी बात जानते हैं इस कारण मेरी आज्ञाके पालन करनेवाले

लाभो धैर्यं प्रमादश्च क्रोधेनाक्रमते मनः ॥ ईदृशो जायते जंतुः कथं येन न चार्चितः ॥ ५४ ॥ देवकीनंदनो देवः संप्राप्ते पुरुषोत्तमे ॥ अथवा जगदानंददायी शीतांशुभूषणः ॥५५॥ दिनेशो वा गणाधीशश्चंडिका भक्तवत्सला ॥ महाभागा महालक्ष्मीर्बंधमोक्षविधायिनी ॥ ५६ ॥ ते त्वां संपूजयिष्यंति जनाः सर्वे ममाज्ञया ॥ त्वदीयमेतन्माहात्म्यं नं ज्ञातं केनचिद्भुवि ॥ ५७ ॥ ज्ञानदृष्ट्या ऋषिगणाज्ञास्यंति मम हृद्गतम् ॥ ततस्त्वामर्चयिष्यंति मच्छंदपरिपालकाः ॥ ५८ ॥ सर्वेषामपि मासानां त्वमप्युग्रो भविष्यसि ॥ तथोत्तमांगमासीनः किरीट इव राजसे ॥ ५९ ॥ इत्यादिश्य ततो मासमहमंतर्हितोऽभवम् ॥ इति ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ६० ॥ जननीयौवनवनच्छेत्तारो ये नरा भुवि ॥ जायंते सुखलेशांशास्तैलाभ्यंगकलेवराः ॥ ६१ ॥ प्रेता इव निरानंदा विचरंति महीतले ॥ स्त्रीपुत्रधनधान्यादिहीनदीनमनःक्रियाः ॥ ६२ ॥

तुम्हारी अर्चना करेंगे ॥ ५८ ॥ सम्पूर्ण महीनेमें तुम श्रेष्ठ होगे जिस प्रकार शिरमें किरीट सबसे श्रेष्ठ शोभित होता है ॥ ५९ ॥ यह उस महीनेसे कह मैं अन्तर्धान हुआ, जो आपने पूछा सो तुमसे सब वर्णन किया ॥ ६० ॥ जो मनुष्य पृथ्वीमें माताके यौवनरूपी वनके छेदन करनेवाले हैं वे किंचित् सुख पानेवाले तैलसे लिप्त कलेवर पृथ्वीमें जन्म लेतेहैं ॥ ६१ ॥ वे प्रेतोंकी समान निरानंद पृथ्वीमें विचरते हैं स्त्री पुत्र धन धान्यसे हीन, हीन क्रियावाले

होते हैं ॥ ६२ ॥ हे महाराज! आप स्त्री और अनुजोंके सहित इस पुरुषोत्तममासके माहात्म्यको नहीं जानते हो ॥ ६३ ॥ न विशेषकर आपने पुरुषोत्तमकी सेवा की है. हे राजन् ! अब वह महीना इसके उपरान्त आनेवाला है ॥ ६४ ॥ वह महामास विष्णुका प्रिय है तुम वनमें रहनेवालोंको प्रमादसे पांच महीने बीत गये हैं ॥ ६५ ॥ आपने भयद्वेषयुक्त हो उनकी अवज्ञा की है कारण कि धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनादि गंगापुत्र भीष्म कृपाचार्य ॥ ६६ ॥ अश्वत्थामा द्रोण सौबल इनसे तुम्हारा चित्त सदा व्याकुल रहता है और वनवासी होनेके कारण तुम्हारा सुखध्वंस होरहा है

भवानपि महाराज सदारानुजसेवितः ॥ न जानासि पृथिव्यां वै मासेशं पुरुषोत्तमम् ॥ ६३ ॥ न त्वयापि विशेषेण सेवितः पुरुषोत्तमः ॥ अतः परं नरेंद्रेश मासो वै चागमिष्यति ॥ ६४ ॥ विष्णुप्रियो महामासो भवतां काननौकसाम् ॥ प्रमादतो गता मासाः पंचैते भवतामिह ॥६५॥ श्रीमद्भिस्तेऽप्यव ज्ञाता भयद्वेषसमन्वितैः ॥ वैकर्तगाधकाः पुत्राः स्वर्धुनीसुतगौतमौ ॥ ६६ ॥ द्रौणिद्रोणसौबलेभ्यो भयसंत्रस्तचेतसाम् ॥ वनवाससुखध्वंसस्वजनायोगदुःखिनाम् ॥६७॥ वने वास प्रसादाद्यं विद्याराधनतत्परे ॥ धनंजये गते स्वर्गमितोऽस्त्राऽसिसमुद्यते ॥ ६८ ॥ तद्वियोगपीडाक्लिष्टेन ज्ञातः पुरुषोत्तमः ॥ साधनं जायते राजन्भविष्यस्य प्रभावतः ॥६९॥ किमत्र भवतां कृत्यं यद्भविष्येन वर्त्तते॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं भविष्यादाप्नुते जन॥७०॥ इति श्रीपद्मपुराणे पु॰मा॰ भगवतः वरप्रदानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

स्वजनोंके वियोगसे दुःख है ॥ ६७ ॥ वनमें निवास विद्याके आराधनमें तत्पर अर्जुनके अस्त्र सीखनेको स्वर्गमें जानेपर तुमको दुःख प्राप्त होनेपर ॥ ६८॥ तथा उसके वियोगसे क्लिष्टशरीर होनेके कारण तुमने पुरुषोत्तमको न जाना. हे राजन् ! इसके प्रभावसे भविष्य साधन होता है ॥ ६९ ॥ इसमें तुमको और क्या कृत्य भविष्यतासे वर्तती है सुख दुःख भय क्षेम यह मनुष्य अपने कृत्यसे प्राप्त करता है ॥ ७० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये भगवतः पुरुषोत्तमवरप्रदानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण बोले, महाभागा द्रौपदी पूर्वजन्ममें किसी ब्राह्मणकी बडी सुन्दर रूपवती पुत्री थी ॥ १ ॥ हे तात ! समय बीतनेपर यह दश वर्षकी हुई यह रूप लावण्यमें श्रेष्ठ सुनेत्रा हुई ॥ २ ॥ यह चतुरताके गुणोंसे सम्पन्न पिताकी एकही पुत्री थी इस कारण यह गुणसुन्दरी पिताको अधिक प्यारी थी ॥ ३ ॥ इसको ब्राह्मणने पुत्रकी समान पाला, कभी तिरस्कार नहीं किया, यह साहित्यशास्त्रमें कुशल और नीतिमें भी पंडिता थी ॥ ४ ॥ इस कारण अतिचतुर पृथ्वीमें दूसरी लक्ष्मीकी समान थी शुभ अशुभ गुणके ज्ञान और श्रेष्ठतामें विशारद थी ॥ ५ ॥ हे राजन् ! नित्य सुखवाली

श्रीकृष्ण उवाच ॥ पांचाली या महाभागा पूर्वजन्मनि सुंदरी ॥ कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य पुत्री जाता सुमध्यमा ॥ ॥ १ ॥ कालेन गच्छता तात संजाता दशवार्षिकी ॥ रूपलावण्यललितनयनापांगशालिनी ॥ २ ॥ चातुर्यगुणसंपन्ना पितुरेकैव पुत्रिका ॥ वल्लभातीव तेनेयं पाठिता गुणसुंदरी ॥ ३ ॥ लालिता पुत्रवन्नित्यं न कदाचित्प्रलंभिता ॥ साहित्यशास्त्रकुशला नीतावपि विशारदा ॥ ४ ॥ अतीव तेन चतुरा रमान्या च यथा भुवि ॥ शुभाशुभगुणज्ञानसौष्ठवेन विशारदा ॥ ५ ॥ नित्यं सुखवती राजन्पुत्रपौत्रकृतस्पृहा ॥ चिंतयंती तदा बाला ह्येवं मम कथं भवेत् ॥ ६ ॥ गुणभाग्यनिधिर्भर्ता सुखदा मे सुताः कथम् ॥ एवं मनोरथस्यांतं न गता सा मनस्विनी ॥७॥ किंवा प्रीतिसमायुक्ता पूजयामि सुरेश्वरम् ॥ किं वा मुनिमुपातिष्ठे किंवातीर्थमुपाश्रये ॥ ८ ॥

होनेसे एक दिन वह विचार करने लगी कि मैं पुत्र और पौत्रवाली कब हूंगी ॥ ६ ॥ किस प्रकार मुझे सुखनिधान स्वामी मिलै और श्रेष्ठ पुत्र मेरे किस प्रकारसे हों इस प्रकार वह मनस्विनी मनोरथके अन्तको न प्राप्त हुई ॥ ७ ॥ मैं प्रीतियुक्त होकर किस देवताकी उपासना करूं अथवा किस मुनि वा किस तीर्थकी आराधना करूं ॥ ८ ॥

मेरी सखियोंके सुन्दर पुत्र और उनके मनोरथ पूर्ण हैं परन्तु मेरे भाग्यके कारण यह कोई वस्तु नहीं है ॥ ९ ॥ मेरे पिता प्रमादसे मेरा विवाह नहीं करते इससे मैं वडी दुःखी हूं परन्तु सखीसमूहकी अध्यक्षा होनेसे मैं वडी मानवती हूं ॥ १० ॥ मैं सुखकी ज्ञाता नहीं हूं मेरी भगिनी सुखी हैं मैं अल्पभाग्यवती हूं परलोकगामिनी नहीं हूं ॥ ११ ॥ इस प्रकार वह बाला चिन्ता करती मनोरथसागरमें शोकयुक्तमन होकर वारंवार मग्न होनेलगी ॥ १२ ॥ इधर वह बुद्धिमान् ब्राह्मण अपनी पुत्री देनेके निमित्त वरको ढूंढते पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ १३ ॥ वह किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण-

सख्यो मे सुतसौंदर्यालोकनातमनोरथाः ॥ मम भाग्यप्रसंगेन दृश्यते मम नैव तत् ॥ ९ ॥ प्रमादी जनको मेऽपि तेनाहं दुःखिता बहु ॥ अध्यक्षाहं सखीवृंदे तेन मानवंती दृढम् ॥ १० ॥ नाहं चैव सुखाभिज्ञा सुखिनो मम जामयः ॥ अल्पभाग्यवती चाहं न कापि परलोकगा ॥ ११ ॥ एवं चिंतयती बाला मनोरथमहोदधौ ॥ निममज्जातिदुःखेन शोकसंविग्नमानसा ॥ १२ ॥ मेधावी ऋषिराजोऽसौ विचचाल महीतलम् ॥ पुत्रीदाननिमित्तार्थं विचिन्वन्सदृशं वरम् ॥ १३ ॥ नाप्तवान्द्विजमुख्येशं स निर्गतमनोरथः ॥ सुता स्वकीयभाग्येन न प्राप्ता सदृशं वरम् ॥ १४ ॥ अवाप दैवयोगेन ज्वरव्याधिं सुदारुणम् ॥ स्फुटत्सर्वांगसंभिन्नहृदयो गतचेतनः ॥ १५ ॥ कन्यादानोक्तसंकल्पभग्नपद्मव-नालयः ॥ बह्वामयेन युक्तोऽसौ स्वगृहागमलालसः ॥ १६ ॥

कुमारको न प्राप्त हुए अर्थात् अपनी पुत्रीके भाग्यसे उसको सदृश वर न मिला ॥ १४ ॥ दैवयोगसे उसे बड़ा दारुण ज्वर प्राप्त हुआ उसके सर्वांगमें हडफूटन होने लगी हृदयमें, चैतन्यता न रही ॥ १५ ॥ उस समय उसके कन्यादानका संकल्प भग्न होगया और महारोगयुक्त होनेसें उसको घर जानेकी इच्छा हुई ॥ १६ ॥

स्वल्प बल होनेसे वह ब्राह्मण मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरा और मदसे मत्त गजराजकी समान चलने लगा ॥ १७ ॥ घर आता हुआ वह पृथ्वीमें गिरा
जबतक पुत्री पिताके लेनेको चली ॥ १८ ॥ तब वह ब्राह्मण उसको स्मरण करता पृथ्वीमें गिर प्राण त्यागता हुआ और भावि अर्थके कारण
वह मनोरथको प्राप्त न हुआ ॥ १९ ॥ गोविन्द विश्वेश जगन्निवास दामोदर चराचरके आधार सत्यभामाके स्थानमें रहनेवाले चक्रपाणि देवेश
मेरी रक्षा करो ॥ २० ॥ इस प्रकार कहकर अपने नेत्रोंके सामने प्राण त्यागन करते देख कि, जो जगत्के आनदं देनेवाले गदाग्रजका स्मरण कर

स चलन्त्यपतन्मूर्च्छामाप्नुवन्नृषिणां वरः ॥ मदिरामदमत्तांगो गजराज इवागमत् ॥ १७ ॥ आगच्छन्नेव भवनं स
पपात धरातले ॥ यावत्सुता समादातुं पितरं द्रवति क्षणात् ॥ १८ ॥ तावत्परासुः संजातो भूसुरस्तामनुस्मरन् ॥
भाविनार्थबलेनैव न प्राप्तश्च मनोरथः ॥ १९ ॥ गोविंद विश्वेश जगन्निवास दामोदराधार चराचराणाम् ॥ श्रीसत्य-
भामालय चक्रपाणे मां पाहि देवेश जगन्निवास ॥ २० ॥ इति ब्रुवन्नसून्विप्रः संपश्यन्नयनाग्रतः ॥ तत्याज जगदानं-
दपादावाप गदाग्रजम् ॥ २१ ॥ सा निरीक्ष्य पितुः पातं हाहा कृत्वा प्रधाविता ॥ अंके कृत्वा पितुर्देहं विललापा-
तिदुःखिता ॥ २२ ॥ कुररीव चिरं कालं विलप्य भृशपीडिता ॥ उवाच पितरं बाला जीवमानमिवात्मनः ॥ २३ ॥
हाहा पितुः कृपापूरपूरित प्रणयालय ॥ कस्यांके मां निधायाद्य गतोऽसि त्वं महामते ॥ २४ ॥ पित्रा विहीना मात्रा
च बांधवैः श्वशुरेण च ॥ भर्त्रा श्वश्र्वा कुमार्यास्मिन् गतिः का मे भविष्यति ॥ २५ ॥

है ॥ २१ ॥ वह पिताका गिरना देख हाहाकार कर दौडपडी और पिताके देहको गोदीमें धर दुःखसे विलाप करने लगी ॥ २२ ॥ वह बहुत
कुररीके समान विलाप करती हुई महापीडित हुई और अपने जीते हुएकी समान पितासे कहने लगी ॥ २३ ॥ हाहा पिता कृपासे पूर्ण
पालक हे महामते ! मुझे आप किसकी गोदीमें रखकर चले गये ? ॥ २४ ॥ मैं पिता माता बंधु और श्वशुरसे भी रहित हूं तथा भर्तृरहित

कुमारी हूं मेरी क्या गति होगी। कन्याके प्रदानसमयमें आप त्रास करते थे आनंदके समय तुम यमालयमें जानेके योग्य नहीं हो ॥ २५ ॥ २६ ॥ अब वेदध्वनिसे रहित तुम्हारे इस आश्रममें किस प्रकार स्थित हूंगी ? हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरी जीवनमें अब क्या इच्छा हो सकती है ॥ २७ ॥ हे दुहितृवत्सल ! मेरा विवाह विना किये आप धीरवान् इस लोकसे जानेको योग्य नहीं हो ॥ २८ ॥ यह कह वह बाला आंखोंमें आंसू भरे पिताका मुख चूमने लगी और वह सुन्दरी महादुःखी हो ऊंचे स्वरसे रुदन करनेलगी ॥ २९ ॥ तपोवनवासी ब्राह्मण उसका रोना सुन

कन्याप्रदानसमये कृतस्त्रासश्च मत्कृते ॥ आनंदसमये गंतुं नार्होऽसि त्वं यमालये ॥२६॥ कथं तिष्ठाम्यहं शून्ये निगमध्वनिवर्जिते ॥ आश्रमे ते द्विजश्रेष्ठ का नु मे जीविते स्पृहा ॥ २७ ॥ असंपाद्यैव वैवाह्यं विधिं दुहितृवत्सल ॥ न यातु मत्पिता धीरो लोकांतरमितो मम ॥ २८ ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखी श्यामा चुचुंब वदनं पितुः ॥ मुक्तकंठा रुरोदार्त्ता सुंदरी बहुलव्यथा ॥ २९ ॥ श्रुत्वा तन्निनद विप्रास्तपोवननिवासिनः ॥ किमेतन्महदाश्चर्यं श्रूयते दारुणस्वनः ॥ ३० ॥ मेधाऋषेः सुताशब्दः श्रूयते करुणाकृतः ॥ इति ते संभ्रमोपेताः समापेतुः सहस्रशः ॥ ३१ ॥ शोकसंतप्तमनसो हाहाकारपरा द्विजाः ॥ हंसा इव निदाघार्त्ताः बहुधा परिपीडिताः ॥३२॥ ददृशुर्ऋषिराजं तं सुतांकस्थकलेवरम् ॥ समाश्वास्य ततः कन्यां काष्ठान्यादाय तत्तनुम् ॥ ३३ ॥

कहने लगे कि यह क्या आश्चर्यका शब्द सुनाई आता है ॥ ३० ॥ वह मेधाऋषिकी बेटीका करुणाभरा शब्द सुनाई आता है इस प्रकार संभ्रमको प्राप्त हो सहस्रों ऋषि उसके निकट आये ॥ ३१ ॥ शोकसे संतप्त मन हो हाहाकार करने लगे जैसे गरमीसे व्याकुल हंस पीडित होते हैं इस प्रकार होगये ॥ ३२ ॥ और उन ऋषिराजके शरीरको सुताकी गोदीमें देखने लगे तब कन्याको समझाकर काष्ठ लाय उसका शरीर ॥ ३३ ॥

अग्निमें दग्ध कर वे सब ऋषि अपने अपने आश्रमको गये और हीनमनोरथ विपत्तिको प्राप्त हुई कन्या वहां निवास करनेलगी ॥ ३४ ॥ और अपने अनुरूप पति प्राप्त होनेकी इच्छा करने लगी ॥ ३५ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये ऋषिभिः कृतमृषिपुत्र्याः सान्त्वनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण बोले—उस वनमें निवास करते उस कन्याकी शोकसे हिमकी सताई पद्मिनीकी समान दशा होगई ॥ १ ॥ शून्य वनमें यूथसे भ्रष्ट मृगीकी समान आंसुओंसे शरीरको भिजोती हृदयकमलको दग्ध करती ॥ २ ॥ निःश्वास लेनेसे दीन हुई मंत्रसे रुद्ध सर्पिणीकी

दग्ध्वा विभावसौ सर्वे गताः स्वेस्वे निवेशने ॥ बाला तस्मिन्निवसती आपद्गतमनोरथा ॥ ३४ ॥ चिंतयाना तु सदृशं
पतिमाशु द्विजात्मजा ॥३५॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये ऋषिभिः कृतमृषिपुत्र्याः सांत्वनं नाम चतुर्थोऽ-
ध्यायः ॥४॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ निवसंत्यास्ततस्तस्यास्तस्मिन्नेव तपोवने ॥ शोकेन च पराक्लिष्टां हिमार्त्तां पद्मिनी-
मिव ॥ १ ॥ शून्यकाननमासन्नां यूथभ्रष्टां मृगीमिव ॥ गलद्बाष्पौघपूराक्तज्वलद्धृदयपंकजाम् ॥ २ ॥ निश्वासपरमां
दीनां संरुद्धामुरगीमिव ॥ चिंतयंतीमपश्यतीं दुःखपारं कृशोदरीम् ॥ ३ ॥ तामाससाद भगवान्भविष्यबलनोदितः ॥
यदृच्छया ऋषिर्दत्तः परमः कोपनो मुनिः ॥ ४ ॥ यद्विलोकनमात्रेण तप्येदपि शतक्रतुः ॥ जटाकलापसंछन्नः साक्षा-
दिव सदाशिवः ॥ ५ ॥ यस्ते जनन्या राजेंद्र शैशवे च प्रसादितः ॥ निर्जराकर्षिणीं विद्यां ददावस्यै सुपूजितः ॥ ६ ॥

समान स्थित थी और वह कृशोदरी दुःखका पार न जानकर विचारने लगी ॥ ३ ॥ भविष्यके बलसे प्रेरित भगवान् उसके निकट आये अर्थात् वह परम कोपन स्वभाव दत्त ऋषि स्वेच्छासेही वहां आये ॥ ४ ॥ उनके देखने मात्रसेही इन्द्रकोभी अधिक ताप होता था जटाकलापसे संछन्न साक्षात् शंकरकी समान ॥ ५ ॥ हे राजेन्द्र ! जो कि तुम्हारी माताने बडी प्रीतिसे शिवभक्त दुर्वासाको प्रसन्न किया था इस कारण इन्होंने

प्रसन्न हो इनको देवताओंके बुलानेकी विद्या प्रदान की थी ॥ ६ ॥ हे राजन् ! जिन्होंने अत्यन्त सेवा करनेवाले मुझकोभी अत्यन्त कोपसे पीडित किया कि ऐसा कोई न करैगा ॥ ७ ॥ अर्थात् हमको और रुक्मिणीको कुसुमाकर रथमें लगाया जलकी इच्छा करनेपरभी उस बालाको जल न देकर पीडित किया ॥ ८ ॥ महाक्रोधसे व्यासशरीर साक्षात् रुद्रके अंशसे सम्भूत दूसरे कालरुद्रकी समानही दूसरा शरीर धारे ॥ ९ ॥ अत्रिका महातपरूपी वृक्षका दिव्य फल, पतिव्रताशिरोमणि अनसूयाके गर्भसे उत्पन्न ॥ १० ॥ बुद्धिमान् दुर्वासाजी साक्षात् ब्रह्माकी समान

येनाहमपि भूपालचक्रे चर्चितपादुकः ॥ कोपेन पीडितोऽत्यर्थं न यथान्यः पुमान्क्वचित् ॥ ७ ॥ रथे संयोजितो राजन्रुक्मिण्या कुसुमाकरे ॥ जलमर्थयती बाला तृषया पीडितात्यलम् ॥ ८ ॥ तीव्रकोपपरीतांगः शशाप वनितां तदा ॥ साक्षाद्रुद्रांशसंभूतः कालरुद्र इवापरः ॥ ९ ॥ अत्रेरुग्रतपःकल्पवृक्षे दिव्यं फलं महत् ॥ पतिव्रताशिरोरत्नान-सूयागर्भसंभवः ॥ १० ॥ दुर्वासा नाम मेधावी परमेष्ठीव मूर्तिमान् ॥ नैकतीर्थजलक्लिन्नजटाभासुरसच्छिराः ॥ ११ ॥ तमालोक्य समायांतं ब्राह्मणी शोकसागरात् ॥ उन्मज्ज्य नेत्रकमले सुस्वरा मृदुभाषिणी ॥ १२ ॥ ववंदे चरणौ मूर्ध्ना मुनेरद्भुतकर्मणः ॥ नत्वा स्वाश्रममानीता वाल्मीकेर्जानकी यथा ॥ १३ ॥ अपूजयद्वरारोहा ऋषिराजं तपस्विनी ॥ अर्घादिक्रियया सम्यग्वन्यैरुच्चावचैरपि ॥ १४ ॥

मूर्ति धारण किये अनेक तीर्थोंके जलसे धोई जटाभारसे शोभित थे ॥ ११ ॥ उन ऋषिको आया देख शोकसागरसे उठ वह ब्राह्मणकुमारी अपने नेत्रोंको खोल अच्छे स्वरसे बोलनेवाली ॥ १२ ॥ अद्भुतकर्मा मुनिके चरणोंको शिरसे प्रणाम करती हुई और नमस्कार कर ऐसे उनको अपने आश्रममें लिवा लाई जैसे वाल्मीकि जानकीको लायेथे ॥ १३ ॥ उस तपस्विनी सुमुखीने ऋषिराजकी पूजा वनके छोटे बडे फल पुष्पादिसे

उनकी यथेष्ट पूजा की ॥ १४ ॥ क्रियासे निवृत्त हो सुखसे बैठेहुए ऋषिकी उपासना करनेलगी और वह सुनेत्रा उनका स्वागत कर इस प्रकार पूछने लगी ॥ १५ ॥ हे अत्रिगोत्रोत्पन्न भगवन् ! आप भले आये, हे भगवन् ! आपके चरणोंकी देवसमूह वन्दना करते हैं ॥ १६ ॥ तुम कमलके रजकी समान शोभित होते, जटाभारसे विराजित हो सुरासुरोंसे वन्दनीय ब्रह्मचिन्तनमें तत्पर ॥ १७ ॥ जिनके नामस्मरणसे अनेक दुःखका क्षय होता है आप सब सिद्धिके समुद्र हो शीघ्र कौन तुम्हारा दर्शन कर सकता है ॥ १८ ॥ आपको देखने और नमस्कार करनेसे सब पाप

सत्कृत्य सुखमासीनमुपासांचक्र ईश्वरम् ॥ भामिनी स्वागतं वाक्यमुवाच शुभलोचनी ॥ १५ ॥ स्वागतं तेऽस्तु भगवन्नत्रिगोत्रसमुद्भव ॥ वृन्दारकवृंदवंद्यपदपद्म मुनीश्वर ॥ १६ ॥ लसत्कदंबकिंजल्कजटाभारविराजित ॥ सुरासुरैर्वंदनीय ब्रह्मचिंतनतत्पर ॥ १७ ॥ यन्नामस्तुतिमात्रेण ह्यनेकदुःखसंक्षयः ॥ सर्वसिद्धिसमुद्रेकः सद्यो भवति दर्शनात् ॥ १८ ॥ त्वां दृष्ट्वा चैव नत्वा च सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ मदीयमृषिशार्दूल येन प्रश्ने मम स्पृहा ॥ १९ ॥ कुतोऽधिगमनं साधो तीर्थादिनिमिषेण किम् ॥ अभाग्याया मम पुनर्भाग्यलेशेन प्राप्तवान् ॥ २० ॥ अथवा प्रतिपतुः पुण्यप्रवाहप्रेरितः किमु ॥ श्रीमद्विचलनं ब्रह्मन्नृणामघविनाशकृत् ॥ २१ ॥ गृहांधकूपे पतितां स्वैः पापैर्दुष्टचेतसाम् ॥ भवादृशां पदस्पर्शस्तीर्थकोटिसमो भवेत् ॥ २२ ॥

क्षय होजाते हैं हे ऋषिशार्दूल ! मुझको कुछ आपसे पूछनेकी इच्छा है ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! आपका इधर आना किसी तीर्थके मिससे हुआ है हे भगवन् ! मुझ अभागिनीके भाग्यलेशसे यह वार्ता प्राप्त हुई है ॥ २० ॥ अथवा कोई मेरे पिताके पुण्यप्रभावसे आपका दर्शन प्राप्त हुआ है, आपका दर्शन मनुष्योंके पापका दूर करनेवाला है ॥ २१ ॥ गृहरूपी अंधकूपमें पडे अपने पापोंसे दुष्टचित्त हुए पुरुषोंको आपके चरणोंका स्पर्श

कोटितीर्थोंकी समान होता है ॥ २२ ॥ यह वाक्य कह कह ब्राह्मणकन्या नीचेको मुख कर स्थित हुई । तब शिवके अंश दुर्वासाजी हँसकर उससे कहने लगे ॥ २३ ॥ हे ब्राह्मणकन्ये ! तू धन्य है तैंने कुलका उद्धार करदिया मैं धर्ममें तत्पर शिवपूजन कर ॥ २४ ॥ कैलासमें तेरी धर्मशीलता जानकर आयाहूं, मैं तेरे चरित्रसे प्रसन्न और तेरे पिताके स्नेहसे यंत्रित हूं ॥ २५ ॥ तेरे आश्रमको प्राप्त हो तुझसे पूजित हुआहूं, हे वरारोहे ! अब मैं बदरिकाश्रमको जाताहूं ॥ २६ ॥ वहां नरनारायणका दर्शन करूंगा और वहां उग्र तप करनेकी मेरी इच्छा है ॥ २७ ॥

उक्त्वा वाक्यं द्विजसुता तस्थौ तूष्णीमवाङ्मुखी ॥ सुस्मितं मुनिराहेदं दुर्वासा गिरिशांशजः ॥ २३ ॥ साधुसाधु द्विजसुते कुलमप्युद्धृतं त्वया॥ धर्मिष्ठस्य च मेधावेः परस्य शिवपूजने॥२४॥ कैलासादहमागच्छं ज्ञात्वा ते धर्मशीलताम्॥ त्वच्चारित्रेण प्रीतोऽहं त्वात्पितुः स्नेहयंत्रितः ॥ २५ ॥ त्वदाश्रमपदं प्राप्तस्त्वया संपूजितो ह्यहम् ॥ गमिष्यामि वरारोहे श्रीमद्बदरिकाश्रमे ॥ २६ ॥ द्रष्टुं नारायणं देवं नरयुक्तमनुद्धतम् ॥ तपश्चरन्तमेकाग्रमनुग्रं चिरसंस्थितम् ॥ २७ ॥ द्रष्टुकामोऽस्मि सुश्रोणि तव दुःखं महत्तरम् ॥ अंतराधिप्रदीप्तेन वह्निना सा प्रदीपिता ॥ २८ ॥ कन्योवाच ॥ ऋषे त्वद्दर्शनादेव संशुष्कः शोकसागरः ॥ परितोऽपि शुभं भावि यत्संतुष्टस्त्वमात्मना ॥२९॥ किं न वेत्सि तपःश्लाघिन्मम शोकस्य कारणम् ॥ हर्षदं तु न मे किञ्चिद्दृश्यते त्वं विचारय ॥ ३० ॥ न माता न पिता भ्राता न मित्रं न च बांधवः॥ कुमारो न च मे भर्ता स कालोऽप्यतिवर्त्तते ॥ ३१ ॥

हे सुन्दरी ! मैं तुम्हारे महादुःखका कारण देखनेकी इच्छा करताहूं, जो तुम्हारे अन्तरमें अग्निके समान प्रदीप्त है ॥ २८ ॥ कन्या बोली—हे ऋषे ! आपके दर्शनसे मेरा शोकसागर नष्ट होगया है और जो आप संतुष्ट हुए हो तो आगेको शुभ होनेकी भी आशा है ॥ २९ ॥ हे तपमें तत्पर ! क्या आप मेरे शोकका कारण नहीं जानते हो, मुझे कोई भी प्रसन्न करनेवाला नहीं दीखता यह आप विचारिये ॥ ३० ॥ मेरे माता पिता भ्राता बंधु

कोई नहीं है यह जानिये मेरा विवाह नहीं हुआ कुमारी हूं विवाहका काल बीता जाता है ॥ ३१ ॥ जिधर देखती हूं वही दिशा मुझे शून्य विदित होती है. हे भगवन् ! कोई भी ऐसा उपाय है ? जिससे मेरा दुःख नष्ट हो ॥ ३२ ॥ आप ऐसा कीजिये जिससे मेरा कल्याण हो, हे शिवांश-सम्भूत ! वह करो जिससे शूद्रता प्राप्त न हो मुझको सुख देनेवाला हो ॥ ३३ ॥ जो मेरे पिता होते तो कुछ चिन्ता न थी वह भी अकालमें कालकवलित हुए सबको थोडा बहुत सुख होता है परतु मैं क्यों एकान्त दुःखी हूं ॥ ३४ ॥ वह कोकिलकंठी यह वचन कहकर कुछ न

यां यां दिशं प्रपश्यामि सा सा शून्या विभाति मे ॥ कोऽप्युपायः स दृष्टोऽस्ति येन मे दुःखसंक्षयः ॥ ३२ ॥ दिश त्वं शिवसंभूत वृषली येन नोऽभवम् ॥ भवेऽस्मिंस्तव शापोऽस्ति मामेकश्च शुभप्रदः ॥३३॥ चेद्भवेन्मे जनकः सोऽप्यकाले दिवं गतः ॥ सर्वथाल्पसुखिन्येवाहं चैकाप्यतिदुःखिता ॥३४॥ वाक्यमुक्त्वा पिककंठी किंचिन्नोवाच सुंदरी ॥ ध्यात्वोवाच ऋषिर्देवीं कारुण्यभररंजितः ॥ ३५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ शृणु सुंदरि यत्नेन कस्यापि कथितं न मे ॥ वक्ष्यामि तुभ्यं सुश्रोणि त्वद्गुणेन सुयंत्रितः ॥ ३६ ॥ तृतीये सुभगे सुभ्रु हायने परमाद्भुतः ॥ भविष्यति वरारोहे मासो वै पुरुषोत्तमः ॥ ३७ ॥ यस्मिन्स्नातो नरस्तीर्थे मुच्यते भ्रूणहत्यया ॥ अपि स्नानान्महापुण्ये मासे किमुत साधनात् ॥ ३८ ॥ नायं तुल्यो भवेद्देवि मासैरन्यैः सुशोभनैः ॥ साधनानि समस्तानि ऋषिप्रोक्तानि सुंदरि ॥ ३९ ॥

बोली तब ऋषि दया कर क्षणमात्र ध्यान कर बोले ॥ ३५ ॥ दुर्वासाजी बोले—हे सुश्रोणि ! यत्नसे सुन यह मैंने आजतक किसीसे नहीं कहा परंतु तेरे गुणसे यंत्रित हो कहताहूं ॥ ३६ ॥ हे सुभ्रू ! तीसरे वर्षमें परम अद्भुत पुरुषोत्तम मास होगा ॥ ३७ ॥ जिस मासमें तीर्थयात्रा कर तीर्थमें नहानेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाता है स्नानसेही बडा पुण्य होता है साधन करे तो क्या बात है ॥ ३८ ॥ हे देवि ! हे सुशोभने ! इसके समान

और कोई महीना नहीं है. हे सुन्दरी ! इससे ऋषियोंने अनेक साधन कहे हैं ॥ ३९ ॥ और महीने उनकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं सब महीने और पखवारे ॥ ४० ॥ भी इसके एक दिनके स्नानके फलको नहीं प्राप्त होते हैं । हे शोभने ! जो अन्नदानका फल होता है ॥ ४१ ॥ वह जप उपवास दानका फल इसके एक दिन सेवनसे होता है, यह सर्वथा सब महीनोंके शिरपर स्थित है ॥ ४२ ॥ इस कारण तुम पुरुषोत्तम मासका सेवन करो । हे ब्राह्मणकन्ये ! यह नारायणको अत्यन्त प्रिय है ॥ ४३ ॥ हे भामिनी ! यह मास जब प्राप्त होता है तब मैंभी इसकी सेवा

मासस्य तस्य नार्हंति कलामपि च षोडशीम् ॥ सर्वे मासास्तथा पक्षाः सर्वाण्यन्यानि भामिनि ॥ ४० ॥ एकस्मिन्दिवसे स्नानमाहात्म्यं नानुयांति हि ॥ अन्यदानस्य पुण्यं यद्भुतं भवति शोभने ॥ ४१ ॥ जपोपवासदानानि तदास्मिन्नेकसंख्यया ॥ सर्वथा सर्वमासानां शिरःस्थाने व्यवस्थितः ॥४२॥ तस्मान्निषेवयाशु त्वं मासं वै पुरुषोत्तमम् ॥ अत्यंतकैटभारातिप्रियोऽयं भूसुरात्मजे ॥ ४३ ॥ मयापि सेव्यते नित्यं यदा प्राप्नोति भामिनि ॥ विष्णुनाम्ना स विज्ञातः कोऽन्यो भवितुमर्हति ॥४४॥ मुंचन्नाज्ञेऽम्बरीषाय क्रोधं कृत्वा सुदारुणम् ॥ तदा त्रातोऽस्य पुण्येन विष्णुचक्रात्सुदुःसहात् ॥४५॥ सोऽहं शक्तः सुनाभस्य तेजः परमदारुणम् ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशं ब्रह्मांडानां च भस्मकृत् ॥४६॥ युगांताग्निसमं तस्य भूरिशो दाहकस्य चित् ॥ मुक्तो मासप्रभावेण तेजसाहं समेधितः ॥ ४७ ॥

करताहूं; यह विष्णुके नामसे विख्यात है कौन इसकी बराबरी कर सकता है ॥ ४४ ॥ जब मैंने अज्ञानतासे अम्बरीषके ऊपर दारुण कृत्या छोडीथी तब उसके पुण्यने विष्णुके चक्ररूपसे रक्षा कीथी ॥ ४५ ॥ सो मैं सुनाभके परम दारुण कोटि सूर्यके समान प्रकाशित जगत्के भस्म करनेमें समर्थ ॥ ४६ ॥ युगान्ताग्निके समान चारों ओरसे व्याप्त उसके तेजसे आहत हो मैं इस महीनेके पुण्यप्रभावसेही मुक्त हुआ था ॥ ४७ ॥

नहीं तो नारायणके हाथसे छुटे हुए चक्रसे कौन मुक्त हो सकता है चाहे साक्षात् देव इन्द्रके शत्रुका मारनेवालाभी क्यों न हो ॥ ४८ ॥ हे वामोरु ! न और कोई जीवनसे बच सकता है हे वामांगी ! उस दिनसे मुझे बडा विस्मय हुआ ॥ ४९ ॥ अहो इस महीनेका ऐसा प्रभाव है जिसे कोई नहीं जानता कारण कि, महामाहात्म्यवाले विष्णुने इसे स्वीकार किया है ॥ ५० ॥ हे सुश्रोणि ! इस कारण श्रीमान् पुरुषोत्तम मासका तुम भजन करो जिसका सम्यक् व्रत करनेसे आनन्दकी प्राप्ति होती है ॥ ५१ ॥ इस सूर्यरूप व्रतसे दुःखरूपी अंधकार दूर होजाता है. हे वरानने ! प्राणी इसको

नो चेद्धरिकरान्मुक्तचक्रकोपाद्विमुच्यते ॥ यदि साक्षाद्भवेद्देवः सहस्रनयनारिहा ॥ ४८ ॥ कश्चिदन्योऽपि वामोरु जीवन्याति कथंचन ॥ तदाप्रभृति वामांगि विस्मयो मे महानभूत् ॥ ४९ ॥ अहो ह्येतादृशो मासो न ज्ञातः केन हेतुना ॥ महामाहात्म्यवान्विष्णुर्येनायमुररीकृतः ॥ ५० ॥ तस्माद्भज त्वं सुश्रोणि श्रीमंतं पुरुषोत्तमम् ॥ यस्मिंश्चीर्ण-व्रताः शश्वत्सौख्यसागरगामिनः ॥ ५१ ॥ दुःखध्वांतौघपुंजौघनाशो विद्धि हि भास्करम् ॥ तावदन्ये प्रशंसंति स्वात्मा-नं च वरानने ॥ ५२ ॥ नोदितः पातकध्वांतविध्वंसचतुरो रविः ॥ तत्साधनसहस्राणि निरस्य त्वं द्विजात्मजे ॥ ५३ ॥ केवलं हरिनामानं मासं तिष्ठस्व सर्वथा ॥ इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलो विरराम स खिन्नवत् ॥५४॥ न शशाक पुनर्वक्तुं मास-माहात्म्यमद्भुतम् ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इति श्रुत्वा ऋषेर्बाला बाल्यान्मोहाच्च गर्वतः ॥ ५५ ॥

जबतक प्राप्त नहीं हुआ है तभीतक दूसरे व्रतोंकी प्रशंसा है ॥ ५२ ॥ जबतक पातकरूपी अंधकार नाश करनेको पुरुषोत्तमरूप सूर्योदय नहीं होता है हे द्विजात्मजे ! सो तू सहस्रों दूसरे साधनोंको छोडकर ॥ ५३ ॥ केवल हरिनाम मासके स्मरणमें सर्वथा स्थित हो इस प्रकार कह खिन्न हुएके समान मुनि मौन हुए ॥ ५४ ॥ और फिर इस मासके माहात्म्य कहनेको समर्थ न हुए, श्रीकृष्ण बोले-वह बाला ऋषिके यह वचन सुन मोह और गर्वसे ॥ ५५ ॥

और होनहारके वशसे असूयापरवश हुई और ग्रंथके मतको ग्रहण कर मुनिके वचनको स्वीकार नहीं किया ॥ ५६ ॥ वह सुन्दरी क्रूर और कल्पित मतको विचारने लगी कन्याने कहा हे ब्रह्मन् ! यह आपका-वाक्यविस्तार मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ ५७ ॥ माघादि महीनोंको अतिक्रमण कर आप कैसे ऐसे वचन कहते हो यह सम्पूर्ण शास्त्रका तिरस्कार आपको योग्य नहीं है ॥५८॥ आप कार्तिकादि मास और चान्द्रायणादि व्रत त्यागकर इसको किस प्रकार कहते हो ॥ ५९ ॥ हे मुने ! वैशाख महीना क्या व्रत करनेसे मुक्तिदाता नहीं है, क्या सदाशिवादि

भाविनोऽपि बलाच्चैव सासूयापूरिताभवत् ॥ अन्य ग्रंथमतं गृह्यानादृत्य मुनिभाषितम् ॥ ५६ ॥ क्रूरमंतककल्पं हि सा चिंतयति सुंदरी ॥ कन्योवाच॥ न मह्यं रोचते ब्रह्मंस्त्वदीयो वाक्यविस्तरः ॥५७॥ कथं माघादिमासांस्त्वमतिक्रम्याव-भाषसे ॥ न वै त्वय्युपपद्येत सर्वशास्त्रोपमर्दनम् ॥ ५८ ॥ कथं कार्त्तिकमासं त्वमूनं वदसि तद्वद ॥ चांद्रायणादिकं त्यक्त्वा विरुद्धं किं प्रभाषसे ॥५९॥ वैशाखः किमु नो दाता फलानां चरितव्रतः ॥ सदाशिवादयो देवाः सिद्धिदा न भवंति किम् ॥ ६० ॥ भगवान्रुक्मिणीनाथः सेवितो न सुखप्रदः ॥ अथवा भुवि मार्तंडो देवः प्रत्यक्षदर्शनः ॥ ६१ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्ध्यानाद्दुःखौघौघविनाशनः ॥ किंवाष्टादशदोर्दंडराजिता जगदंबिका ॥ ६२ ॥ शाकंभरी महादेवी कष्टहंत्री भवेन्नहि ॥ सिंदुरारुणसद्गात्रशुण्डपुष्करराजितः ॥ ६३ ॥ दुःखहा न भवेत्किंतु श्रीमान्विघ्नविनाशकृत् ॥ व्यतीपातादिकान्योगानुपरागानपि प्रभो ॥ ६४ ॥

देवता मुक्ति देनेवाले नहीं हैं ॥ ६० ॥ क्या भगवान् रुक्मिणीनाथ सेवन करनेसे सुख देनेवाले नहीं हैं अथवा मार्तण्डदेव सेवन करनेसे प्रत्यक्ष दर्शनवाले नहीं हैं ॥ ६१ ॥ क्या यह देव दर्शन स्पर्श और ध्यानसे दुःखसमूह नाश नहीं करते वा अठारह भुजासे युक्त जगदम्बा ॥ ६२ ॥ शाकंभरी देवी कष्ट हरनेवाली नहीं है सिंदूरकी समान अरुणशरीर शुण्डमें शोभित कमल ॥ ६३ ॥ विघ्नविनाशी गणेशजी क्या दुःखहारी नहीं हैं

प्रभो ! व्यतीपातादि योग और ग्रहण ॥ ६४ ॥ सम्पूर्ण पुण्ययोग संक्रांति अयन तप नियम और उपासनीय अनेक देवता हैं ॥ ६५ ॥ आप सबको उल्लंघन कर कहनेमें लज्जित क्यों नहीं होते हो । हे द्विज ! आपने क्या आश्रय कर मलमासका प्रकाश कियाहै ॥ ६६ ॥ सब साधनोंकी निन्दा कर यह वार्ता आपको कहनी योग्य नहीं है । हे मुने ! सब प्रकारके दुःख और भवसागरसे पार करनेवालेको मैं जानतीहूं ॥ ६७ ॥ हे भूदेव ! उन्हीको रात दिन चिन्ता करती उनके सिवाय दूसरेको नहीं जानती । कौशल्यानंदन राम और जानकीके सिवाय और नहीं जानती ॥ ६८ ॥ अथवा गंगाधारी

पुण्ययोगानपि सर्वान्संक्रांतिं ह्ययनेऽपि च ॥ तपांस्यन्यानि नियमानुपास्यानपि देवताः ॥ ६५ ॥ सर्वानुल्लंघ्य वदतस्त्रपा ते किं न जायते ॥ किमाश्रित्य त्वया विप्र मलमासः प्रकाशितः ॥ ६६ ॥ नैवं वक्तुं भवान्युक्तः सर्वसाधननिंदनः ॥ वेद्म्यहं सर्वदुःखानां पारदं भवसागरे ॥ ६७ ॥ नान्यं पश्यामि भूदेव चिंतयंती दिवानिशम् ॥ रामाद्वै जानकीजानेः कौशल्यानंदवर्द्धनात् ॥ ६८ ॥ अथवा स्वर्धुनीपूरधारिणः शंकरादृते ॥ बाणासुरदशग्रीवादयः सिद्धिं पुरो गताः ॥ ६९ ॥ पुत्रपौत्रमयीं सिद्धिं यथेष्टां माघपूजनात् ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ॥ ७० ॥ सदाशिवप्रसादेन लेभे पुत्रान्सहस्रशः ॥ विहाय तं महादेवं धूर्जटिं शशिशेखरम् ॥ ७१ ॥ एतान्विहाय सततं कथमेनं प्रशंससे ॥ नैतन्मे रोचते ब्रह्मंस्तव वाक्यं न संशयः ॥ ७२ ॥

शंकरके सिवाय और कौन देव है जिनकी आराधना करनेसे रावण बाणासुर आदिक सिद्ध होगये ॥ ६९ ॥ माघके पूजनसे पुत्रपौत्रमयी सिद्धि मिलती है उसमें भगवान् भक्तवत्सल देवकीनंदनका पूजन होता है ॥ ७० ॥ सदाशिवके प्रसादसे सहस्रों पुत्रोंको प्राप्त हुए उन धूर्जटि शशिशेखर महादेवको छोडकर ॥ ७१ ॥ तथा अन्य देवताओंका छोडकर आप कैसे इस महीनेका वर्णन करतेहो । हे ब्रह्मन् ! निःसन्देह मुझे आपका वाक्य

अच्छा नहीं लगता ॥ ७२ ॥ उस समय उस कन्याके यह वचन कहने पर वह क्रोधी मुनि शरीरसे प्रकाशमान हो क्रोधसे लाल नेत्र कर ॥ ७३ ॥ जैसे कि घृतसे प्रज्वलित हुत अग्निपर कोई जल छिडके इस प्रकार व्याकुल हो कुछ न बोले क्रोधसे चित्त और शरीर चलायमान होगया ॥ ७४ ॥ मुहूर्तमात्रतक इधर उधर देखते रहे और फिर उसके वाक्यको विचारते हुए भगवान् बोले ॥ ७५ ॥ और मित्रसुता जानकर क्रोधित होकरभी उसे शाप

एवमुक्तस्ततो विप्र पुत्र्या सक्रोधनो मुनिः ॥ जाज्वल्यमानो वपुषा रोषसंरक्तलोचनः ॥ ७३ ॥ जज्वालाज्यसरिद्धारासिक्तकालाग्निवन्मुनिः ॥ नोवाच किंचित्कुपितश्चलत्क्लिष्टकलेवरः ॥ ७४ ॥ मुहूर्तमात्रं तत्रैव तस्थौ दिगवलोकनः ॥ अथावभाषे भगवांस्तद्वाक्यमनुशीलयन् ॥ ७५ ॥ कुपितोऽपि शशापैनां नैव मित्रसुता हि सा ॥ कुमारी ललिता बाला दुःखदग्धा निराश्रया ॥ ७६ ॥ किं करिष्यति मच्छापदग्धा प्रागेव भर्जिता ॥ ऋषिरुवाच ॥ भो भो बाले न मे कोपस्त्वयि त्राता ततः शुभे ॥ ७७ ॥ येन चेतः प्रसन्नं स्यात्तत्कुरुष्व शुचिस्मिते ॥ नाहं वक्ष्यामि ते किंचित्त्वत्पुरः शुभशंसिवत् ॥ ७८ ॥ नोपचारस्त्वदीयोऽस्ति मनागपि कथंचन ॥ भाग्यहीने नरे व्यर्थं उपदेशो भवेच्छुभे ॥ ७९ ॥ मुमूर्षोर्भेषजं यद्वत्क्लीबे दारपरिग्रहः ॥ अंधाग्रे च यथादर्शः पुस्तकं च जडाग्रतः ॥ ८० ॥ मरौ कूपखानिर्यद्वद्गतासोर्भूषणक्रिया ॥ ऊषरे बीजनिक्षेपः सागरे वृष्टिरुद्गता ॥ ८१ ॥

नहीं दिया, कारण कि वह कुमारी बाला स्वयं दुःखसे दग्ध होरहीथी ॥ ७६ ॥ यह तो पहलेही दग्ध होरहीहै इसको मेरा शाप क्या करेगा यह विचार ऋषि बोले—हे बाले ! हे शुभे ! तुझपर मेरा कोप नहीं है ॥ ७७ ॥ हे शुचिस्मिते ! जिसमें तेरा चित्त प्रसन्न हो सो करो और मैं तेरा शुभशंसी अब और कुछ नहीं कहूंगा ॥ ७८ ॥ तुझमें किंचित्भी उपचार नहीं है भाग्यहीन मनुष्यको उपदेश व्यर्थ है ॥ ७९ ॥ मरनेवालेको औषधी देनीसी है जैसी नपुंसकको स्त्रीकी प्राप्ति, अंधेके आगे जैसे दर्पण, मूर्खको जैसे पुस्तक ॥ ८० ॥ मरुदेशमें कुएका खोदना और मरे हुएको भूषणोंसे सजाना, ऊषरमें बीजका बोना

और सागरमें वर्षा ॥ ८१ ॥ कृतघ्न मित्रके ऊपर कृपा, सागरमें जल डालना, दुर्जनसे सद्वचन कहना यह सब निष्फल हैं ॥ ८२ ॥ हे भाग्यरहिते ! जो तेरे मनमें है वह तू निरंतर कर मेरा वचन मुझमें स्थित रहो ॥ ८३ ॥ औरभी मैं कुछ तुझसे कहता हूं सुन जो कि तैंने विष्णुके महीनेका निरादर किया है ॥ ८४ ॥ सर्वथा उसका फल इस जन्म वा परजन्ममें मिलेगा अब मैं तुझसे पूछकर विशाल बदरीवनको जाताहूं ॥ ८५ ॥ हे

मित्रे कृपा कृतघ्ने च सागरे च यथा पयः ॥ तत्सर्वं निष्फलं यद्वद्दुर्जने सद्वचस्तथा ॥ ८२ ॥ यत्ते चेतसि संजातं सुष्ठुभाग्यविवर्जिते ॥ तत्त्वं कुरुष्व सततं मद्वचो मयि संस्थितम् ॥ ८३ ॥ परं किंचित्समाख्यास्ये शृणु तन्निर्व्यलीकतः ॥ विष्णुश्रेयस्य मासस्य यत्त्वया नादरः कृतः ॥ ८४ ॥ सर्वथा तत्फलं लभ्यमिह वा परजन्मनि ॥ गच्छामि तेऽभ्यनुज्ञातो विशालां बदरीमहम् ॥ ८५ ॥ शापं दद्मि न वामोरु मित्रो मे त्वत्पिता यतः ॥ मित्रद्रोहो भवेन्मह्यं शप्तायां त्वयि सर्वथा ॥ ८६ ॥ तेन मे संयतः कोपः कालकूटसमाकृतिः ॥ स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि मा मे कालव्ययो भवेत् ॥ ८७ ॥ शुभं शुभेतरं भावि न केनाप्यवगम्यते ॥ ८८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दुर्वाससऋषिपुत्र्या सह संवादो नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ इति वाचमुदीर्यासौ जगामात्रिसमुद्भवः ॥ क्षणादृषिसुता जाता निष्प्रभा मुनिवाक्यतः ॥ १ ॥

रु ! जिस कारण कि तेरे पिता मेरे मित्र थे इस कारण मैं तुझको शाप नहीं देता हूं तुझको शाप देनेमें सर्वथा मित्रद्रोह होता है ॥ ८६ ॥ इस मैंने कालानलकी समान क्रोधको रोक लिया है तेरा मंगल हो मैं जाता हूं मेरा कालव्यय न हो ॥ ८७ ॥ होनहार सुख दुःखको कोई नहीं जानसकता ॥ ८८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दुर्वाससऋषिपुत्र्या सह संवादो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ यह वचन कह अत्रिपुत्र दुर्वा-

साजी चलेगये और उनके वाक्यसे ऋषिसुता क्षणमात्रमें प्रभाहीन होगई ॥ १ ॥ और बहुतकालतक विचार करती रही कि अब मुझको क्या करना चाहिये अब मैं तपसे पार्वतीपति देवेशकी आराधना करूंगी ॥ २ ॥ दुःखरूपी अग्निदुःखका कुण्ड दुःखका स्रुव है उसमें दुःखरूप दुर्वासाही होता और दुःखरूपी घृत आहुति है ॥ ३ ॥ इस समिद्ध हुई अग्निको कोई जलसे बुझानेवाला नहीं है केवल संकटमोचन शंकरही इससे छुडानेवाले हैं ॥ ४ ॥ यह मनमें विचार कर वह ऋषिकन्या मुनिके वाक्यको अनादर कर दुर्वासाके वाक्यसे मुग्ध हुई ॥ ५ ॥ वह कल्याणी दुष्कर तप करने लगी

विमृश्य सुचिरं कालं किंनु कार्यं मयाधुना ॥ आराधयामि देवेशं तपसा पार्वतीपतिम् ॥ २ ॥ दुःखाग्नौ दुःखकृत्कुंडे दुःखस्रुस्रुवसंभृते ॥ दुर्वासा दुःखहोतायं दुःखाज्यं हुतवान्किल ॥ ३ ॥ समिद्धपावकस्यास्य सेक्ता नास्त्यधुनांबुना ॥ सदाशिवादृते शंभोर्दृढसंकटमोचनात् ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य मनसा ह्यार्षेयी कन्यका तदा ॥ अनादृत्य मुनेर्वाक्यं मुग्धा दुर्वाससः शुभम् ॥ ५ ॥ समारभत कल्याणी तपः परमदुष्करम् ॥ चिंतयंती शिवं शांतं पंचवक्रं सनातनम् ॥ ६ ॥ भुजंगभूषणं देवं नंदिभृंगिनिषेवितम् ॥ चतुर्विंशतितत्त्वेशं गुणैस्त्रिभिरभिष्टुतम् ॥ ७ ॥ महासिद्धिभिरष्टाभिः प्रकृत्या पुरुषेण च ॥ महत्तत्त्वेन दीप्तेन ह्यहंकारेण संस्तुतम् ॥८॥ चंद्रकांत्या लसद्भालं जटाराजिविराजितम् ॥ चचार दुश्चरं बाला तमुद्दिश्य सदाशिवम् ॥ ९ ॥ कर्तुं शक्यं न केनापि तपः परमदारुणम् ॥ पंचानामग्निनां मध्ये स्थायिनी ग्रीष्मगे रवौ ॥ १० ॥

और पंचमुख सनातन शिवका विचार करने लगी ॥ ६ ॥ भुजंगभूषण देव नंदी भृंगीसे सेवित चौवीस तत्त्वोंके अधिपति तीन गुणोंसे युक्त ॥ ७ ॥ आठ महासिद्धि और प्रकृति पुरुष दीप्त महत्तत्त्व और अहंकारसे स्तुतिको प्राप्त ॥ ८ ॥ चन्द्रकान्तिसे शोभित मस्तक जटासमूहसे शोभित शिवके उद्देशसे वह बाला दुष्कर तप करने लगी ॥ ९ ॥ ऐसा तप करने लगी कि, कोई कर न सके ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापती ॥ १० ॥

हेमन्तमें शीतल जलमें बैठ तप करती इस प्रकार तप करतीं वह महाभागा केवल पद्मिनीकी समान शोभित हुई ॥ ११ ॥ श्यामकेश अलकोंसे युक्त जंबालकी बेलके समूहसे चारों ओर वेष्टित ॥ १२ ॥ कि, जिसके ब्रह्मरंध्रसे धूम निकलने लगा था और कमलिनीकी समान हंसी जिसकी निरन्तर सेवा कररही थीं ॥ १३ ॥ दीप्तिमान् शरीरसे सदाशिवकी सेवा करती हुई दोनों संध्या मानो उससे धुमेली हो रही हैं ॥ १४ ॥ थोडेही समयमें वह देवसमूहसे विशंक होगई देवता और सिद्धोंसे दुर्धर्ष और महर्षियोंकी स्पृहा करने योग्य हुई ॥ १५ ॥ हे राजन् ! जब वह इस प्रकार शिवपूजनमें

हेमंते शिशिरे शीतवारिकुंडानिवर्तिनी ॥ राजते च महाभागा पद्मिनीव तु केवला ॥ ११॥ शिरोधःप्रसृतश्यामनीलालकाविगुंफिता ॥ जंबालवल्लरीपुंजपरितः परिवेष्टिता ॥ १२ ॥ ब्रह्मरंध्रोद्गतश्रीमद्धूमराजिप्ररोहिणी ॥ नलिनी सेव्यमानेव हंसीव सततं स्थिता ॥१३॥ वपुषा दीप्यमानेन सेवमाना सदाशिवम् ॥ संध्ययोरुभयोस्तन्वी धूम्रपानकृतस्पृहा॥१४॥ विशंका सुरसंघानां कालेनाल्पेन साभवत् ॥ दुर्द्धर्षा दिविजैः सिद्धैः स्पृहणीया महर्षिभिः ॥ १५ ॥ तपस्यायां प्रवृत्तायां तापस्यां नृपभूषण ॥ गतान्यष्टसहस्राणि तदा राजन्यपूजित ॥१६॥ संतुष्टस्तपसा तस्या भगवान्भगनेत्रहा ॥ प्रत्यक्षदर्शनो जातस्तस्या नार्याः समीपगः ॥ १७ ॥ वनिताऽवनता भूत्वा ननाम गिरिजापतिम् ॥ गजषण्मुखनंदीशैः सुसेव्यं सुरपूजितम् ॥ १८॥ मानसैरुपचारैस्तु पूज्यं विश्वेश्वरं विभुम् ॥ तुष्टाव जगतां नाथं भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ १९ ॥ कन्योवाच ॥ विभो शैलजावल्लभप्राणनाथ प्रभो भर्ग भूतेश गौरीश शंभो ॥ नमः सूर्यसोमाग्निनेत्रांविकेश सदाधार मुंडांगमालिन्नमस्ते ॥२०॥

प्रवृत्त हुई तब तप करते उसको आठ सहस्र वर्ष बीत गये ॥ १६ ॥ तब उसके तपसे भगवान् शंकर संतुष्ट हुए तब उस स्त्रीके समीप स्थित हो प्रत्यक्ष दर्शन दिया ॥ १७ ॥ तब उस कन्याने नम्र हो शंकरको प्रणाम किया जो गणेश कार्तिकेय और नंदी आदि गणोंसे पूजित थे ॥ १८ ॥ विश्वेश्वर प्रभुको मानसी उपचारोंसे पूजन कर भक्तियुत चित्तसे जगन्नाथको संतुष्ट करने लगी ॥ १९ ॥ हे सर्वव्यापक ! हे पार्वतीवल्लभ ! हे प्राण-

सदाधार मुण्डमालाधारीके निमित्त नमस्कार हो ॥ २० ॥ जटाजूटमें
नाथ ! हे प्रभो गर्भभूतेश ! गौरीपति शंभु सूर्य सोम अग्निनेत्र अम्बिके॥ भुजंगाधिनाथ आपके निमित्त
गंगा धारण किये कांतिसे शुभ्र शरीर नील कर्णमें अवतंस धारे कोटि बिजलीकी समान कान्तिमान् आपका क्या
नमस्कार है ॥ २१ ॥ आपकी अनेक पुण्योंसे दानव और मानव सेवा करते हैं, हे प्रभो ! भवानी आपके प्रभावको जान सकती है मैं सहस्रमुखसे
वर्णन करूं केवल नमस्कार करतीहूं ॥ २२ ॥ मैं आपके गुण क्या वर्णन करूं जहां वैखरी वाणी और सरस्वती भी मौन होती हैं

जटाजूटगुच्छोल्लसत्स्वर्धुनीभाभराशुभ्रितानीलकर्णावतंसिन् ॥ लसद्रक्तकोटिद्युतिद्योतितांग भुजंगाधिनाथाय तुभ्यं नम-
स्ते ॥२१॥ असावक्तुतानेकपुण्यप्रसंगैः समाश्रीयते मानवैर्दानवैर्वा ॥ प्रभो वाण्यगम्यप्रभावस्तवास्ते कथं वर्णये केवलं त्वां
नतास्मि ॥२२॥ कथं वर्णयामीश ते वै गुणौघान्मुखे वैखरी भारती मेऽल्पवर्णा ॥ सहस्रैर्मुखैर्युक्तनागाधिपोऽपि गुणान्व-
र्णितुं वै प्रभुस्ते नमोऽस्तु ॥२३॥ त्वदीयं प्रपन्नः पदाब्जं पुरारे न वै विद्यते तस्य संसारभीतिः ॥ दयालुः शरण्यागतोद्धार-
कर्त्ता विभो धूर्जटे पाहि मां ह्यार्त्तबंधो ॥२४॥ नरोऽनेकतापाभिभूतांगपीडः परं घोरसंसारमार्गे प्रपन्नः ॥ खलव्यालका-
लोग्रदंष्ट्राभिदष्टो विमुह्येद्भवंतं शरण्यं न याति ॥२५॥ सदा शर्वसर्वांगमोत्तीर्णचित्तो विभुं शंकरं नीलकंठं प्रपन्नः ॥ तदैवाशु
संछिन्नकर्मोग्रजालः परं ब्रह्मभूयाय जंतुः प्रयाति ॥ विभो येन बाणः स्वकीयीकृतस्ते मृता जीविताऽलर्कभूपालपुत्री ॥२६॥

नागाधिप शेषभी आपके गुण वर्णन नहीं करसकते आपको नमस्कार हो ॥ २३ ॥ हे पुरारि ! जो आपके चरणोंके शरणमें आजाता है फिर
उसे संसारका भय नहीं होता, हे दयालु ! शरणमें आये हुओंका उद्धार करनेवाले विभो ! हे धूर्जटे ! दीनबन्धु मेरी रक्षा करो ॥ २४ ॥ यह
प्राणी अनेक तापसे तापित हो परम घोर संसारके मार्गमें पडा है; यह दुष्ट कालके गालमें पडता है विमुग्ध होकर आपकी शरणको प्राप्त नहीं
होता ॥ २५ ॥ सदा सब प्रकार सब अंगसे उत्तीर्णचित्त विभु शंकर नीलकंठकी शरणमें प्राप्त हूं सो आप शीघ्र कर्मके महाबंधनको छिन्न कीजिये

॥ २६ ॥ हे भक्तजन-
जिससे यह प्राणी अपने ब्रह्मरूपको प्राप्त हो, हे प्रभो ! आपने जिस बाणका प्रहार कर अलर्क राजाकी पुत्री मृत्युसे बचाई थी ॥ २६ ॥ हे भक्तजन-
रक्षक ! हे शंकर सुखदायक ! मेरीभी रक्षा करो शरण हूँ; हे दयालु ! कृपासागर जटाजूटधारी आपने विदर्भराजपुत्रीका मनोरथ सिद्ध किया है; इसी प्रकार
मेरे हृदयमें जो अभिलाषा है हे भवानीपति ! उन्हें आप पूर्ण कीजिये ॥२७॥ यह प्राकृत मनुष्य अनेक प्रकारके पापसे युक्त होकर शंकरकी शरणमें नहीं
जाते । हे विभो ! हे नाथ ! हे भूतेश ! हे चण्डीश ! भर्ग भवत्राणकर्ता मृत्युंजय उक्षेशगामिन् ! ॥२८॥ मैं अबला होनेके कारण आपकी स्तुति करनेको

दयालो कृपालो कपर्दिन्यथेश विदर्भांगजायाः कृतं वांछितं ते ॥ तथा मामके मानसे योऽभिलाषः कुरु त्वं भवानीश
साक्षात्समेत्य ॥ २७ ॥ जनः प्राकृताघौघसंप्लुष्टदेहो दयालुं शरण्यं सुरेशं न याति ॥ विभो नाथ भूतेश चंडीश
भर्ग भवप्राण मृत्युंजयोक्षेशगामिन् ॥ २८ ॥ स्तुतिं नैव कर्तुं समर्थाबलाहं पुरारेऽधकारे नमस्ते नमस्ते ॥ २९ ॥
श्रीकृष्ण उवाच ॥ तमीड्यैवं ह्युपरता शर्वं सर्वांगमीश्वरम् ॥ सुसंतुष्टस्तया स्तुत्या जगाद वचनं हरः ॥ ३० ॥
प्रसन्नवदनांभोजः प्रपन्नपरवारिधिः ॥ अनेकदुःखसामुद्रशोषणेऽगस्त्यसन्निभः ॥ ३१ ॥ वद भामिनि ते चैत्यं द्विज
ते द्विजनंदिनि ॥ नित्यमद्भुततपासि रतासि वरवर्णिनि ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ मुदिता नादमाकर्ण्य साक्षादश्रुवा-
कुलेक्षणा ॥ निदाघार्कांशुसंततो वारि प्राप्य यथा कृशः ॥ ३३ ॥

नहीं समर्थ हूँ; हे पुरारि ! हे अंधकारि ! आपको प्रणाम है प्रणाम है ॥ २९ ॥ श्रीकृष्ण बोले—इस प्रकार स्तुतियोग्य शर्व सर्वांग ईश्वरकी स्तुति
करके वह कन्या मौन हुई तब उसकी स्तुतिसे प्रसन्न हो ॥ ३० ॥ प्रसन्न मुखकमल कृपासागर अनेक दुःखसागरके शोषनेमें अगस्त्यकी
समान शिव बोले ॥ ३१ ॥ हे द्विजनंदिनी ! जो कुछ मुझे अभिमत हो सो कह, हे वरवर्णिनी ! तैंने निरन्तर तपमें मन लगाया है ॥ ३२ ॥
सूतजी बोले—यह शिवके वचन सुनकर वह प्रसन्न हुई नेत्रोंमें आँसू भर आये जैसे गरमीमें सूर्यकी किरणोंसे तप्त भूमिपर जल पडनेसे कृषक प्रसन्न

होता है इस प्रकार सुखी हो ॥ ३३ ॥ वह कामारि शिवजीसे पतिकी इच्छा कर उसीमें मन लगाये अन्य सुखोंसे इच्छा दूर किये बोली ॥ ३४ ॥ हे प्रमथपति ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो हे शितिकंठ ! मेरा उद्देश आप सफल करो ॥ ३५ ॥ आप मुझे पति दो पति दो पति दो पति दो पति दो हे भगवन् ! इसके सिवाय मैं अन्य वरकी इच्छा नहीं करती यही मेरे हृदयमें वर्तता है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार जगत्के गुरु शिवजीसे कह वह ऋषि-कन्या विरामको प्राप्त हुई । शिवजीने उससे कहा हे शुचिस्मिते ! ऐसाही होगा ॥ ३७ ॥ हे शुभे ! एकही वर तैंने पांच वार मांगा है इस कारण तुम्हारे

वरमन्वर्थयत्तन्वी कामधन्विषुमर्दिता ॥ पतिकामा नाप्तसुखा बहुसौख्यगतस्पृहा ॥ ३४ ॥ कुमार्युवाच ॥ संतुष्टोऽसि भवान्मह्यं यदि त्वं प्रमथाधिप ॥ शितिकंठ ममोद्देशं कुरु सत्यं वृषध्वज ॥ ३५ ॥ पतिं देहि पतिं मह्यं पतिं पतिमहं वृणे ॥ पतिं देहि महाराज नान्यं मे चिंतितं हृदि ॥ ३६ ॥ विरराम तदार्षेयी शिवं प्रार्थ्यं जगद्गुरुम् ॥ शर्वोऽप्युवाच वनितामेवमस्तु शुचिस्मिते ॥ ३७ ॥ पंचकृत्वस्त्वया भद्रे याचितोऽयं वरोऽधुना ॥ भविष्यंति वरारोहे पतयः पंच भामिनि ॥ ३८ ॥ सुराः सकलधर्मज्ञा साधवः सत्यविक्रमाः ॥ यज्वानः स्वगुणख्याताः सत्यसंधा जितेंद्रियाः ॥ ३९ ॥ त्वन्मुखप्रेक्षकाः सर्वे भाविनो लोकपूजिताः ॥ येषामैश्वर्यं देवानां स्पृहणीयं भविष्यति ॥ ४० ॥ अन्येषामपि देवानां स्पृहणीयं भविष्यति ॥ त्वं भर्तृकामिनी रामा भविष्यस्यन्यभूमिजा ॥ ४१ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वैतत्कर्णकटुकं वाक्यं वाक्यविशारदा ॥ पुनरूचे शिवं देवं मेवमस्तु जगत्पते ॥ ४२ ॥

पांच पति होंगे ॥ ३८ ॥ मनुष्य नहीं किन्तु वे साधु धर्मज्ञ सत्यपराक्रमी देवता होंगे यज्ञ करनेवाले अपने गुणोंसे विख्यात सत्यसन्ध जितेंद्रिय ॥ ३९ ॥ सब लोकपूजित तेरेही मुखको देखनेवाले होंगे जिनके ऐश्वर्यकी देवताभी आकांक्षा करेंगे ॥ ४० ॥ तथा औरभी देवताओंको स्पृहणीय होंगे और तूभी स्वामीकी इच्छावाली भूमिसे उत्पन्न होगी ॥ ४१ ॥ वह वाक्य बोलनेमें चतुर यह श्रवणकटु वाक्य सुनकर शिवजीसे बोली हे जगत्पते !

यह बात न हो ॥ ४२ ॥ कारण कि एक स्त्रीका एकही पति होता है पांच भर्ता एक स्त्रीकें न देखे न सुने ॥ ४३ ॥ एक पुरुषकी स्त्रियें तो कई होसक्ती हैं परन्तु एक स्त्रीके कई पति तौ नहीं होसक्के ॥ ४४ ॥ हे अहिभूषण ! यह वार्ता कहनेको आप योग्य नहीं हो आप सब भूतोंके हृदयको जानते हो मैं यह वार्ता नहीं चाहती ॥ ४५ ॥ तब शिवजी पंच मुख कंपित करते उससे बोले हे भीरु ! इस जन्ममें नहीं किन्तु जन्मान्तरमें यह बात होगी ॥ ४६ ॥ और उस जन्ममें तपके बलसे तू योनिसे उत्पन्न न होगी अयोनिसे होगी और भर्ताके महासुखको प्राप्त होगी ॥ ४७ ॥ मेरा वाक्य

एकायाः किल कामिन्या एक एव पतिर्भवेत् ॥ पंचभर्तृमती काचिन्न दृष्टा न श्रुता क्वचित् ॥ ४३ ॥ एकस्य पंच कामिन्यः पुरुषस्य भवंति हि ॥ न तु नार्या भवेयुश्च भर्त्तारः पंच एव हि ॥ ४४ ॥ नैवं वक्तुं भवानर्हः सर्वथा ह्यहिभूषण ॥ सर्वभूताशयज्ञस्त्वं कपर्दीश न कामये ॥ ४५ ॥ ततः प्रोवाच तां पंच शिरांस्याधूय शंकरः ॥ मास्तु तेऽस्मिन्भवे भीरु भाव्यं जन्मांतरेषु तत् ॥ ४६ ॥ अयोनिसंभवा तस्मिन्भवित्री त्वं तपोबलात् ॥ भर्तृसौख्यं सुविपुलं भुक्त्वा ब्राह्मं पदं तव ॥ ४७ ॥ भाव्यन्यन्न च मे वाक्यं यदुक्तं तद्भविष्यति ॥ मक्षिकापादमात्रं विषं स्याद्विषमेव हि ॥ ४८ ॥ तथा तु विहितात्पापि क्रिया तत्फलदा भवेत् ॥ तस्माद्विमृश्य कृत्यं हि विधेयं चैव तापसि ॥ ४९ ॥ दुर्वासा मे प्रिया मूर्त्तिर्ब्रह्ममूर्त्तिकृतश्रमः ॥ स त्वयावगतः पूर्वं सोपदेशो मुनीश्वरः ॥ ५० ॥ स कोपावृतसर्वांगो निर्दहेज्जगतां त्रयम् ॥ त्वया चातुर्यशालिन्या ब्रह्मतेजः प्रमर्दितम् ॥ ५१ ॥

अन्यथा नहीं होता जो कहा है सो अवश्य होगा हे शुभे ! जैसे मक्षिकाके चरणमात्रभी विष विषही है ॥ ४८ ॥ इसी प्रकार थोडी की हुई क्रिया भी फलवाली होती है, हे तापसि ! इस कारण विचारकर कृत्य करना चाहिये ॥ ४९ ॥ दुर्वासा मेरी प्रियमूर्ति ब्रह्ममूर्तिमें किये हैं श्रम जिन्होंने उन मुनिके उपदेश करनेपरभी पहले तैंने उनका निरादर किया है ॥ ५० ॥ वह क्रोध करके तौ त्रिलोकीको भस्म कर

सकते हैं। तैंने अपनी चतुरतासे उस ब्रह्मतेजका तिरस्कार किया है ॥ ५१ ॥ जो पुरुषोत्तममास परब्रह्मात्मक है हे मानिनि ! अपने मानसे तैंने उसे चरणाक्रान्त कर दिया ॥ ५२ ॥ मैं ब्रह्मा प्रजापति जो नारद आदि मुनीश्वर हैं इन्द्र सूर्य अग्नि पवन वरुण ॥ ५३ ॥ जिसकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं कर सकते कौन उसकी आज्ञा उल्लंघन करसकता है यह पुरुषोत्तम मास मुझसे भी अधिक प्रिय है ॥ ५४ ॥ वह मुनिके कहने पर भी तैंने कुछ न गिना इस कारण तुझे पांचही पतियोंसे सुखकी प्रीति होगी ॥ ५५ ॥ हे सुभ्रु ! पुरुषोत्तमके खण्डनसे सुख नहीं

परब्रह्मात्मको मासो मासाद्यः पुरुषोत्तमः ॥ सोऽपि वामपदाक्रांतस्त्वया मानिनि मानतः ॥ ५२ ॥ अहं ब्रह्मा प्रजेशा ये नारदाद्या मुनीश्वराः ॥ हरिवाजिपतंगाग्निसमीरणजलेश्वराः ॥ ५३ ॥ यन्निदेशाविधेयात्मा तदाज्ञां को विलंघयेत् ॥ ततः प्रियो हि मासोऽयं नाम्ना यः पुरुषोत्तमः ॥५४॥ स त्वया नैव गणितः ख्यातोऽपि मुनिनासकृत् ॥ अतस्ते पंचनाथानां भविष्यंति सुखाद्रमाः ॥ ५५ ॥ नान्यद्भावि सुखं सुभ्रु पुरुषोत्तमखंडनात् ॥ पुरुषोत्तममासस्य भक्ता ये भुवि मानवाः ॥ ५६ ॥ ऐहिकामुष्मिकीं सिद्धिं याता यास्यंति यान्ति च ॥ वयं सर्वेऽपि गीर्वाणाः श्रीपुरुषोत्तमसेविनः ॥ ५७ ॥ यस्मिन्संसेव्यमानेऽयं प्रीयते मधुहा हरिः ॥ भजनीयं कथं मासं न भजामः सुमध्यमे ॥५८॥ इत्युक्तं चैव मे वाक्यं नैव मिथ्या भविष्यति ॥ परिपाल्या द्विजश्रेष्ठाः सदसद्वादिनोऽपि हि ॥५९॥ सेविताः सर्वदा भद्रे निर्दहंत्यवमानिताः ॥ प्रतीतिर्द्विजवाक्येषु तेषां लोकाः सनातनाः ॥ ६० ॥

होता पृथ्वीमें पुरुषोत्तममासकी भक्ति करनेवाले मनुष्यको ॥ ५६ ॥ इस लोक और परलोककी सिद्धि वारंवार आती और जाती है, हम सब देवता पुरुषोत्तमसेवी हैं ॥ ५७ ॥ जिसके सेवन करनेसे हरि प्रसन्न होते हैं. हे सुमध्यमे ! फिर वह महीना क्यों न सेवाके योग्य हो ? ॥ ५८ ॥ इस कारण मेरा कहा वाक्य मिथ्या न होगा सद्असद्वादी ब्राह्मणोंके वाक्य अवश्य मानना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे भद्रे ! उनका सदा सेवन

करना वे अवमानित हो भस्म कर देते हैं जो ब्राह्मणोंके वाक्यमें प्रतीति करते हैं उनको सनातन लोक प्राप्त होते हैं ॥ ६० ॥ सबसे प्रथम पूजित शिव इस प्रकारके वचन कह फिर गणेश कार्तिकेयसहित तत्काल अन्तर्हित होगये ॥ ६१ ॥ माथेपर शोभित चन्द्रमावाले शिवके अन्तर्धान होनेपर उसको बडी चिन्ता हुई ॥ ६२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे भाषाटीकायां पुरुषोत्तममाहात्म्ये सदाशिवाद्वरप्राप्तिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण बोले ॥ हे राजन् ! इस प्रकार शिवजीके चले जानेपर कान्तिरहित हो वह बाला परम दीन हो श्वास लेती हुई आंखोंसे जल त्यागन

वदन्नेवं शितिकंठः सर्वप्रमथपूजितः ॥ क्षिप्रमंतर्दधे राजन्सहेरंबषडाननः ॥ ६१ ॥ शशांकलेखांकितभालदेशे सदाशिवेंऽतर्द्दाश संप्रयाते ॥ चिंता बबाधे मुनिराजकन्यां हत्वा यथा वृत्रहणं मुनीशाः ॥ ६२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे श्रीकृष्णयुधिष्ठिरसंवादे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सदाशिवाद्वरप्राप्तिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण उवाच ॥ एवं गते शिवे राजन्सा बाला विगतप्रभा ॥ निःश्वासपरमा दीना शुष्यन्नेत्रा कृशोदरी ॥ १ ॥ तस्या नयनजं वारि वह्वप्यप्राप्य भूतलम् ॥ अत्यंततापसंतप्तं वक्षोऽसिञ्चच भारत ॥ २ ॥ दुःखोदधेश्च पारं वै कदाचिन्नाप सुंदरी ॥ अत्यंतायासकृत्येनापीह वंध्यातनूजवत् ॥ ३ ॥ शोकसंतापनिःश्वासशुष्यद्वदनपंकजा ॥ सर्वांगे दह्यमाना सा दावदग्धा लता इव ॥४॥ हाहाकारपरा नित्यमभितः परिधावति ॥ आत्मानं दर्शयामास जडांधबधिरोपमम् ॥५॥

करती थीं ॥ १ ॥ उसके नेत्रोंका जल पृथ्वीपर न पडकर अत्यन्त तापसे युक्त हृदयको भिजाता हुआ ॥ २ ॥ इस प्रकार वह सुन्दरी दुःखसागरके पार न हुई जैसे अत्यन्त यत्न करनेसेभी वंध्या पुत्रको प्राप्त नहीं होती ॥ ३ ॥ शोक संताप और दीर्घ श्वासके कारण उसका मुखकमल सूखगया और सारे अंगसे अग्निसे दग्धलताकी समान व्याकुल होगई ॥ ४ ॥ हाहाकार करती हुई वह चारों ओर धावमान होतीथी और अपनेको जड अंधे

वहरेके समान दिखाने लगी ॥ ५ ॥ कहनेपर भी कुछ नहीं कहती सुनानेपर नहीं सुनती न इच्छासे चलती केवल पवनसे उडाई रुईकी समान भ्रमण करती ॥ ६ ॥ इस प्रकार मार्गमें वर्तमान रहते कुछ समय बीत गया, वह जगद्भक्षी काल एक समय ऋषिकन्याके निकट सहसा आनकर प्राप्त हुआ ॥ ७ ॥ जैसे मूसेके स्थानमें सर्प प्राप्त होता है, कालको आया जानकर वह प्रसन्न हुई ॥ ८ ॥ और बोली मेरे दुःखका अन्त करनेके निमित्तही विधाताने कालको भेजा है यह कहती हुई ब्राह्मणकन्याको कालने अपने वशमें किया ॥ ९ ॥ जैसे मेघयुक्त बलाका पवनसे चलाय-

वाच्यमानापि न ब्रूते श्राव्यमाणा शृणोति न ॥ नेच्छया चरति क्वापि पवनोद्धततूलवत् ॥ ६ ॥ एव मार्गे वर्त्तमाना कियान्कालोऽत्यजायत ॥ जगद्भै भक्षयन्कालः कदाचिद्दपिकन्यकाम् ॥ ७ ॥ सहसा स समापन्नः फणीवाखुनिवेशनम् ॥ ननंदांतकमायांतं ज्ञात्वैतात्प्रियजल्पती ॥ ८ ॥ ममायमेव दुःखांतो मान्यः सृष्टोऽस्ति वेधसा ॥ इति ब्रुवन्ती कालेन वशं नीता द्विजांगजा ॥ ९ ॥ यथा समीरणोद्धूता मेघयुक्ता बलाकिनी ॥ तदाश्रमपदे नष्टा तपसा दग्धकल्मषा ॥ १० ॥ एतस्मिन्नेव समये द्रोणायाभिचरन्क्रुधा ॥ याजोपयाजविप्राभ्यामास्थितो दारुणाकृतिः ॥ ११ ॥ चकार यज्ञं सुभृशं रक्तचंदनचर्चितम् ॥ क्रूरभावसमाविष्टो ब्राह्मणे कृतमर्षणः ॥ १२ ॥ हूयमाने च हवने ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ जज्वाल पावकस्तत्र होमे तस्मिन्युधिष्ठिर ॥ १३ ॥ ततश्चटचटाशब्दो विनिष्क्रांतो विभावसोः ॥ निससारोज्ज्वलद्गात्रा वेदिमध्यादनिंदिता ॥ १४ ॥

मान होती है इसी प्रकार तपसे हीनपाप हुई वह आश्रमपदमें नष्ट हुई ॥ १० ॥ इसी अवसरमें द्रोणाचार्यपर क्रोधित हुए द्रुपदराजा ब्राह्मणोंसे द्रोणके ऊपर अभिचार करानेलगे ॥ ११ ॥ रक्तचंदनसे चर्चित सुन्दर यज्ञ कराया वह राजा ब्राह्मणपर क्रोध कर क्रूर भावमें आश्रित हुआ ॥ १२ ॥ जब वेदपारगामी ब्राह्मणोंने अग्निमें आहुति दी, हे युधिष्ठिर ! तब उस हवनमें अग्नि बल उठी ॥ १३ ॥ तब अग्निमेंसे

चटचटा शब्द निकलने लगा तब प्रकाशितशरीर उस वेदीके मध्यसे निन्दारहित ॥ १४ ॥ वही राजा द्रुपदकी कन्यारूप प्रगट हुई वह द्रौपदी चन्द्रमाकी कांतिके समान प्रगट हुई ॥ १५ ॥ यह सब राजोंके बीचमें अर्जुनको प्राप्त होकरभी अनेक दीर्घबाहु राजकुमारोंको तृणकी समान मानती हुई ॥ १६ ॥ वही यह दुःशासनके हाथसे केश आकर्षणको प्राप्त हुई। हे राजन् ! इसके निमित्त कानोंको शूल देनेवाले वचन सुनकरभी ॥ १७ ॥ पुरुषोत्तमके तिरस्कार करनेसे मैंने इसकी उपेक्षा की जब वह दुष्ट इसके वस्त्र खैंचनेमें

सेयं द्रुपदशार्दूलतनया वो रहोगता ॥ द्रौपदी चंद्रकान्ती च ह्यार्षेयी याभवत्पुरा ॥ १५ ॥ लब्धार्जुनेन पांचाली सर्वराजन्यमंडले ॥ तृणीकृत्वा नृपसुतान्दीर्घबाहूनकेकशः ॥ १६ ॥ सेयं कचग्रहं प्राप्ता दुःशासनकराग्रगा ॥ वचांसि कर्णशूलानि श्राविता वरवर्णिनी ॥ १७ ॥ मया चोपेक्षिता राजन्पुरुषोत्तमहेलनात् ॥ यदाक्षेपे प्रवृत्तोऽसावंशुकस्य पृथात्मज ॥ १८ ॥ दुःशासनो दुष्टबुद्धिर्धृतराष्ट्रतनूद्भवः ॥ प्रदत्तानि तदा राजन्मया वासांस्यनेकशः ॥ १९ ॥ सदा मयि कृतस्नेहा मामेति प्रियजल्पती ॥ मामेव ध्यायती नित्यं साध्वी गुणविभूषणा ॥२०॥ यदा बभाषे राजेंद्र इति वाचः सुपेशलाः ॥ ताः श्रुता मे महाबाहो दयार्द्रीकृतचेतसा ॥ २१ ॥ माता न बंधुः सहजो न नेता सख्यो न जामिर्न च भागिनेयः ॥ नेष्टः सुहृद्वर्गतनूजवर्गस्तस्माद्धृषीकेश त्वमेव रक्ष ॥ २२ ॥

प्रवृत्त हुआ ॥ १८ ॥ तब उस धृतराष्ट्रपुत्र दुर्बुद्धि दुःशासनकी दुष्टता विचार मैंने इसको वस्त्रमय कर दिया ॥ १९ ॥ यह सदा मुझमें स्नेह कर मेरी ही चर्चा करती है और गुणयुक्त यह साध्वी नित्य मेराही ध्यान करती है ॥ २० ॥ हे राजन् ! जब इसने मनोहर वचनोंसे मेरी पुकार की उस समय इसके वचनसे चित्त दयामय होगया ॥ २१ ॥ द्रौपदीजीने कहाथा माता बंधु सहज मित्र सखी बहन भानजा सुहृद्वर्ग पुत्र आदि तथा पति

इस समय कोई मुझे बचानेको समर्थ नहीं है इस कारण हे हृषीकेश ! तुम मेरी रक्षा करो ॥ २२ ॥ उस समय पांचालीने मेरा स्मरण कियाथा इस कारण सभामें कोई इसको वस्त्ररहित न देखसका ॥ २३ ॥ वनमें रहना दुःखरूप है और बडा दारुण शत्रुताप है हे राजन् ! इसी कारण मैंने उपेक्षा की ॥ २४ ॥ जैसा यह महीना मुझे प्यारा है ऐसे अन्य महीने नहीं हैं। यह सदा देवताओंसे सेवने योग्य है मनुष्योंकी तो कौन कहै ॥२५॥ हे राजन्यश्रेष्ठ ! इस कारणसे होनहार अवश्य होगी शिवका कहा वचन सत्य होगा द्रौपदी पुत्र सुखभागिनी न होगी ॥ २६ ॥ सूतजी बोले ॥ त्रिलो-

तदा मे स्मरणं जातं पांचाल्याः शत्रुकर्शन ॥ तेन नालोकिता तन्वी स्रस्तवस्त्रा सभां गता ॥ २३ ॥ वने वासोऽतिदुःखार्तः शत्रुलंभः सुदारुणः ॥ उपेक्षितो मया राजन्मत्प्रियोपेक्षणेन वै ॥ २४ ॥ यथायं मत्प्रियो मासस्तथेमे द्वादशापि न ॥ सर्वदा सुरसेव्योऽयं मानुषैः किमुतापरैः ॥ २५ ॥ तद्राजन्यवरश्रेष्ठ तत्तथैव भविष्यति ॥ शिवेनोक्तं वचः सत्यं न कृष्णा सुतसौख्यभाक् ॥ २६ ॥ सूत उवाच ॥ शनैस्तद्वचनं श्रुत्वा हरिस्त्रैलोक्यपावनः ॥ पुनस्तां सांत्वयामास यज्ञसेनसुतां प्रियाम् ॥ २७ ॥ धृष्टद्युम्नानुजे बाले पश्यासि त्वं वरानने ॥ वर्षे चतुर्दशे देवि यद्भाव्यं गजगामिनी ॥ २८ ॥ व्यालोकि चिकुरव्रातस्तवार्यं यैः कृशोदरि ॥ तन्नारीणां वरारोहे निर्वापिष्येऽलकानहम् ॥ २९ ॥ सुयोधनादिभूपालान्सर्वान्नेष्ये यमक्षयम् ॥ इति सत्यं ब्रवीम्यत्र त्वं जानीहि सुमध्यमे ॥ ३० ॥ न प्रिया मे तथा लक्ष्मीः प्रियो नापि हलायुधः ॥ न तथा देवकीदेवी प्रद्युम्नो नैव सात्यकिः ॥ ३१ ॥

कीके पवित्र करनेवाले श्रीकृष्णने शनैः २ यह वचन सुनाकर फिर द्रौपदीको समझाया ॥ २७ ॥ हे वरानने ! जो कि, तुम अपने मोटे भ्राता बाल धृष्टद्युम्नको देखती हो जो कुछ चौदहवें वर्षमें होनहार है ॥ २८ ॥ हे वरारोहे ! जिन्होंने तुम्हारे साथ व्यतिकर कर्म कियाहै उनकी स्त्रियोंके बाल खुलवा दिये जायंगे ॥ २९ ॥ सुयोधनादि सब राजोंको यमलोक पहुँचाऊंगा । हे सुमध्यमे ! यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं ॥ ३० ॥ मुझे लक्ष्मी

बलराम देवकी प्रद्युम्न सात्यकि ॥ ३१ ॥ अनिरुद्ध गरुड सुदर्शन चक्र तथा चतुर्भुजरूप ऐसा प्यारा नहीं है ॥ ३२ ॥ जैसे मुझे भक्त प्रिय हैं ऐसी कोई वस्तु प्रिय नहीं है, त्रिलोकीमें भक्तके तुल्य कोई वस्तु प्रिय नहीं है ॥ ३३ ॥ हे शुभे ! जो मेरे साथ द्वेष करता है मैं उसको उसके सौवें भागकी बराबर नहीं मानता जैसा कि, भक्तके दुःखसे दुःख मानता हूं ॥ ३४ ॥ हे सुश्रोणि ! सावधान हो तुमको सुखकी प्राप्ति होगी विना दिया स्वप्नमेंभी नहीं मिलता जैसे खरगोशके शृंग नहीं होते ॥ ३५ ॥ द्रौपदीको समझाकर श्रीकृष्ण बोले हे अजातशत्रु ! धर्मज्ञ सम्पूर्ण धर्मोंके

नानिरुद्धः सुपर्णो वा न च चक्रं सुदर्शनम् ॥ न मे चतुर्भुजं रूपं प्रियं तादृक्सुमध्यमे ॥ ३२ ॥ यथा वै मे प्रिया भक्तास्तादृङ् मे नास्ति किंचन ॥ त्रिषु लोकेषु यद्वस्तु भक्ततुल्यं न विद्यते ॥ ३३ ॥ येन मे पीडितो भक्तस्तैरहं शतशः शुभे ॥ द्वेष्यो मे नास्ति तत्तुल्यो यन्मे विप्रकृतो जनः ॥ ३४ ॥ समाश्वसिहि सुश्रोणि भविष्यति सुखं तव ॥ नादत्तं प्राप्यते स्वप्ने कदापि शशशृंगवत् ॥३५॥ समाश्वास्य द्रुपदजामुवाच मधुसूदनः ॥ अजातशत्रो धर्मज्ञ सर्वधर्मभृतां वर ॥ ३६ ॥ राजन्मामनुजानीहि यास्याम्यद्य कुशस्थलीम् ॥ सीरपाणिर्महाबाहो यमुनाकर्षणो बली ॥ ३७ ॥ आहुको वसुदेवश्च गदसांबोद्धवादयः ॥ देवकी च महाभागा रौक्मिणेयोऽथ सारणः ॥ ३८ ॥ सर्वे तेऽनिमिषैर्नेत्रैर्ममागमनकांक्षिभिः ॥ मन्मार्गमुक्तनयनाश्चिंतयंतो दिवानिशम् ॥ ३९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तवंतं देवेशं कथंचित्पांडवाग्रजः ॥ कृष्णप्रयाणकातर्याद्गद्गदाश्रु प्रमुक्तवान् ॥ ४० ॥

जाननेवाले ॥ ३६ ॥ अब मुझे आज्ञा दो तो मैं द्वारकाको जाऊं यह हलधर महाबली जिन्होंने यमुना आकर्षण कियाहै ॥ ३७ ॥ तथा आहुक वसुदेव गद साम्ब उद्धव देवकी रुक्मिणीपुत्र प्रद्युम्न सारण ॥ ३८ ॥ यह सब हमारे आनेकी बाट देखरहे हैं मेरे मार्गमें नेत्र लगाये दिनरात विचार करते हैं ॥ ३९ ॥ सूतजी बोले ॥ देवेशके ऐसा कहनेपर युधिष्ठिरने कठिनतासे श्रीकृष्णके जानेसे कातर हो उनको जानेकी आज्ञा दी ॥ ४० ॥

नारायणके वचन श्रवणमें रति करनाही विष्णुभक्तोंको परम उचित है, आप हमको फिर शीघ्र दर्शन देना ॥ ४१ ॥ हे देवकीनंदन ! आप हमारे जीवन हो आप पाण्डवोंके स्वामी जगत्में प्रतिष्ठित हो ॥ ४२ ॥ हे कृष्ण ! सदा हमारी रक्षा करो, मनसे भूलना मत, आप हमारे चित्तरूप कमलके भ्रमर हो ॥ ४३ ॥ वारंवार पाण्डुपुत्रसे मिलकर श्रीकृष्ण आनर्तवासियोंसे पूजित हो द्वारकापुरीमें गये ॥ ४४ ॥ कौमोदकीधारी प्राणनाथ जगत्प्रिय

जीवनं विष्णुभक्तानां हरिरेव च नेतरत् ॥ पुनर्दर्शनमल्पेन कालेनास्तु गदाग्रज ॥ ४१ ॥ देवकीनंदनः श्रीमानस्माकं जीवनं भवान् ॥ पांडवानां हरिर्नाथो जगत्येतत्प्रतिष्ठितम् ॥ ४२ ॥ सदा नः पाहि दाशार्ह मा नो विस्मरणं कुरु ॥ अस्मच्चेतःसरोजानां षट्पदोऽस्तु भवान्विभो ॥ ४३ ॥ असकृत् पांडुपुत्रेषु गृणत्स्वेवं यदूद्वहः ॥ प्रायाद्द्वारवतीं ब्रह्मन्नानर्त्तजनपूजितः ॥ ४४ ॥ गते कौमोदकीबाहौ प्राणनाथे जगत्प्रिये ॥ राजापि भ्रातृसहितः पर्यतप्यद्द्विजोत्तम ॥ ४५ ॥ चचारानेकतीर्थानि चिंतयन्पुरुषोत्तमम् ॥ पुनःपुनश्च राजेंद्रो विस्मितेनांतरात्मना ॥४६॥ भीमादीननुजान्सर्वानुवाच धीमतां वरः ॥ श्रुतं भवद्भिर्वचनं विष्वक्सेनस्य सत्तमाः ॥४७॥ अहो मासस्य माहात्म्यं यदुक्तं शार्ङ्गधन्वना ॥ कथं सौख्यं हि लभ्येत नाभ्यर्च्य पुरुषोत्तमम् ॥ ४८ ॥ संपूज्यो भारते वर्षे संपूज्यः श्रेष्ठ एव सः ॥ देवताभिः पूजनीयो भाग्यवान्वै धरातले ॥ ४९ ॥

श्रीकृष्णके जानेपर राजाभी उनके वियोगसे भाइयोंसहित परितापित हुए ॥ ४५ ॥ और पुरुषोत्तमका ध्यान करते अनेक तीर्थोंमें विचरनेलगे हे राजेन्द्र ! वे वारंवार विस्मित हो ॥ ४६ ॥ अपने भीमादि सब भ्राताओंसे बोले, हे भ्राताओ ! तुमने श्रीकृष्णके वचन सुने ? ॥ ४७ ॥ अहो इस पुरुषोत्तम मासका कैसा माहात्म्य है पुरुषोत्तमको विना अर्चन किये किस प्रकार सुखकी प्राप्ति हो सकतीहै ॥ ४८ ॥ इस भारतवर्षमें सबसे

अधिक श्रेष्ठ और पूज्य वही है और देवताओंसे पूजित हो पृथ्वीमें भाग्यवान् होते हैं ॥ ४९ ॥ जिनका यह मास अनेक प्रकारकी पूजा और नियमसे बीता वही पुरुषोत्तम है ॥ ५० ॥ अहो श्रीकृष्णका कहा यह कैसा अद्भुत पुरुषोत्तम मासका फल है यह देवताओंको भी दुष्प्राप्य है फिर मनुष्योंकी कौन कहै ॥ ५१ ॥ इस प्रकार कहकर वह बहुत समय (वर्षों) तक भ्रमण करते रहे उसके अन्तमें श्रीकृष्णके प्रसादसे उनको राज्यकी प्राप्ति हुई ॥५२॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये भाषाटीकायां पुरुषोत्तममहिमप्रशंसनो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ इस प्रकार यह महीना

विविधैर्नियमैर्येषां हरिपूजाविधानकैः ॥ साधनैर्विगतो मासः पुरुषोत्तम एव सः ॥ ५० ॥ अहो मासस्य माहात्म्यं यदुक्तं चक्रपाणिना ॥ देवानामपि दुष्प्रापं किं पुनर्मानुषे जने ॥ ५१ ॥ एवं वदन्भूमिपतिर्बभ्राम बहुलाः समाः ॥ तदंते राज्यमतुलमाप कृष्णप्रसादतः ॥ ५२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये पुरुषोत्तममहिमप्रशंसनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ एवंभूतोऽधिमासोऽयं महापापप्रणाशनः ॥ महिमानं यस्य वक्तुं नालं शक्तश्चतुर्मुखः ॥ १ ॥ मासस्यास्य प्रसादेन पुरा राजर्षिसत्तमः ॥ दृढधन्वा इति ख्यातो ह्यवाप महतीं श्रियम् ॥२॥ भोगांते जगतां नाथं प्राप्तः पारं भवांबुधेः ॥ पुरा पुत्रवियोगार्तव्याधी राजा धरातले ॥ ३ ॥ संप्राप्य सौख्यसीमानं महिम्नः पुरुषोत्तमात् ॥ एतन्मासस्य माहात्म्यमतुलं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥ नाहं वक्तुं समर्थोऽस्मि महिमानं भृगूद्वह ॥ अप्रमेयबलो मासो यथा नारायणो हरिः ॥ ५ ॥

महापापका नाश करनेवाला है जिसकी महिमा कहनेको ब्रह्माजी समर्थ नहीं हैं ॥ १ ॥ इस महीनेके प्रसादसे पहले राजर्षि श्रेष्ठ दृढधन्वाको बडी लक्ष्मी प्राप्त हुईथी ॥ २ ॥ भोगके अन्तमें जगत्पति नारायणको प्राप्त हुआ प्रथम राजाको पुत्रवियोगसे बडी व्याधि प्राप्त हुई थी ॥ ३ ॥ इसी मासकी महिमासे उसको सुखकी प्राप्ति हुई थी हे मुनिश्रेष्ठ ! इस महीनेका अतुल माहात्म्य है ॥ ४ ॥ हे भृगुकुलोद्भव ! इस मासकी महिमा

कहनेको मैं समर्थ नहीं हूं. इसका अप्रमेय बल जैसे नारायण हैं ॥ ५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! यह जानिये कि इसकी तुल्य और महीना नहीं है इस मासके गुणका विस्तार मैंने व्यासजीसे ॥ ६ ॥ सुना परन्तु सर्वथा वे भी कहनेको समर्थ नहीं हुए इन सब महीनोंके शिरोमणि नारायणप्रिय मासके अधिक कौन है ? ॥ ७ ॥ इसके सम्पूर्ण माहात्म्यको कौन जान सकता है ? जिसको स्वयं नारायणने वर दिया है जिसके जाननेसे करोडों यज्ञका फल होता है ॥ ८ ॥ शौनकजी बोले ॥ महाभुज सूतजी ! आप जगत्पतिकी यह कथा कहिये जिसमें पुरुषोत्तम मासके गुण वर्णन

जानीहि मुनिशार्दूल नैतत्तुल्योऽस्ति कश्चन ॥ पुरुषोत्तममासस्य कृष्णद्वैपायनादहम् ॥ ६ ॥ शृण्वन्गुणस्य विस्तारं वक्तुं नैव शशाक सः ॥ कोऽन्यो महिम्नो भुवने सर्वमासशिरोमणेः ॥ ७ ॥ माहात्म्यमखिलं वेत्ति यस्य नारायणः स्वयम् ॥ यस्मिञ्ज्ञाते भवेद्विद्वान्कोटियज्ञमिदं फलम् ॥ ८ ॥ शौनक उवाच ॥ कथयस्व कथामेतां सूत साक्षाज्जगत्पतेः ॥ पुरुषोत्तममासस्य गुणान्वद महाभुज ॥ ९ ॥ विस्तराच्छ्रोतुकामानां सुराज्ञो दृढधन्वनः ॥ पुरुषोत्तममाहात्म्यात्कथमाप सुखानि सः ॥ १० ॥ कथं वैकुंठनाथस्य पदं साक्षाज्जगत्पतेः ॥ अलंबुद्धिर्न मे तात कथापीयूषपानतः ॥ ११ ॥ ततो विस्तरतो ब्रूहि कथामेतां सुदुर्लभाम् ॥ कृतक्षणोऽस्म्यहं सूत तुष्यामि गदतस्तव ॥ १२ ॥ अस्मद्भाग्यप्रसंगेन ह्यद्य संदर्शितो भवान् ॥ चिरसंभृतपापस्य क्षयं नेतुं महाभुज ॥ १३ ॥

हों ॥ ९ ॥ मैं राजा दृढधन्वाके चरित्र विस्तारसे सुनना चाहताहूं. पुरुषोत्तममाहात्म्यसे कैसे उसे सुख प्राप्त हुआ ॥ १० ॥ किस प्रकार साक्षात् वैकुंठनाथ जगत्पतिके गुणोंसे सुख हुआ हे तात ! इस कथारूप अमृतके पानसे मेरा मन तृप्त नहीं होता ॥ ११ ॥ आप इस दुर्लभ कथाको विस्तारसे कहिये हे सूत ! आपसे कथा श्रवण कर मैं कैसे तृप्त हो सकताहूं ? ॥ १२ ॥ हमारे भाग्यसेही आपका दर्शन हुआ है. हे महाभुज ! आप हमारा

चिरकालके पाप नष्ट करनेकोही आये हैं ॥ १३ ॥ यह परम मनोहर भृगुवाक्य श्रवण कर मुनियोंको प्रसन्न करते हुए सूतजी बोले ॥ १४ ॥ हे द्विजेश्वर शौनकजी ! सुनो पवित्र कथा वर्णन करताहूं यह व्यासके मुखसे निकली गंगाकी समान पवित्र करनेवाली है ॥ १५ ॥ उन व्यासजीको नमस्कार कर उनके वाक्यरूपी जलमें मज्जन करनेसे ब्रह्महत्यारा और सुरापान करनेवालाभी पापसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ जो इसमें सन्देह करते हैं वे मृत्युको प्राप्त होते और सब जन्मोंमें भाग्यहीन प्रज्ञाहीन निर्बुद्धि होते हैं ॥ १७ ॥ वे पराधीन रोगग्रस्त अपुत्र होते

श्रुत्वा भार्गववाक्यानां सौकुमार्यमनुत्तमम् ॥ सूतः प्रोवाच संहृष्टो मुनीनां सुखयन्निव ॥ १४ ॥ शृणु शौनक वक्ष्यामि कथां पुण्यां द्विजेश्वर ॥ व्यासवक्त्रसमुत्पन्नां स्वर्धुनीमिव पावनीम् ॥ १५ ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये यद्वाक्यजलमज्जनात् ॥ ब्रह्महापि सुरापोऽपि मुच्यते नात्रः संशयः ॥ १६ ॥ अत्र संशयिनः सर्वे चरंतोऽपि मृतायते ॥ सर्वजन्मसु दुर्भाग्या हीनप्रज्ञा ह्यबुद्धयः ॥ १७ ॥ पराधीना गदग्रस्ता अपुत्राः स्युर्न संशयः ॥ मृताः प्रयांति विप्रेश कुंभीरौरवशूकरान् ॥ १८ ॥ युगकोटिसहस्रांते प्रेतयोनिमवाप्नुयुः ॥ निर्जलेऽरण्यदेशे ते वसंत्यत्यंतदुःखिनः ॥ १९ ॥ ये व्यासवाक्यविमुखा नास्तिकाः कपटावृताः ॥ पुराणे दृढविश्वासाः कृष्णसायुज्यभागिनः ॥२०॥ शृणु दिव्यां कथां विप्र तद्राज्ञो दृढधन्वनः ॥ आस्तिकस्य सुव्रतस्य कृष्णभक्तस्य भूपतेः ॥ २१ ॥

हैं इसमें सन्देह नहीं । हे विप्रेश ! वे कुम्भीपाक और रौरव नरकको जाते हैं ॥ १८ ॥ और कोटि सहस्र युगके अन्तमें प्रेतयोनिको प्राप्त होते हैं और निर्जल देशमें उत्पन्न होनेके कारण अत्यन्त दुःखभागी होते हैं ॥ १९ ॥ जो व्यासके वाक्यसे विमुख नास्तिक और कपटी हैं वे दुःख पाते हैं पुराणमें दृढविश्वास करनेवाले कृष्णकी सायुज्य मुक्ति पाते हैं ॥ २० ॥ हे विप्र ! उस दृढधन्वाराजाकी कथा सुनो जो बडा

आस्तिक सुव्रत कृष्णभक्त था ॥ २१ ॥ यह श्रीमान् राजा हैहयदेशका रक्षक था, यह चित्रवर्मानामसे विख्यात और सत्यपराक्रमी था ॥ २२ ॥ इसका तेजस्वी पुत्र दृढधन्वा था वह भी सर्वगुणसम्पन्न सत्यवान् धर्मात्मा शुचि था ॥ २३ ॥ वह महातेजस्वी गुणोंके साथही बढने लगा जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढता है इस प्रकार वह शत्रुनाशी बढने लगा ॥ २४ ॥ अंगोंसहित वेदोंको पढ वह संपूर्ण शास्त्रका जाननेवाला एकवारही कही वातको ग्रहण कर लेताथा ॥ २५ ॥ उसने गुरुजनोंको बडी दक्षिणा दी थी, वह धीर उनकी आज्ञासे बडा प्रसन्न

आसीद्धैहयदेशस्य गोप्ता श्रीमान्महीपतिः ॥ चित्रवर्मेति विख्यातो धीमान्सत्यपराक्रमः ॥ २२ ॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी दृढधन्वेति विश्रुतः ॥ स सर्वगुणसंपन्नः सत्यवाग्धार्मिकः शुचिः ॥ २३ ॥ अवर्धत महातेजाः सार्द्धं गुणगणेन सः ॥ शुक्लपक्षे मृगांको वा सर्वशत्रुनिबर्हणः ॥ २४ ॥ अधीत्य सांगान्निगमान्सर्वशास्त्रविशारदः ॥ सकृन्निगदमात्रेण प्रागधीतमिव स्फुटम् ॥ २५ ॥ ददौ बहुतरास्तेभ्यो दक्षिणाः सुमनोहराः ॥ तेषामनुज्ञया धीरो मुमुदेऽसौ महाबलः ॥ २६ ॥ मंत्रिणां ब्राह्मणानां च प्रकृतीनां तथैव च ॥ सर्वेषां च मतं ज्ञात्वा पित्रा राज्येऽभिषेचितः ॥ २७ ॥ गुरुं संपूजयामास सततं राज्यभुक्पुनः ॥ चित्रवर्मापि तं पुत्रं दृष्ट्वा लेभे परां मुदम् ॥ २८ ॥ अभिषिक्तं महाबाहुमरातिगणशोषणम् ॥ निवृत्य विषयेभ्योऽक्षांश्चिंतयामास निःस्पृहः ॥ २९ ॥ इतः प्रभृति केनाहं हेतुना घोरसागरे ॥ संसारलक्षणे तीव्रविषयव्यालदुःखिते ॥ ३० ॥

होताथा ॥ २६ ॥ मंत्री ब्राह्मण और प्रजा इन सबके मतको जानकर पिताने उसका युवराज्यमें अभिषेक करदिया ॥ २७ ॥ वह निरन्तर राज्य भोगकर गुरुकी पूजा करता चित्रवर्माभी उस राजाको देख परम आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ २८ ॥ उसे इस प्रकार शत्रुगणोंके नाशमें अभिषेक किया सम्पूर्ण विषयोंसे निवृत्त हो स्पृहाहीन हो विचार करनेलगा ॥ २९ ॥ कि अब मैं किस प्रकार इस महासंसारसागरसे पार हूंगा

जिसमें तीव्र विषयरूपी व्याल दुःखित करते हैं ॥ ३० ॥ अनेकों दुराशाओं और क्रोधरूपी दंष्ट्रासे विदारण करनेवाले आधिव्याधिसे सब प्रकार परिवारित ॥ ३१ ॥ इस संसारमें अपनेको नष्ट न करके मैं विश्वनाथ जगन्नाथ सबके सुख देनेवाले नारायणकी शरण जाताहूं ॥ ३२ ॥ जिनके एक बार नामस्मरण करनेसे चाण्डालभी नारायणताको प्राप्त होता है उन सनातन वासुदेवकी मैं शरणमें जाता हूं ॥ ३३ ॥ यह संसारसागर अक्षोभ्य है मनुष्योंको दुस्तर है इसमें अनेक आशाकी तरंगें उठती हैं और अनेक आशाके आवर्त उठते हैं ॥ ३४ ॥ अनेक विहंगरूपी वितर्क और दारुण

दुराशाबहुलो क्रोधशितदंष्ट्राविदारणे ॥ आधिभिर्व्याधिभिश्चैव सर्वतः परिवारिते ॥ ३१ ॥ आत्मानं मज्जयामीह यामि
सन्मनसा हरिम् ॥ विश्वनाथं जगन्नाथं सर्वेषां सुखदायकम् ॥ ३२ ॥ सकृद्यन्नाममात्रेण श्वादोऽपि हरितां व्रजेत् ॥ तं
यामि शरणं विष्णुं वासुदेवं सनातनम् ॥ ३३ ॥ कृष्णसागरमक्षोभ्यं धिगिमं दुस्तरं नरैः ॥ आशातरंगबहुलं रागा-
वर्तविभीषणम् ॥ ३४ ॥ वितर्कानेकविहगं दारुणं जनभीकरम् ॥ शुभाशुभमनःसृष्टकल्पनाचारिसंभृतम् ॥ ३५ ॥
चिंतोगत्तुंगगिरिव्रातश्रोणीभिश्च विराजितम् ॥ कथं हरिपदं पोतविहीनस्तारितुं क्षमः ॥ ३६ ॥ पुत्रोऽयं मम धर्मात्मा
श्रीमान्विनयकोविदः ॥ प्रजाः पालयते नित्यं स्वीयान्पुत्रानिवौरसान् ॥३७॥ पितराविव जनः सर्वो विश्वस्तोऽस्मि-
न्सुते मम ॥ महाभागवतः श्रीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ॥ ३८ ॥

भयंकर शुभ अशुभ मनसे निर्मित कल्पनाओंसे युक्त ॥ ३५ ॥ चिंतारूपी ऊंचे पर्वतोंके समूह और श्रोणि (तट) भागसे विराजित इसको विना हरिनामस्मरण नौकाके प्राणी कैसे तर सकता है ॥ ३६ ॥ यह मेरा श्रीमान् पुत्र धर्मात्मा विनययुक्त है अपने पुत्रोंकी समान प्रजापालन करता है ॥ ३७ ॥ और प्रजा इसमें पिताके समान विश्वास करती है यह मेरा पुत्र महाभाग्यवान् विष्णुभक्तिपरायण है ॥ ३८ ॥

इससे अधिक और चित्तकी स्थिरताका क्या प्रयोजन होगा मैं विष्वक्सेन जनार्दनका आराधन करताहूं ॥ ३९ ॥ ध्रुव अम्बरीष शर्याति ययाति शिबि धुंधुमार प्रतर्दन वसुमना हरिश्चन्द्र नल मनु ॥ ४० ॥ क्षेमधन्वा रंतिदेव शशबिन्दु भगीरथ प्रियव्रत भूरिषेण यौवनाश्व बालि नृग ॥ ४१ ॥ भीष्म युधिष्ठिर कर्ण दुष्यन्त भरत विभु महाभाग पृथु मांधाता सगर अंशुमान् ॥ ४२ ॥ दिलीप पृषध्र पुण्डरीक क्रतुध्वज इत्यादिक औरभी धर्म कर्ममें उद्योग

अतः परं किमत्रास्ति स्थैर्यचित्तप्रयोजनम् ॥ आराधयामि देवेशं विष्वक्सेनं जनार्दनम् ॥ ३९ ॥ ध्रुवोऽम्बरीषः शर्यातिर्ययातिः शिबिधुंधुरुः ॥ प्रतर्दनो वसुमना हरिश्चंद्रो नलो मनुः ॥४०॥ क्षेमधन्वा रंतिदेवः शशबिंदुर्भगीरथः ॥ प्रियव्रतो भूरिषेणो यौवनाश्वो बलिर्नृगः ॥ ४१ ॥ भीष्मो युधिष्ठिरः कर्णो दुष्यन्तो भरतो विभुः ॥ पृथुश्चैव महाभागो मांधाता सगरोऽशुमान् ॥ ४२ ॥ दिलीपश्च पृषध्रश्च पुंडरीकः क्रतुध्वजः ॥ एते चान्येऽपि राजानो धर्मकर्मकृतोद्यमाः ॥ ४३ ॥ भुक्तभोगामिमां त्यक्त्वा राज्यलक्ष्मीमतंद्रितः ॥ नागास्त्वचं यथा जीर्णां निर्विशंका वनं गताः ॥ ४४ ॥ तत्रोपास्ये हरिं भक्त्या हृषीकेशं सनातनम् ॥ इति निश्चित्य मनसा जगाम पुलहाश्रमम् ॥ ४५ ॥ तत्रैव जानकीनाथं भक्त्यातिदृढया स्वया ॥ कंचित्कालं तपस्तप्त्वा चित्रवर्मा महीपतिः ॥४६॥ प्राप नारायणं देवं गण्डक्युपवने शुभे ॥ कालोत्तमांगमाक्रम्य पदा सव्येन भूमिपः ॥ ४७ ॥

करनेवाले राजा ॥ ४३ ॥ आलस्यरहित हो इस भुक्तभोगवाली राजलक्ष्मीका त्यागकर वनको चले गये वैसा मैंभी जिस प्रकार नाग पुरानी कैंचली त्याग गमन करते हैं ॥ ४४ ॥ वहां भक्तिसे सनातन हृषीकेशकी उपासना करूं यह विचार राजा पुलहऋषिके आश्रमको गया ॥ ४५ ॥ वहां जानकी-नाथकी परम दृढभक्तिसे आराधना कर राजा चित्रवर्मा तप करतारहा ॥ ४६ ॥ गण्डकीके सुन्दर उपवनमें नारायण देवको प्राप्त हो कालके ऊपर

अपना वाम चरण रखकर ॥ ४७ ॥ स्तुति करते हुए उनकी मनोहर वाणी श्रवण करता चला और उस नारायणके स्थान वैकुंठको प्राप्त हुआ जहांसे जाकर फिर कोई नहीं लौटता ॥ ४८ ॥ और कृतकृत्य होनेके कारण उसने पुत्रादिकी अपेक्षा न की जब दृढधन्वा राजाने इस प्रकार अपने पिताकी वैष्णवी गति श्रवण की ॥ ४९ ॥ तब शोक और हर्षयुक्त हो पिताका और्ध्वदैहिक कर्म किया ब्राह्मणोंकी आज्ञासे पिताकी भक्तिसे राजाने श्रेष्ठ कर्म किये ॥ ५० ॥ उस महाशोभायमान पुष्करावर्त नगरमें अनेक गुणगणोंसे युक्त प्रजाको पालनेलगा ॥ ५१ ॥ उसकी गुणसुन्दरी नाम

जगाम स्तुवतां तेषां शृण्वन्वाचः सुपेशलाः ॥ वैकुंठाख्यं हरिपदं यतो नावर्त्तते गतः ॥ ४८ ॥ सुतादिकृतकृत्यानां नापेक्षां कुरुते यतः ॥ दृढधन्वापि शुश्राव स्वपितुर्वैष्णवीं गतिम् ॥ ४९ ॥ शोकहर्षपरीतात्मा ह्यकरोदौर्ध्वदैहिकीम् ॥ पितृभक्त्या महीपालः सम्यग्द्विजवराज्ञया ॥ ५० ॥ पुष्करावर्त्तके पुण्ये नगरेऽतीव शोभिते ॥ पुपोष च प्रजाः सर्वा नानागुणगणैर्युतः ॥ ५१ ॥ तस्य शीलवती भार्या नाम्ना वै गुणसुंदरी ॥ पुत्री विदर्भराजस्य रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ५२ ॥ पुत्रांस्तु सुषुवे दिव्यांश्चतुरानतिशोभितान् ॥ पुत्रीं चारुमतीं नाम्ना सर्वलक्षणपूजिताम् ॥ ५३ ॥ चित्रवाक्चित्रबाहुश्च मणिमांश्चित्रकुंडलः ॥ सर्वे च मानिनः शूरा विख्याताः पृथिवीतले ॥ ५४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तमाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ दृढधन्वा गुणैर्युक्तः शांतो दांतो जितेंद्रियः ॥ पुष्करावर्तकं नाम नगरं तस्य धीमतः ॥ १ ॥

शीलवती भार्या थी वह विदर्भराजाकी पुत्री पृथ्वीमें महारूपवती थी ॥ ५२ ॥ उसके दिव्य अति सुन्दर पुत्र चार उत्पन्न हुए और चारुमती नाम पुत्री सर्व लक्षणोंसे लक्षित थी ॥ ५३ ॥ चित्रवाक् चित्रबाहु मणिमन् चित्रकुंडल यह सब मानी बडे शूर पृथ्वीमंडलमें विख्यात हुए ॥ ५४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूतजी बोले ॥ दृढधन्वा गुणोंसे युक्त शान्त दान्त

जितेन्द्रिय पुष्करावर्त नाम नगरमें निवास करता था ॥ १ ॥ रूपवान् गुणवान् धनुर्धारी श्रीमान् स्वभावसे सुन्दर धार्मिक सत्यवादी सत्यसंध पवित्र ॥ २ ॥ वेदवेदांगधर्मज्ञ धनुर्वेदपरायण कामक्रोधादि षड्वर्गके जीतनेवाला शत्रुसमूहके नाशक ॥ ३ ॥ जिसके मुखकी शोभासे राकेशमण्डल पराजित था जिसके धनुषकी टंकार सुनकर भयव्याकुल हो ॥ ४ ॥ उसके वैरी पातालमें प्रवेश करगये. जिसके भुंजदंडमें कराल तलवार सदा स्थित रहती थी ॥ ५ ॥ जिसको देखकर सम्पूर्ण वरी प्राण छोडते थे, जिसकी शत्रुभयदायी धनुषटंकार सुनकर ॥ ६ ॥

रूपवान् गुणवान्धन्वी श्रीमान् प्रकृतिसुंदरः ॥ धार्मिकः सत्यवादी च सत्यसंधः समः शुचिः ॥ २ ॥ वेदवेदांगधर्मज्ञो धनुर्वेदपरायणः ॥ सुनिर्जितारिषड्वर्गः शत्रुसंघविदारणः ॥ ३ ॥ वक्त्रलावण्यनिर्धूतस्फुरद्राकेशमंडलः ॥ यदीयकरकोदंडटंकारवभयार्दिताः ॥ ४ ॥ रसातलं प्रयांत्यद्धा त्रासान्निर्जरवैरिणः ॥ करालकरवालं यद्बाहुदंडोपलालितम् ॥ ५ ॥ य दृष्ट्वा वैरिणः सर्वे भ्रांता वै विरमंति च ॥ यस्य टंकारवं श्रुत्वा शत्रूणां भयदायकम् ॥ ६ ॥ दिग्गजाश्च दिशो यातास्त्रासादिव मदोद्धताः ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण विघ्ना यद्भवार्णवात् ॥ ७ ॥ पलायंते दिशः सर्वाः शत्रवो नात्र संशयः ॥ यद्यशःश्रवणं कृत्वा लीयंते शत्रवो पुरि ॥ ८ ॥ यन्नामश्रवणत्रासाद्वदंति हि रिपुस्त्रियः ॥ यद्यशः श्रवणं नास्ति दृढधन्वनि शास्तरि ॥ ९ ॥ यत्प्रयाणोत्सवे नागाः पातालतलवासिनः ॥ जायंते मारुताहाराश्चिताकुलितचेतसः ॥ १० ॥

दिशाओंके दिग्गज व्याकुल हो दिशाओंके अन्तको चले गये जिसके नाम श्रवणमात्रसे संसारसागरके विघ्नकी समान ॥ ७ ॥ सब शत्रु दिशाओंके अन्तको चले जाते थे इसमें संदेह नहीं. जिसका यश श्रवण कर शत्रु अपने नगरमें लीन हो जाते थे ॥ ८ ॥ जिसके नाम स्मरणमात्रसे शत्रुकी स्त्री कहने लगती थीं "इस दृढधन्वा राजाके भयसे त्रस्त हुई हम किसकी शरणमें जाय ?" ॥ ९ ॥ जिसके प्रयाणके समय

पातालतलवासी नाग चिन्तासे व्याकुल हो केवल पवनका आहार करते थे ॥ १० ॥ तुरंग स्यंदन गज पैदलके चरणोंसे चूर्ण हुए जाते थे जिसके सेनाके रजसे सूर्य आच्छादित हो जाता था ॥ ११ ॥ जिसकी यात्राके अवसरको सुनकर पर्वतभी शंकित होते थे कि, यह घोडोंके पदाघातसे हमको रेणुवत् कर डालेगा ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! इस प्रकार वह राजा श्रेष्ठ उस स्थानमें राज्य करता था. लोक उसके राज्यमें आनंदको प्राप्त हो पुत्रपौत्रवाले हुए ॥ १३ ॥ वह वाञ्छावितरणसे चिन्तामणिके समान शोभित हुआ जगत्के रंजन करनेसे पूर्ण चन्द्रमाके

तुरंगस्यंदनगजपदातिपदचूर्णितैः ॥ रजोत्करैर्दिशां रोधः सूर्यमाच्छादययन्निवः ॥ ११ ॥ यद्यात्रावसरं श्रुत्वा गिरयोऽपि शशंकिरे ॥ तुरंगाणां पदाघातैर्नः कर्त्ता त्रसरेणुताम् ॥ १२ ॥ इति राजन्यशार्दूले भूराज्यं शासति प्रभो ॥ लोका आनंदसंयुक्ता बभूवुः पुत्रपौत्रिणः ॥ १३ ॥ वांछावितरणाच्चासौ बभौ चिंतामणिर्यथा ॥ जगद्रंजनशीलेन शीतांशुरिव सा बभौ ॥ १४ ॥ कुबेर इव कोशाढ्यः क्षमया पृथिवीसमः ॥ हरिभक्तियुतो नित्यं गांभीर्ये जितसागरः ॥ १५ ॥ दंडधारणसामर्थ्ये क्रोधे चैव यमोपमः ॥ पितामहसमः साम्ये तेजस्वी हव्यवाडिव ॥ १६ ॥ अनुल्लंघ्यो गिरिरिव स्थैर्ये च हिमवानिव ॥ कौशिकेन समः शौर्ये दृढत्वे मेरुणा समः ॥ १७ ॥ ब्रह्मोपदेशे निपुणो साक्षाद्वाचस्पतिर्यथा ॥ स्वकीयरूपलावण्ये मूर्तिमानिव मन्मथः ॥ १८ ॥ स्वसौंदर्यातिबाहुल्यान्मानिनीमानहारकः ॥ एकपत्नीव्रतधरो नान्यनार्यवलोककः ॥ १९ ॥

समान शोभित हुआ ॥ १४ ॥ कुबेरकी समान धनी, क्षमामें पृथ्वीकी समान, हरिभक्तिमें तत्पर, गंभीरतामें सागर ॥ १५ ॥ दण्ड धारणकी सामर्थ्यसंयुक्त, क्रोधमें यमराजकी समान, समतामें पितामहकी समान, तेजमें अग्निके समान ॥ १६ ॥ स्थिरतामें पर्वतकी समान, धैर्यमें हिमालय, शूरतामें कौशिक, दृढतामें मेरु ॥ १७ ॥ ब्रह्मके उपदेशमें साक्षात् बृहस्पतिके समान, अपने रूपमें साक्षात् कामदेव ॥ १८ ॥ अपनी सुन्दरताकी

अधिकतासे मानिनीके मानका हरण करनेवाला वह राजाभी एकपत्नीव्रतधारी दूसरी स्त्रीको स्वप्नमेंभी नहीं देखता था ॥ १९ ॥ अपने बलसे वह रामचन्द्रकी समान त्रिलोकीके अभय देनेमें समर्थ था सत्यमें तत्पर मानो दूसरा हरिश्चन्द्रही था ॥ २० ॥ अपने धर्ममें शिबि और उशीनरकी समान सदा तत्पर था जिस राजाने त्रेताको सतयुगका समय बना दिया ॥ २१ ॥ उसके रूपकी समान किसीका रूप नहीं था प्राकृत और विकृत यज्ञोंसे उसने गरुडध्वज नारायणको प्रसन्न किया ॥ २२ ॥ दूसरे कार्तिकेयकी समान महाकीर्तिको प्राप्त हुआ जिसके राज्य करनेपर लोकोंमें भ्रम कुओंपर घटोंमें

त्रैलोक्याभयदः श्रीमान्कौसल्यानंदनो यथा ॥ सत्यपाशविनीतात्मा हरिश्चंद्र इवापरः ॥ २० ॥ सदा स्वधर्मनिरतः शिबिरौशीनरो यथा ॥ त्रेतायां येन भूपेन कालः कृतसमः कृतः ॥ २१ ॥ कस्तेन समतामेति प्रतिरूपो न कश्चन ॥ प्राकृतैर्विकृतैर्यज्ञैस्तर्पितो गरुडध्वजः ॥ २२ ॥ अत्युग्रकीर्तिमान्धन्वी कार्तवीर्य इवापरः ॥ यस्मिन्नाजनि लोकेषु भ्रमः कूपवटेष्वभूत् ॥ २३ ॥ बंधनं केशपाशानां प्रजासु न कथंचन ॥ कामिनीसुरतेष्वेव वस्त्राक्षेपो न चेतरः ॥ २४ ॥ हारः सुललनोत्तुंगकुचकुण्डलभूषणः ॥ रोषः कामिषु कामिन्याः प्रेमजो न तु वैरजः ॥ २५ ॥ वंचनं पुस्तकेष्वेव ह्यक्षेषु मरणं तथा ॥ संभ्रमः क्रूरता दैन्यं मिथ्यालापस्तु कंचन ॥ २६ ॥ काठिन्यं नास्तिकत्वं च स्वल्पभाग्यं दरिद्रता ॥ भूतहिंसा परद्रोहः परदाररतिः क्रुधिः ॥ २७ ॥

होताहुआ ॥ २३ ॥ केशपाशोंका बंधन होताथा प्रजामें कभी बंधन नहीं होताथा सुरतमें कामिनीका वस्त्र उघड जाताथा और किसी प्रकार नहीं ॥ २४ ॥ हरण करना ललनाओंके ऊंचे कुचोंका और कुंडल भूषण तथा कामकलामें कामिनियोंमें क्रोध होताथा किन्तु वैरसे नहीं होताथा ॥ २५ ॥ वंचन पुस्तकोंमें और मरण अक्ष (पाशों) में गुट्टका होताथा संभ्रम क्रूरता दैन्यता मिथ्याप्रलाप ॥ २६ ॥ काठिनता नास्तिकता स्वल्प भाग्य

दरिद्रता भूतहिंसा परद्रोह परदाराओंमें रति क्रोध ॥ २७ ॥ मलिनता मत्सर चोरी दस्युता जडता चुगली क्लेश क्रोध पराये धनका लेलेना ॥ २८ ॥ अनार्यत्व निर्गुणत्व लालच शत्रुता तृष्णा दंभ कपट कृपणता हरिका न सेवन ॥ २९ ॥ माता पिताका असन्मान वृत्तिके वास्ते धर्मसेवन दृढधन्वाके राज्यमें इनमेंसे कोई वार्ता नहीं थी ॥ ३० ॥ जैसे खरगोशके सींग मृगतृष्णाका जल गगनके फूल वंध्याके पुत्र नहीं होता इसी प्रकार इन वस्तुओंका अभाव था ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण अपने २ धर्ममें निरत श्रुति स्मृतिमें परायण थे इस प्रकार उस दृढधन्वा राजाके राज्य शासन करने-

मालिन्यं मत्सरोऽत्यर्थं चौर्यं दस्युत्वजाड्यता ॥ पैशुन्यं कलहः क्रोधोऽनपत्यत्वं परार्थना ॥ २८ ॥ अनार्यत्वं निर्गुणत्वं लोलुपत्वमरातिता ॥ तृष्णा दंभश्च कापट्यं कार्पण्यं हरिसेवनम् ॥ २९ ॥ मातापित्रोरसन्मानं वृत्त्यर्थं धर्मसेवनम् ॥ एतान्यविद्यमानानि दृढधन्वनि शासति ॥ ३० ॥ यथा शशविषाणानि मृगतृष्णाजलानि च ॥ यथा गगनपुष्पाणि यथा वंध्यासुतोद्भवः ॥ ३१ ॥ स्वधर्मनिरता विप्राः श्रुतिस्मृतिपरायणाः ॥ दृढधन्वनि राजेंद्रे तास्मिन्राज्यं प्रशासति ॥ ३२ ॥ बुद्धींद्रियमनःप्राणतेजांसि यस्य भूपतेः ॥ अव्याहतान्यसौ यावच्छशास क्षितिमेकराट् ॥ ३३ ॥ गदजं न भयं नृणामस्य राज्ये श्रुतं न च ॥ न स्यात्तस्करपैशुन्यं शत्रुभ्यश्च पराभवः ॥ ३४ ॥ राज्ञो राजीवनेत्रस्य शूरस्य दृढधन्वनः ॥ गुणा न वर्णितुं शक्या गुणिनः सर्वचेतसः ॥ ३५ ॥ महत्सुखं तस्य राष्ट्रे हरिभक्तियुते शुभे ॥ हरिभक्तियुतान्येव दिनान्यायांति यांति च ॥ ३६ ॥

॥ ३२ ॥ जिस राजाके बुद्धि इन्द्रिय प्राण तेज अव्याहत थे इस कारण वह एक राजाकी समान पृथ्वी पालन करता था ॥ ३३ ॥ राज्यमें किसीके रोगभय श्रवण नहीं कियाथा तस्करता पिशुनता शत्रुओंसे पराभव सुनाई नहीं आताथा ॥ ३४ ॥ उस ललोचन दृढधन्वा राजाके गुणोंको कोई गुणी वर्णन करनेको समर्थ नहीं है ॥ ३५ ॥ हरिभक्तियुक्त उसके राज्यमें बडा सुख था। उसके

दिन नित्य प्रति नारायणभक्तिमें बीततेथे ॥ ३६ ॥ उसका पुष्करावर्त नाम नगर सम्पूर्ण समृद्धिमान् था जिसमें धर्मात्मा बुद्धिमान् दृढधन्वा राजा निवास करताथा ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार स्वर्गमें देवताओंकी अमरावती शोभित होती है इसी प्रकार राजाने सुन्दरतासे सम्पूर्ण पुरी स्थापित करदी ॥ ३८ ॥ गली और चौराहोंसे शोभित चैत्य और गुल्मोंसे मनोहर चित्र ध्वजा पताकाओंसे जहांकी धूप निवारित होती थी ॥ ३९ ॥ जहांका चतुष्पथ मार्ग हाथियोंके मदसे सिक्त होता था चमेलीकी माला मार्गमें जहां तहां शोभित होती थीं ॥ ४० ॥ चन्दन मिले पानीसे जहां छिडकाव

पुष्करावर्त्तकं नाम पुरं सर्वसमृद्धिमत् ॥ यस्मिन्वसति मेधावी दृढधन्वा नराधिपः ॥ ३७ ॥ यथामरावती स्वर्गे भाति देवगणान्विता ॥ धरासंस्थापि सर्वांगशोभना नृप सा पुरी ॥ ३८ ॥ वीथिचत्वरशोभाढ्या चैत्यगुल्ममनोहरा ॥ चित्रध्वजपताकाभिर्वारितातापसत्पथा ॥ ३९ ॥ मातंगानां मदेनैव सिक्तमार्गचतुष्पथा ॥ मालतीनां च मालाभिर्वासितानां मनोरमा ॥ ४० ॥ श्रीखंडामोदपानीयसिक्तमार्गा च सर्वतः ॥ नित्योत्सवविनोदार्थं कृतकौतुकतोरणा ॥ ॥ ४१ ॥ ज्वलत्कृष्णागुरूद्दामधूपपूजाविराजिता ॥ विचित्रविकसत्पुष्पदामभिस्त्वतिमंडिता ॥ ४२ ॥ विकीर्णकुसुमामोदमाद्यद्भ्रमरयूथपा ॥ गलद्गजेंद्रदानौघसिक्तमार्गचतुष्पथा ॥ ४३ ॥ तस्याः पुर्याश्च शोभा वै न केनाप्युपमीयते ॥ वलभीसंश्रितानेकक्रीडाद्विजकृतारवा ॥ ४४ ॥ सप्तधातुदृढोत्तुंगप्राकारवरदुर्द्धरा ॥ सुरैरपि दुराराध्या किं पुनर्भूचरैर्नरैः ॥ ४५ ॥

होताथा जहां नित्य उत्सवके विनोदके निमित्त ध्वजा लगाई जाती थीं ॥ ४१ ॥ काला अगर जलाया जाता था सहस्रों पुष्पोंकी माला जहां लटकती रहती थीं ॥ ४२ ॥ बिखरे हुए फूलोंकी सुगन्धि उडनेसे भौंरे गुंजार रहे थे हाथियोंके मद चूनेसे राजमार्गमें छिडकावसा रहता था ॥ ४३ ॥ उसकी पुरीकी उपमा किसीसेभी नहीं दी जा सकती छज्जोंके ऊपर क्रीडापक्षी बनाये हुए शब्द करते थे ॥ ४४ ॥ उसका बडा दुर्धर प्रकार सात

धातुका बना हुआ था जिसको देवताभी प्राप्त होनेमें समर्थ नहीं थे पृथ्वीमें फिरनेवाले मनुष्योंकी तो कौन कहै ॥ ४५ ॥ मानो लक्ष्मी अपना स्थान छोडकर वहां स्वयं निवास करती है जहांके मनुष्योंके घर लक्ष्मीके रहनेके स्थान थे ॥ ४६ ॥ वे घर अत्यन्त मनोहर सहस्रोंही थे जिनके चारों ओर झरोंखोंके द्वारोंसे कान्ति निकलती शोभित होती थी ॥ ४७ ॥ अनेक किवाडोंमें सोनेकी कीलें लग रही थीं द्वार द्वारमें सजे हुए अनन्त योधा स्थित थे ॥ ४८ ॥ दिव्य घोडोंके शब्दोंसे दिग्गजोंका शब्द तिरस्कृत होता था सोने चांदीके मनोहर ऊंचे मन्दिर ॥ ४९ ॥ वैडूर्य मणिकी बनी

श्रिता या वै स्वयं त्यक्त्वा कमला कमलालयम् ॥ गृहाणि यत्र दृश्यंते नागराणां महात्मनाम् ॥ ४६ ॥ रम्याणि रम्यरामाभिरावृतानि सहस्रशः ॥ यस्यां भांति चतुर्दिक्षु गोपुरद्वाररोचिषः ॥ ४७ ॥ स्वर्णकीलैः कपाटैश्च खचितानेकशः शुभाः ॥ द्वारद्वारेषु सन्नद्धाः सुभटाः कोटिशः स्थिताः ॥४८॥ दिव्यवादित्रनिर्घोषबधिरीकृतदिग्गजाः ॥ सौवर्णै राजतैः शुभ्रैः सुधाबद्धबलैर्वरैः ॥ ४९ ॥ वैडूर्यकृतसोपानैर्नानामणिगणोचितैः ॥ वज्रनद्धकपाटाग्रैरिंद्रनीलशतव्रजैः ॥ ५० ॥ स्फाटिकाट्टालकूलैश्च नानाधातुविचित्रितैः ॥ हरिन्मणिकृताशेषवेदिकाशतराजितैः ॥ ५१ ॥ महामरकतव्रातरचितस्तंभपंक्तिभिः ॥ पद्मरागशताकीर्णैः सरोभिर्विमलर्द्धिभिः ॥ ५२ ॥ येषु कीरगणाः शश्वत्पतंति दाडिमभ्रमात् ॥ वीक्ष्यस्फटिककुंडेषु महामारकतान्मणीन् ॥ ५३ ॥

सीढी अनेक मणिगणोंसे खचित वज्रसे बंधे किवाड सैकडों इन्द्रनील मणियोंसे जटित ॥ ५० ॥ स्फटिकमणियोंके समूह और अनेक धातुओंसे चित्र विचित्र हरित मणियोंसे विराजित सैकडों वेदिका थीं ॥ ५१ ॥ जहांके स्तंभोंमें महामरकतमणि जटित हैं पद्मरागमणियोंसे आकीर्ण विमल ऋद्धिमान् सरोवर ॥ ५२ ॥ जिनमें दाडिमके भ्रमसे अनेक तोते वारंवार पडतेथे स्फटिकके आंगनमें महामरकत मणि जटित देखकर ॥ ५३ ॥

बिडालके नेत्रोंकी भ्रांतिसे तोते और चूहे नहीं स्थित होतेथे अनेक प्रकारके उज्ज्वल शृंगाटक और सुवर्णकलश ॥ ५४ ॥ महा उपवनसे संसिक्त द्विजराशिसे विराजित और बावडियोंकी सीढीसे पृथ्वी महाशोभित होतीथी ॥ ५५ ॥ कुमुद, शतपत्र, कह्लार, कमल, अम्बुज, कोमल उत्पन्न कह्लार, इन्दीवर ॥ ५६ ॥ चान्दीकी रेतीकी नदी तथा पक्षियोंके शब्द हंस सारस चकवा चकवी जलकुक्कुट ॥ ५७ ॥ जलमें मदोन्मत्त होकर

बिडालनयनभ्रांत्या न संत्याखुशुकादयः ॥ नैकशृंगाटकैः शुभ्रैः शिखरैर्हेमकुम्भकैः ॥ ५४ ॥ महोपवनसंसिक्तद्विजराजिविराजितैः ॥ वापीभिः कृतसोपानराजिराजितभूमिभूः ॥ ५५ ॥ कुमुदैः शतपत्रैश्च कह्लारकमलांबुजैः ॥ कोमलैरुत्पलश्चैव कह्लारेंदीवरैरपि ॥५६॥ राजताभिर्नदीभिश्च स्वनैः सत्तमपाक्षिणाम् ॥ हंससारसचक्राह्वक्रौंचैश्च जलकुक्कुटैः ॥ ५७ ॥ मदोन्मत्तैः सललनैर्मोदिताभिर्मनोरमैः ॥ नैकपुष्पभरानम्रशिखरैः शाखिभिर्वृतैः ॥ ५८ ॥ प्रमदाभिर्वृतैर्वीरकोटियूथपभूषितैः ॥ सुरनारीतिरस्कारविभ्रमाभिरहर्निशम् ॥ ५९ ॥ ईदृग्विधैः सौधवरैः शोभितैः शतकोटिभिः ॥ सरोजयना यत्र कुचभारावनामिताः ॥ ६० ॥ क्षाममध्याः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुंडलरोचिषः ॥ चलंत्यः शोभयंति स्म तां पुरीमलकामिव ॥ ६१ ॥ सुप्रोक्षिता विलासिन्यो मानिन्यो मदिरेक्षणाः ॥ सुरनारितिरस्कारलावण्या विलसंति याः ॥ ६२ ॥

शब्द करतेथे, अनेक पुष्पोंके भारसे जहांके पुष्प नम्र होरहेथे ॥ ५८ ॥ अनेकों वीरस्त्रियोंसे व्याप्त जिनके विलासोंसे देवस्त्री तिरस्कृत होतीथीं ॥ ५९ ॥ इस प्रकारके अनेक कोटि महल वहां शोभित होतेथे जहां कमलनेत्रवाली स्त्री कुचोंके भारसे नम्र थीं ॥ ६० ॥ जिनकी पतली कमर भारी नितम्ब श्रोणभाग पृथु चलायमान कुंडल थे वे विचरती हुई उस पुरीको शोभित करतीथीं ॥ ६१ ॥ वह अच्छी प्रकार स्नान किये

विलासिनी मानिनी मदिरेक्षणा अपने शृंगारसे देवताओंकी स्त्रियोंको तिरस्कार करतीथीं ॥ ६२ ॥ चन्द्रमाकी समान मुख, खंजनकी समान नेत्र, बिम्बोंकी तुल्य ओष्ठ, भुजगपतिकी तुल्य बाल, पीन (पुष्ट) कुच जो हाथीके बच्चेके कुंभस्थलकी समान कठिन थे न जाने यह स्त्री विधाताने कैसे बनाई हैं ॥ ६३ ॥ वह राजा इन्द्रकी समान लक्ष्मीको भोग करता हुआ महेन्द्रके भुवनकी समान ऋद्धिको भोगता प्रसन्न होताथा ॥ ६४ ॥ जिसके स्पृहणीय गुण थे वह बडा शूर देवताओंके निमित्त बडा दान करताथा

मुखं चंद्राकारं नयनयुगलं खंजननिभं स्फुरद्बिंबाभोष्ठ भुजगपतितुल्योऽलकचयः ॥ कुचौ पीनौ कान्तौ करिकलभ-कुम्भाभकठिनौ न जाने रामेयं कथमिह विधात्रा विरचिता ॥६३॥ सौनासीरामिव स्फीतां श्रियं भुंजन्महामनाः ॥ महेंद्रभवनस्पर्द्धिसद्मेहस्थो मुमोद ह ॥ ६४ ॥ स्पृहणीयगुणः शूरः सुराणामपि भूरिदः ॥ महाभक्तिगुणयुतः सदा विष्णुपदार्चकः ॥ ६५ ॥ शशास भूमंडलमुग्रतेजाः प्रपन्नरापन्नशरण्यमूर्तिः ॥ विराजयन्देशममानभावः स्वर्गे बिडौजा इव भूतलेऽस्मिन् ॥ ६६ ॥ यदीयपादद्वयमिंद्रसूनोस्तीर्थानि नान्यत्र चचाल विद्वन् ॥ जगाद जिह्वा जगदीशनामाकरोज्जगन्नाथपदाब्जपूजाम् ॥ ६७ ॥ ननाम नारायणदासवर्य्यमृते कदाचिन्न शिरस्तदीयम् ॥ शुश्राव सीतापतिचित्रगाथां व्यालोकितो नेत्रयुगेन विष्णुः ॥ ६८ ॥

महाभक्तिके गुणसे युक्त सदा विष्णुके चरणोंका पूजन करनेवाला ॥ ६५ ॥ महातेजस्वी भूमंडलकी रक्षा करताथा साक्षात् शरण देनेवालोंकी श्रेष्ठमूर्ति था इस देशको इस प्रकार शोभित करता हुआ मानो राजा इन्द्रही भूतलमें प्राप्त हुआ है ॥ ६६ ॥ जिस राजाके दोनों चरण तीर्थोंको चलते जिह्वा नारायणके गुण गाती और हाथ जगन्नाथकी पूजा करतेथे ॥ ६७ ॥ केवल हरिभक्त महात्माओंकेही

निमित्त उसका मस्तक झुकताथा कानोंसे सीतापतिकी कथा सुनता और दोनों नेत्रोंसे विष्णु भगवान्का दर्शन करता ॥ ६८ ॥ उस वीरवरका शील और नारायणका भजन किस प्रकार वर्णन हो सक्ता है जिसकी सुन्दरताके विचारकालमें इन्द्रादिक देवता चित्रकी समान हो गयेथे ॥ ६९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने राजधानीवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूतजी बोले ॥ वह चन्द्रकी समान कान्तिमान् राजाओंका राजा चन्द्रवत् मित्रमंडलको आनंद करता था और शत्रुओंके निमित्त सूर्यकी समान तपता था ॥ १ ॥ कमललोचनी

किं वर्ण्यते वीरवरस्य शीलं किं वर्ण्यते तद्भजनं मुरारेः ॥ यदीयसौंदर्यविचारकाले सेंद्राः सुराश्चित्रगता इवासन् ॥६९॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने राजधानीवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजराजः स राजा वै राजमंडलमंडनः ॥ रेजे सपत्नवर्गेषु सूर्यवत्कुलनंदनः ॥१॥ तं सिषेवेऽतिसुभगा राज्ञी राजीवलोचना ॥ सर्वसौंदर्यसंयुक्ता नाम्ना या गुणसुंदरी ॥ २ ॥ पतिव्रता महाभागा नित्य भर्तृहिते रता ॥ यस्या गुणसमानत्वे भुवि नास्त्यन्यसुन्दरी ॥ ३ ॥ नारीगुणगणः सर्वो यामाश्रित्य विराजते ॥ तरुणी रूपसंपन्ना मानिनी मदिरेक्षणा ॥ ४ ॥ महाभाग्यवती सा च दयायुक्ता तपस्विनी ॥ प्रणयावनता नित्यं सौंदर्यमदवर्जिता ॥ ५ ॥ सुधाधारप्रतिस्पर्द्धिलोललोचनराजिता ॥ विलोक्य यन्मुखं याति त्रपयेव शनैः शशी ॥ ६ ॥

सौभाग्यवती रानी उसकी सेवा करतीथी वह गुणसुन्दरी नामवाली सम्पूर्ण सुन्दरताके गुणोंसे युक्त थी ॥ २ ॥ पतिव्रता महाभागा नित्य स्वामीके हितमें तत्पर पृथ्वीमें जिसके गुणकी समान अन्य स्त्री नहीं थी ॥ ३ ॥ जिसके आश्रय सम्पूर्ण स्त्रियोंके गुण थे वह तरुणी रूपसम्पन्न मानिनी मंदिरेक्षणा थी ॥ ४ ॥ वह तपस्विनी महाभाग्यवती दयावती थी प्रायः वह सुन्दरताके मदसे वर्जित थी ॥ ५ ॥ अमृतकी समान वचन चलाय-

मान दृष्टिसे विराजित जिसके मुखको देखकर चन्द्रमा लज्जित होता था ॥ ६ ॥ खंजनके तिरस्कार करनेवाले उसके दोनों नेत्र थे जिनकी सुन्दरता देख मृग वनको चले गये ॥ ७ ॥ जिसके दोनों कपोल सुवर्णके संपुटकी समान थे बिम्बाफलकी समान अधर मधुव्रतवरूथिनी ॥ ८ ॥ कुछेक नील केशोंके सहित कानोंमें कर्णफूल पहरे हुए ऐसे शोभित होतीथी मानो दो चन्द्रमाओंको राहु ग्रास करनेको आगया है ॥ ९ ॥ जिसकी नासिकासे शुक लज्जित होताथा सुन्दर ठोडीवाली जिसके मुखकी समान किसीका मुख नहीं था जो उपमा दीजाय ॥ १० ॥ वैडूर्य मणिकी समान जनमनो-

लसत्खंजनसन्मानहारितं नयनद्वयम् ॥ तत्सौंदर्याशयेनैव कुरंगाः काननौकसः ॥ ७ ॥ सौवर्णसंपुटस्पर्द्धिकपोलयुगमोहिनी ॥ लसद्बिंबाधरभ्रांतमधुव्रतवरूथिनी ॥ ८ ॥ किंचिच्चिकुरसंवीतकर्णताटंकशालिनी ॥ बिभ्रतीव शशियुग्मं राहुग्रस्तार्द्धमंडलम् ॥ ९ ॥ नासिकालज्जितशुका लसच्चिबुकशोभिनी ॥ न तु तन्मुखसौंदर्योपमानं विद्यते क्वचित् ॥ १० ॥ लसद्ग्रैवेयसौंदर्यग्रीवा जनमनोहरा ॥ अत्यंतकर्कशोत्तुंगवृत्तपीनघनस्तनी ॥ ११ ॥ स्मराभिषेककलशौ सौवर्णाविव बिभ्रती ॥ शुद्धजांबूनदोद्भूतमालया परिवेष्टितौ ॥ १२ ॥ भारितोन्नयनयुग्ममध्यतो मध्यगश्चिकुरनीलकलापः ॥ किं सुधाघटारिरक्षया धृतो भोगिराज इव दुश्च्यवनेन ॥ १३ ॥ यद्राजते तुंगसरोजयुग्ममापीनमुद्यत्कलधौतकांति ॥ मन्ये धृतं तुंगयुतं मृगाक्ष्या लावण्यवारांनिधिलंघनाय ॥ १४ ॥

र ग्रीवा विदित होतीथी अत्यन्त कर्कश ऊंचे पीनपयोधरोंसे युक्त थी ॥ ११ ॥ मानो कामदेवके अभिषेक करनेको सुवर्णके कलश धारण है शुद्ध सुवर्णनिर्मित मालासे वेष्टित हो रहेथे ॥ १२ ॥ उसके केशपाशसे दोनों ओर नीले बिखरे हुए बाल शोभित हो रहेथे अमृतके घडे रक्षा करनेको दो सर्पराज आनकर स्थित हुए हैं ॥ १३ ॥ जो कि ऊंची कलीवाले कमलकी समान सुवर्णकी कांतिवाले

स्तन शोभित थे वे ऐसे विदित होतेथे मानो इस मृगनयनीने सुन्दरताका समुद्र इसमें रख छोडा है ॥ १४ ॥ अथवा उसके दोनों स्तन हाथीके कुम्भस्थलकी समान विदित होतेथे और उनपर मोतियोंका हार गंगाकी समान शोभित होताथा ॥ १५ ॥ उदरपर बडी सीधी कोमल रोमराजि विदित होतीथी उससे कुचरूपी कुम्भ बडे मनोहर लगतेथे और नाभिरूप कूपको देख कामी जन प्यासेकी समान विदित होतेथे ॥ १६ ॥ इस कृशोदरीका मध्यभाग नहीं दीखता था मानो वह स्तनरूपी पर्वतके त्राससे पलायन कर नाभिरूप ह्रदमें गिर पडा ॥ १७ ॥

करिकुंभलसद्युग्मकुचकुंभोपरि स्थिता ॥ मुक्तालता तथा भाति स्वर्णकुंभेऽमरापगा ॥१५॥ रोमराजिलसद्रज्जुः कुचकुंभौ मनोरमौ ॥ अभ्यर्णनाभिसत्कूपतृषिताः किमु कामिनः ॥ १६ ॥ वक्षोजभूधरत्रासान्नाभिह्रदगतं किमु ॥ मध्यं न लक्ष्यते तस्याः कृशोदर्याः पलायितम् ॥ १७ ॥ त्रिवलीदलसौवर्णसोपानानि मृगीदृशः ॥ लावण्योच्चयमारोढुमिव पंचेषुभूपतेः ॥ १८ ॥ गजराजलसच्छुण्डादंडशोभिविलोमशम् ॥ तदूरुयुगलं भाति शृंगाराधारभासुरम् ॥ १९॥ नितंबचक्रमेणाक्ष्याः प्रतिरूपविवर्जितम् ॥ लावण्याख्यकुलालेन रचितं चातिसुन्दरम् ॥ २० ॥ तस्याः सुजातचरणावुपमानविवर्जितौ ॥ मुष्णंतौ यावकरसमुद्गिरंताविव स्फुटम् ॥ २१ ॥

उसके उदरमें जो त्रिवली पडतीथी वही मानो उसकी लावण्यरूप पर्वतपर चढनेकी सीढी है ॥ १८ ॥ हाथीकी सूँडकी समान चढाव उतारकी उसकी परम मनोहर जंघा ऐसे शोभित होतीथी मानो शृंगारका भार संभारनेको खंभ हैं ॥ १९ ॥ उसके नितंबकी शोभा वर्णनसे बाहर है मानो लावण्यनामक कुलालने उनकी रचना की है ॥ २० ॥ उसके सुन्दर चरणोंकी उपमा किसीसे नहीं देसकते मानो लीलायुक्त होकर यावकका रस प्रत्यक्ष ग्रहण किये हुए हैं ॥ २१ ॥

ऐसी गुणसुंदरी महारूपवती उस राजाकी इस प्रकार उपासना करतीथी जैसे चन्द्रमासे रोहिणी प्रेम करतीहै ॥ २२ ॥ उसके सुन्दर शब्दसे अर्थात् स्वरसे पवन स्तंभित होजाती थी वह मेखला उसकी कमरमें महा शोभित होतीथी और उसके चलनेके समय बडा मनोहर नूपुरोंका शब्द होता था ॥ २३ ॥ उसके सब गात्र सुंदर थे और वह सम्पूर्ण आभरणोंसे भूषित थी पतिव्रत धारण करनेवाली साध्वी राजाके वशवर्ती थी ॥ २४ ॥ हे महाराज ! वह राजाकी विष्णुबुद्धिसे आराधना करतीथी राजा दृढधन्वाका भाग्य कौन

सेयं स्वरूपचारित्रशोभिनी गुणसुंदरी ॥ तमुपास्ते महाराजं रोहिणीव निशाकरम् ॥ २२ ॥ स्वरुचा रोचिता बाला स्तंभयंती मरुद्गणान् ॥ मेखलाकटिशोभाढ्या रणत्कंकणनूपुरा ॥ २३ ॥ सर्वसुन्दरसद्गात्रा सर्वाभरणभूपिता ॥ पतिव्रतधरा साध्वी राज्ञश्छंदानुवर्तिनी ॥ २४ ॥ विष्णुबुद्ध्या महाराजमाराधयति भामिनी ॥ किं वर्ण्यते महाभाग्यं भूपतेर्दृढधन्वनः ॥ २५ ॥ वामांगे यस्य संयुक्ता लसच्चामरधारिणी ॥ सेवते मेदिनीनाथं छायेव गुणसुंदरी ॥ २६ ॥ सुरासुरा यस्याः सौष्ठवालोककांक्षिणः ॥ शृणुष्वान्यद्द्विजेशान भाग्यं राज्ञः कलानिधेः ॥ २७ ॥ चत्वारस्तनय निदेशाकांक्षिणः सदा ॥ चातुर्यनिधयः शूरा वेदवेदांगपारगाः ॥ २८ ॥ धार्मिकाः सत्यसंधाश्च धनुर्विद्याश्रमाः ॥ पंचकर्मसु निर्विण्णा विक्रांताः सिंहयोधिनः ॥ २९ ॥

सकता है ॥ २५ ॥ जिसके वाम अंगमें वह चमरधारिणी लक्षित होतीथी छायाकी समान गुणसुंदरी राजाकी सेवा करती ॥ जिसके देखनेकी नित्य देवताभी इच्छा करते थे, हे महाराज ! आप उस राजाकी भाग्यकी महिमा सुनो ॥ २७ ॥ सदा उसकी आज्ञामें रहतेथे जो चतुरताके निधि शूर वेद और वेदांगके पारगामी थे ॥ २८ ॥ धर्मात्मा सत्यसंध धनुर्विद्यामें श्रम करनेवाले

पांचों कर्ममें तत्पर विक्रान्त सिंहकी समान युद्ध करनेवाले ॥ २९ ॥ समुद्रकी समान दुर्गम शत्रुओंको तापित करनेवाले ब्राह्मणोंके निमित्त विक्रम करनेवाले विष्णुभक्तिमें परायण ॥ ३० ॥ सम्पूर्ण सद्गुणके सागर सूर्यके समान अपने पिताकी उपासना करनेवाले ॥ ३१ ॥ सत्यरूप सब कार्यके अर्थत्यागी पिताकी भक्तिमें परायण सब दिशाओंके जीतनेवाले धीर अनेक राजाओंसे वंदित ॥ ३२ ॥ नित्य अपने आचारमें निरत साधुओंको प्रसन्न करनेवाले जिनके नाम श्रवणमात्रसे शत्रुकी स्त्री क्षणमात्रमें ॥ ३३ ॥ स्खलितगर्भा होजाती हैं और हत उत्साह हो जाती हैं कि

समुद्रा इव दुष्पाराः प्रतापतापितारयः ॥ ब्राह्मणार्थे पराक्रांताः पितृभक्तिपरायणाः ॥ ३० ॥ सर्वसद्गुणवार्योघसंपूर्णाः सागरा इव ॥ आदित्यमिव चोद्यंतमुपासंतः पितुर्मुखम् ॥३१॥ संत्यक्तसर्वकार्यार्थाः पितृभक्त्या महारथाः ॥ सर्वदिग्जयिनो धीरा नैकभूपतिवंदिताः ॥३२॥ स्वाचारनिरता नित्यं कृतरंजितसाधवः ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण रिपुनारीगणाः क्षणात् ॥ ३३ ॥ स्खलद्गर्भा हतोत्साहा लसत्काटितटाः पुनः ॥ कांदिशीकाः कुतो याम कुत्र यामेति जल्पकाः ॥३४॥ एवंविधा महात्मानः साधवः शंसितव्रताः ॥ चत्वारस्तनया राज्ञो राजानममितौजसम् ॥ ३५ ॥ उपाचरंति नियतं किंकरा इव भूपतिम् ॥ नृपाज्ञापरतंत्रास्ते सूत्रबद्धा शुका इव ॥ ३६ ॥ नित्यं बलिहरा राज्ञो नासि प्रोता वृषा इव ॥ न तथानेकभोगेन नंदिनो नृपनंदजाः ॥ ३७ ॥ जनिकर्तृनिदेशेन यथा सानंदविग्रहाः ॥ सत्पुत्रैरावृतः श्रीमान्व्रजे भूपाशिखामणिः ॥ ३८ ॥

किस दिशामें कहां जायँ इस प्रकार कहने लगती थीं ॥ ३४ ॥ इस प्रकारके महात्मा शंसितव्रत महापराक्रमी राजाके पुत्र विचरते थे ॥ ३५ ॥ राजाकी किंकरकी समान उपासना करते थे और राजाकी आज्ञाको सूत्रमें बँधे शुककी समान करते थे ॥ ३६ ॥ वे नथे बैलकी समान नित्य राजाकी आज्ञा करनेवाले थे और राजाकी आज्ञामें जैसे आनंद थे ऐसे भोगमें नहीं ॥ ३७ ॥ जैसे अपने पिताकी आज्ञामें आनंद मानतेथे वह राजा

सत्पुत्रोंसे युक्त हो ऐसा शोभायमान हुआ ॥ ३८॥ कि जैसा देवेन्द्रका हाथी एक साथ उत्पन्न हुए चार दांतोंसे शोभायमान होता है अथवा भगवान् महदादि विभूतियोंसे शोभायमान होते हैं ॥ ३९॥ सुन्दर गिरि वा चार वेदोंकी समान थे राजनीतिके आठों अंग पूर्ण थे कोष धनसे पूर्ण थे ॥ ४०॥ सेवक सब पवित्र और स्वामीकी सेवामें तत्पर थे वे साधुओंके अभिलाषकी पूर्ति प्राणोंसेभी करते थे ॥ ४१॥ दासोंको वे सदा गुणोंके उपकारसे रंजित करते थे उसकी दासी सोलह वर्षकी अवस्थावाली गुणोंके उपकारसे रंजित थीं कंठमें सोनेके कंठे पहरे थे ॥ ४२॥ श्यामा सोलह वर्षकी सुन्दर चलने-

सुरेंद्रवारणो दन्तैश्चतुर्भिः सोद्भवैरिव ॥ ईश्वरो भगवान्यद्वन्महदाद्यैर्विभूतिभिः ॥ ३९ ॥ शुभैः शुभैर्गिरिवरो विरिंचि-र्निगमैरपि ॥ अष्टौ वै द्रव्यकोशाश्च सदा भाग्यप्रपूरिताः ॥ ४० ॥ भृत्याः पवित्राः सुभृता भर्तृप्रियहिते रताः ॥ प्राणै-रप्युपकुर्वंति साधूनां वांछितानि च ॥४१॥ दासान्सुदानाः सततं गुणोपकृतिरंजिताः ॥ दास्यः षोडशवार्षिक्यो निष्क-कंठ्यो विभूषिताः ॥ ४२ ॥ श्यामा मंथरगामिन्यः पीनोन्नतपयोधराः ॥ हावभावकटाक्षैश्च मोहयंति जगत्रयम् ॥ ४३ ॥ नित्यमेवमुपासंते शतशोऽथ सहस्रशः ॥ विंशद्योजनपर्यंतं प्राकारः परितः सदा ॥४४॥ बद्धास्तिष्ठंति मातंगा नित्यमत्ताः प्रहारिणः ॥ सर्वे रिपुविभेत्तारो महाबलपराक्रमाः ॥ ४५ ॥ हयाः शुकनिभाश्चैव सिंधुदेशसमुद्भवाः ॥ चप-लाश्चपलानेकशिक्षागतिविशारदाः ॥ ४६ ॥ केचित्तित्तिरिवर्णाश्च शुकनासानिभाः परे ॥ हंसवर्णाः पवनभाः खेचरा इव पक्षिणः ॥ ४७ ॥

वाली पीनपयोधरवाली हाव भाव कटाक्षोंसे तीनों लोकोंको मोहित करनेवाली थीं ॥ ४३ ॥ ऐसी सैंकडों उसकी नित्य उपासना करती थीं उस नगरके परकोटाका विस्तार बीस योजनका था ॥ ४४ ॥ बंधे हुए मातंग नित्य प्रति स्थिर रहते थे यह सब महाबल पराक्रमी शत्रुओंके पुरके भेदन करने-वाले थे ॥ ४५ ॥ शुककी समास श्रेष्ठ सिंधुदेशके उत्पन्न हुए घोडे थे वे बडे चञ्चल अनेक शिक्षा गतिमें चतुर थे ॥ ४६ ॥ कोई तीतर वर्णवाले कोई

शुकनासाकी समान नाकवाले हंसवर्णवाले पवनकी समान गमन करनेवाले पक्षियोंकी समान गतिमान् ॥ ४७ ॥ पर्वतोंके उल्लंघन करनेवाले उच्चैःश्रवाके कुलमें उत्पन्न वे घोडे थे ऐसे अनेक घोडे और हाथी नित्य राजद्वारमें स्थित रहतेथे ॥ ४८ ॥ कांचनवर्णके चित्र अंगवाले सुन्दर घोडों-से जुते ध्वजा पताकाओंसे युक्त सुन्दर पहिये और कूबरवाले ॥ ४९ ॥ सुन्दर वरूथ सुंदर नीडवाले अच्छी प्रकार सजाये हुए विमानकी समान सब प्राणियोंको मनोहर ॥ ५० ॥ अनेक योधा और गुणी मनुष्योंसे आश्रित स्वर्ग पाताल और दैत्य दानवकी सभामें जानेवाले रथ थे ॥ ५१ ॥

पर्वतोल्लंघिनः सर्वे उच्चैःश्रवकुलोद्भवाः ॥ राजद्वारगता नित्यं राजंते वाजिराजयः ॥ ४८ ॥ रथाः कांचनचित्रांगाः सदश्वपरियोजिताः ॥ सुध्वजाः सुपताकाश्च सुचक्रवरकूबराः ॥४९॥ सुवरूथाः सुनीडाश्च स्वास्तीर्णाः साध्वलंकृताः ॥ विमानसदृशाः सर्वे सर्वे प्राणिमनोहराः ॥ ५० ॥ अनेकभटशौंडीरैः संश्रिता गुणिभिर्नरैः ॥ स्वर्गे लोके च पाताले दैत्यदानवसंसदि ॥ ५१ ॥ स नास्ति विभवो लोके यो नात्र विद्यते जने ॥ ५२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुधन्वोपाख्याने समृद्धिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषिरुवाच ॥ यस्मिन्संसक्तहृदयो दृढधन्वा महीपतिः ॥ न बुध्यते सुखासक्तः संवत्सरगणान्बहून् ॥ १ ॥ संवत्सराणां नियुतत्रयं राज्यमपालयत् ॥ कदाचिच्छयनारूढ अश्वानां ह्रेषितं श्रुतम् ॥२॥ बृंहितं गजवृंदस्य सुभटानामहंकृतिम् ॥स्नेहयुक्तानि रम्याणि वचांसि भृत्यवर्गतः ॥३॥

पृथ्वीमें ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो उसके मनुष्योंको प्राप्त न हो ॥५२॥ इति श्रीप० पुरु० सुधन्वोपाख्याने समृद्धिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ऋषि बोले ॥ इस प्रकार वह दृढधन्वा राजा उनमें मन लगाये सुखमें आसक्त होनेके कारण बीते हुए बहुत वर्षोंकोभी न जानता हुआ ॥ १ ॥ तीस सहस्र वर्षतक उसने राज्य किया एक समय लेटेहुए उसने घोडेका हींसना सुना ॥ २ ॥ जो हाथियोंके मध्यमें सुभटोंके अहंकारपूर्वक

सुनागया और भृत्योंके स्नेहयुक्त वचन सुने ॥ ३ ॥ दास और दासियोंके मनोहर वचन सुने जो अपनी भक्तिसे युक्त चन्द्रमाकी समान निर्मल थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार महाधनसे युक्त अपनी आज्ञा पालन करनेवाले तथा पुत्र पौत्रादिकोंकोभी अपनी आज्ञा पालन करनेवाले देखकर ॥ ५ ॥ निर्दोष लक्ष्मी और रोगरहित अपना कलेवर देख अपने नामकी विख्याति स्वर्गतक देखकर ॥ ६ ॥ अतुल और दिव्य समृद्धि मनोहर

दासदासीगणेशानां श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥ आत्मभक्तिगुणोदर्काः प्रियाश्चंद्रांशुशीतलाः ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य वसुपीठं स्वं स्वीयाज्ञापरिपालकम् ॥ पुत्राः पौत्राः पवित्राश्च भक्तियुक्ता मनोहराः ॥ ५ ॥ निर्दोषाश्च प्रभा लक्ष्मीर्नीरुजं स्वं कलेवरम् ॥ यन्नाम त्रिदिवं यातमालोकालोकविश्रुतम् ॥ ६ ॥ समृद्धिरतुला दिव्या कामिन्यश्च मनोहराः ॥ पृथिवी सर्वशोभाढ्या लोका धर्मपरायणाः ॥ ७ ॥ नगरी सुरभोग्येव जना निर्जरसुंदराः ॥ अनेकसौख्यसलिले पारिपूरितवारिधौ ॥ ८ ॥ न लेभे चिंतयन्वीरो दुःखपंकं मनागपि ॥ तदा संचिंतयामास केन पुण्येन लब्धवान् ॥ ९ ॥ अतुलं निर्मलं सौख्यं स्वर्गिणामपि दुर्लभम् ॥ न पश्यामि तपस्ततं न दत्तं न हुतं क्वचित् ॥ १० ॥ नाराधितोऽस्ति मे देवः केनाहं प्राप्तवानिदम् ॥ किमिदं परिपृच्छामि स्वीयमैश्वर्यकारणम् ॥ ११ ॥ अतः परंतु किं भावि घोरसंसारसागरे ॥ न तादृशं मुनिं पश्ये संदेहं यः पराणुदेत् ॥ १२ ॥

कामिनी, सब शोभायुक्त पृथ्वी धर्मपरायण लोक ॥ ७ ॥ देवताओंके भोगकी समान नगरी जरारहित सुन्दर जन आनंदके सागरको सुखरूपी जलसे पूर्ण देख ॥ ८ ॥ विचार कर उस वीरने कहीं दुःखका लेशभी न जाना तब विचारनेलगा किस पुण्यसे मुझको यह लब्धि हुईहै ॥ ९ ॥ यह निर्मल सुख स्वर्गवासियोंकोभी दुर्लभ है न कुछ तप मैंने किया है न हवन किया है ॥ १० ॥ न किसी देवताका आराधन किया यह किस देवताका फल है अपने ऐश्वर्यका कारण किससे पूछूं ॥ ११ ॥ इससे आगे घोर संसारसागरमें क्या होना है ऐसा संदेह दूर करनेवाला कोई मुनिभी

नहीं विदित होता ॥ १२ ॥ ऐसा विचार करके राजाको वह रात्रि बीत गई और उषःकाल होगया तब सहसा उठ बैठा ॥ १३ ॥ वैतालिकके मुखसे मनोहर स्तुतियोंके वाक्य श्रवण करते हुए उठकर राजाने आवश्यकीय कार्य कर गंगाजलसे स्नान कर ॥ १४ ॥ निकलते हुए सूर्यको अर्घ देकर देवताओंको पूजन कर फिर शृंगारके स्थानमें आया ॥ १५ ॥ और शृंगारके वस्त्रोंको पहर स्वस्तिवाचन कराय अपने पुरोहितको नमस्कार कर सिन्धुदेशमें उत्पन्न हुए घोडेपर स्थित हो ॥ १६ ॥ पर्वतोंके स्थानमें मृगया करनेको चलागया और साथमें मुख्य योधा और

एवं संचिंतयन्राजा यामिन्यंतमवाप्तवान् ॥ उषस्युत्थाय सहसा समं दुंदुभिनिःस्वनैः ॥ १३ ॥ वैतालिकमुखोद्गीतस्तुतिवाक्यैर्मनोरमैः ॥ आवश्यकं विधायाशु स्नात्वा गंगोदकेन तु ॥ १४ ॥ उपस्थायार्कमुद्यंतं सुरान्संपूज्य यत्नतः॥ ततः शृंगारभवनमागत्य परिधत्तवान् ॥ १५॥ शृंगारान्वसनं सर्वं स्वस्ति वाच्य द्विजातिभिः ॥ पुरोधसे नमस्कृत्य वाजिनं सिंधुजं शुभम् ॥१६॥ आरुह्य गिरिकूटेषु मृगयां गंतुमुद्यतः ॥ साकं सचिवमुख्यैश्च योधमुख्यैः पदातिभिः ॥१७॥ श्वजीविभिर्वागुरिकै रणग्राहभटैरपि ॥ बहुशूरावृतः श्रीमांश्चचार गहनं वनम् ॥ १८ ॥ नीलमेघसमं हृद्यं विचित्रद्विजराजितम् ॥ ईहामृगगणाकीर्णं बहुपादपशोभितम् ॥ १९ ॥ पक्षिभिः क्वचिदाकीर्णं क्वचिच्चैवातिसुंदरम् ॥ झिल्लिकोलूकशब्दैश्च क्वचिच्चातिभयानकम् ॥ २० ॥ फेरूणां चैव शब्देन द्वीपिशब्दैर्वृतं क्वचित् ॥ क्वचिन्मत्तमयूरोग्रशब्देनैव विराजितम् ॥ २१ ॥

मुख्य २ मंत्री थे ॥ १७ ॥ तथा श्वजीवी व्याधे और बडे बडे योधा थे इस प्रकार वह लक्ष्मीवान् अनेक शूर योधाओंसे युक्त उस गहन वनमें विचरने लगा ॥ १८ ॥ जो वन नीले मेघकी समान सघन विचित्र पक्षियोंसे युक्त ईहामृग तथा अनेक पक्षियोंसे शोभित था ॥ १९ ॥ कहीं पक्षियोंसे आकीर्ण कहीं ऊंचे शब्द बोलनेवालोंसे व्याप्त कहीं झिल्ली तथा उलूकोंके शब्दोंसे पूर्ण कहीं अतिभयानक ॥ २० ॥ कहीं गीदड और

कहीं गेंडोंके शब्दोंसे पूर्ण कभी मत्त मोरोंके शब्दोंसे पूर्ण ॥ २१ ॥ कबरे श्वेत कंठवाले कबूतरके बचोंसे व्याप्त सारिका कोकिला तथा भौंरोंके शब्दोंसे व्याप्त ॥ २२ ॥ हंस सारस चकवा चकवीके अनेक कुलोंसे सम्पूर्ण कहीं पारावत कबूतरके अनेक शब्दों तथा विहगोंके शब्दोंसे पूर्ण है ॥ २३ ॥ शाल ताल तमाल प्रियाल पनस अर्जुन हिन्ताल कोविदार आम महुआ कुटजादि वृक्षोंसे व्याप्त है ॥ २४ ॥ रसाल अशोक बदरीफल रंभा तिलक टेसू नागकेशर आम बहेडा पाटल लोध घोटक ॥ २५ ॥ सिंदूर एरण्ड बकुल पिलखन न्यग्रोध चंपा धव पीपल खैर बेल आमला

कर्बुरं शितिकंठैश्च आनीलं शुकपोतकैः ॥ श्यामितं षट्पदध्वांक्षभाससारिककोकिलैः ॥ २२ ॥ हंससारसचक्राह्वकोटकुलसूचितम् ॥ पारावतशकुंतौघैर्व्याप्तं नानाविहंगमैः ॥ २३ ॥ शालतालतमालैश्च प्रियालपनसार्जुनैः ॥ हिंतालकोविदाराम्रमधूककुटजासनैः ॥२४॥ रसालाशोकबदररंभातिलककिंशुकैः ॥ केसराम्रातभल्लातैः पाटलाक्रोडघोटकैः ॥ २५ ॥ सिंदूरैरंडबकुलप्लक्षन्यग्रोधचंपकैः ॥ धवाश्वत्थोग्रखदिरबिल्वामलकातिंदुलैः ॥ २६ ॥ कर्पूरागरुखर्जूरकेतकीदाडिमेंगुदैः ॥ सुरदारुकपित्थाक्षपत्रजीवकसेचकैः ॥ २७ ॥ जंबुजंबीरनारिंगशेलुश्रीपर्णचंदनैः ॥ एभिश्चान्यैर्द्रुमव्रातैर्वनं तत्सर्वतः शुभम् ॥ २८ ॥ विवेश मृगयाशीलः कामीव वनिताव्रजम् ॥ चचार मृगया शूरो निघ्नन्मृगगणान्बहून् ॥ २९ ॥

तिंदुल ॥ २६ ॥ कपूर अगर खजूर केतकी दाडिमी इंगुदी देवदारु कैथ अखरोट जीवक सेचक ॥ २७ ॥ जासुन जंभीरी नारिंग श्रीफल पर्पट चन्दन इनके सिवाय और भी अनेक प्रकारके वृक्षोंसे चारों ओर व्याप्त हो रहाथा ॥ २८ ॥ वह मृगयाशील राजा इस प्रकार वनमें प्रविष्ट हुआ जिस प्रकार कामी स्त्रियोंके समीप गमन करता है अनेक मृगसमूहोंको मारता वनमें विचरने लगा ॥ २९ ॥

मृग रीछ शूकर खड्ग शल्लक गैंडे हाथी चित्रमृग चमर सृमर बल ॥ ३० ॥ गवय सिंह गोपुच्छ शार्दूल भैंसे रुरु इस प्रकार अनेक मृगोंको मारता विचरने लगा ॥ ३१ ॥ वह महाबाहु वनमें अनेक प्रकारके मृगोंका वध करने लगा और अपने पासके मृगोंको एकही बाणसे नष्ट करने लगा ॥ ३२॥ भल्ल पट्टिश प्रास भिंदिपाल मुद्गर कुंड दंड शतघ्नी गदा मुशल लांगल ॥ ३३ ॥ तोमर सृणि पाश शूल चक्र

मृगानृक्षान्वराहांश्च खड्गांश्च शशशल्लकान् ॥ द्वीपिनो द्विरदांश्चित्रांश्चमरान्सृमरान्बलान् ॥३०॥ गवयान्सिंहगोपुच्छा-
न्छार्दूलान्महिषान्रुरून् ॥ एवंविधाननेकांश्च सर्वान्वनचरान् बहून् ॥ ३१ ॥ जघान स महाबाहुः शरैर्नानाविधैर्वने ॥
अभ्याशवर्तिनः खड्गैश्शरैश्च शरगोचरान् ॥ ३२ ॥ भल्लैश्च पट्टिशैः प्रासैर्भिंदिपालैश्च मुद्गरैः ॥ कुंडैर्दंडैः शतघ्नीभि-
र्गदामुसललांगलैः ॥ ३३ ॥ तोमरैः सृणिभिः पाशैः शूलचक्रपरश्वधैः ॥ भुशुण्डीभिर्गदाभिश्च निस्त्रिंशैः परिघैः
पलैः ॥ ३४ ॥ शूकराणां वधेनापि लोडयामास तद्वनम् ॥ रुद्राक्रीडसमं घोरं कृतं तेन महात्मना ॥ ३५ ॥ कदाचि-
त्तेन बाणेन महाबलयुतेन च ॥ कश्चिन्मृगो हतोऽरण्ये बाणेन दृढधन्वना ॥ ३६ ॥ स मृगोऽतर्हितो जातो बाणमादा-
य सत्वरम् ॥ तं जगाम तु राजेंद्रः शर्वः क्रतुमृगं यथा ॥ ३७ ॥ मृगः कुत्रापि संलीनो भ्रमन्नेवापतन्नृपः ॥ क्षुतृड्दुः-
खपरीतात्मा बभ्राम वनसंकटे॥ ३८ ॥

परशे भुशुण्डी गदा निस्त्रिंश परिघ पलसे ॥ ३४ ॥ शूकरोंको वध करता हुआ उस वनको विलोड़ित करने लगा । उस महात्माने उस वनको शिवके क्रीडा करनेकी समान महाघोर कर दिया ॥ ३५॥ एक समय उसने महाबलसंयुक्त बाण द्वारा दृढ धनुषसे घोर मृग वनमें मारा ॥ ३६॥ वह मृग उस बाणको लेकर अन्तर्धान होगया राजा उसके पीछे ऐसे चलने लगा जैसे शिव यज्ञमृगके पीछे गयेथे ॥ ३७ ॥ परन्तु राजाको वह मृग

वनमें कहीं न मिला और बराबर दुःखी चित्त हुआ राजा वनमें भ्रमण करने लगा ॥ ३८ ॥ जैसे विष्णु भगवान्से पराङ्मुख जीव कामिनीके वशीभूत हो विचरण करता है । फिर वह वीर बहुत शीघ्र महागहन सागरकी समान सरोवरमें प्रविष्ट हुआ ॥ ३९ ॥ जहां हंसोंका कुल शब्द करताथा तथा चकवा चकवी शब्द करतेथे ॥ ४० ॥ जलकुक्कुट दात्यूह पक्षियोंसे कुररीकी समान शब्दायमान था तथा मानस सरोवरकी समान स्वच्छ जलसे पूर्ण था ॥ ४१ ॥ जिसके अन्तरमें अनेक क्रूर ग्राहगण दुष्टोंके हृदयकी समान थे; जिसमें मत्स्य स्फुरायमान थे जिसका सुन्दर

कामिनीनयनाविद्धो यथा विष्णुपराङ्मुखः ॥ आससाद चिराद्वीरः कासारं सागरोपमम् ॥ ३९ ॥ कूजद्धंसकुलश्रेष्ठं चक्रवाकरवेण च ॥ सारसारावसरसं कारंडवनिषेवितम् ॥४०॥ जलकुक्कुटदात्यूहकुररीबककूजितम् ॥ स्वच्छपानीय-संपूर्णं यथा सज्जनमानसम् ॥ ४१ ॥ अंतर्ग्राहगणक्रूरं खलानां हृदयं यथा ॥ स्फुरन्मत्स्यचलत्पद्मरेणुरंजितस-त्पयः ॥ ४२ ॥ लसत्पंकजनिर्व्यूहैः परितः परिवेष्टितम् ॥ स्वच्छमत्स्यं यथा चंद्रमंडलं तारकावृतम् ॥ ४३ ॥ तत्सरःसलिलं पुण्यं सर्वाजीव्यं वगाहतः ॥ यथा प्रपंचसंतप्तो विष्णुभक्तिं विगाहते ॥ ४४ ॥ सर्वाजीव्यं वारि वीरो ययौ पातुं च भक्तितः ॥ नीरं पीत्वा ततस्तीर आगत्य मनुजाधिपः ॥ ४५ ॥ अपश्यच्च वटं वीरः केतुभूतं वनांतरे ॥ सर्वत्र संवृतं पत्रैर्घनच्छायं मनोहरम् ॥ ४६ ॥

कमलोंसे व्याप्त था ॥ ४२ ॥ चारों ओर कमलोंसे व्याप्त हो रहाथा जिस प्रकार स्वच्छ चन्द्रमण्डल तारकाओंसे आच्छादित होता है ४३॥ उस सरोवरके निर्मल जलमें अनेक जीव अवगाहन करते थे जिस प्रकार विष्णुभक्त प्रपंचसे संतप्त हो नारायणके नामका अवगाहन करते ॥ ४४ ॥ वह राजा यथायोग्य अश्वके ऊपर चढाहुआ उस सरोवरका जलपान करनेको उसके तटपर आया ॥ ४५ ॥ उसने उस वनमें

एक सबसे ऊंचा केतुभूत वटका वृक्ष देखा वह पत्ते और घनी छायासे संयुक्त था ॥ ४६ ॥ वीरने उस वृक्षको देखकर इस बातकी चिन्ता की कि, यह न्यग्रोधका वृक्ष अनेक घनी छायासे समन्वित है ॥ ४७ ॥ पत्र पुष्प फल जटा दारु निर्यास वल्कलसे युक्त है; क्षणमात्रमें इसके नीचे बैठकर मैं सुखी तो हो जाऊं ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार घोर संसारसे पीडित हो महात्मा नारायणके धर्मको प्राप्त होते हैं यह विचारकर राजा घोडेसे उतरा ॥ ४९ ॥ और वही घोडेकी काठीपैसे वस्त्र उतारकर बिछालिया और स्वयं राजा उसके ऊपर सोने लगा ॥ ५० ॥ घोडा वटके वृक्षकी

दृष्ट्वा व्यचिंतयद्वीरः क्षोणीमंडलमंडनः ॥ न्यग्रोधोऽयं बहुच्छायः सर्वसत्त्वसुखप्रदः ॥ ४७ ॥ पत्रैः फलैर्जटाभिश्च दारुनिर्यासवल्कलैः ॥ क्षणमेनमुपाश्रित्य भविष्यामि ह्यहं सुखी ॥ ४८ ॥ हरिधर्मो यथा साधुर्घोरसंसारपीडिनाम् ॥ इति निश्चित्य मनसा हयादुत्तीर्य भूमिपः ॥ ४९ ॥ निषसाद धरोपस्थे चैलास्तीर्णे सुशाद्वले ॥ चर्मोपधानमादाय सुष्वाप धरणीतले ॥ ५० ॥ जटासु वाजिनं बद्ध्वा सर्वतोऽलोकयद्वटम् ॥ निरीक्षमाणे नृपतौ वटशाखाः सहस्रशः ॥ ॥ ५१ ॥ पंचयोजनविस्तीर्णाः सप्तयोजनमुद्गताः ॥ तत्रागमत्खगः कश्चित्कीरः परमशोभनः ॥ ५२ ॥ सत्प्रवालल-सच्चंचुः कृष्णग्रीवो हरिच्छदी ॥ अत्यंतविलसन्नेत्रः सुपादः शोभनोदरः ॥ ५३ ॥ मानुषीमीरयन्वाणीमतुलां नृपमो-दिनीम् ॥ यदाकर्णनमात्रेण दुःखं सद्यः प्रशाम्यति ॥ ५४ ॥

जटामें बांध दिया और वटकी सहस्रों शाखाओंको देखने लगा ॥ ५१ ॥ जो पांच योजनके विस्तारमें और सात योजन ऊंची थीं वहां कोई परम सुन्दर कीर (तोता) आनकर प्राप्त हुआ ॥ ५२ ॥ जिसकी चोंचमें मूंगे जडेथे काली गर्दन हरित वर्ण अत्यन्त सुन्दर नेत्र सुन्दर चरण और उदर था ॥ ५३ ॥ वह राजाको प्रसन्न करनेवाली मानुषी वाणीसे बोला जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल दुःख शान्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

जिस अमृतको पान कर राजा प्रसन्नमुख हो गया और कलद्वारा प्रेरण कियेकी समान तत्काल शयनसे उठ बैठा ॥ ५५ ॥ राजाने आदरसे तोतेकी श्रेष्ठ वाणी सुनी तोतेके मुखसे बारंबार यह वाणी राजाको सुनाई दी ॥ ५६ ॥ वह अतीतात्मा राजा अतुल सुख विद्यमान होनेपर भी विचार नहीं करता फिर किस प्रकार संसारके पार होगा ॥ ५७ ॥ वारंवार यह श्लोक पढकर राजाके आगे पतित हुआ और अमृतभरी वाणीसे समझानेलगा ॥ ५८ ॥ यह वटशाखापरसे वाणी राजाको सुनाई इस प्रकार राजाको सुख देनेवाला तोता कहकर आकाशमें उडगया ॥ ५९ ॥ राजा

पीयूषक्षरणं पीत्वा हृष्टरोमा नृपोऽभवत् ॥ उत्थाय शयनात्तूर्णं यंत्रोत्क्षिप्त इव स्वयम् ॥ ५५ ॥ शुश्राव शुकसद्वक्त्राद्वाणीमादरतो नृपः ॥ शुकः स्ववक्त्रात्सुश्लोकं पपाठासौ पुनः पुनः ॥५६॥ विद्यमानातुलं सौख्यमालोक्यातीतमात्मनः ॥ न चिंतयति संमूढः स कथं पारमेष्यति ॥ ५७ ॥ वारंवारमिदं पद्यं पपाठ नृपतेः पुरः ॥ बोधयन्निव संमूढं वाचापीयूषकल्पया ॥ ५८ ॥ वटशाखामलंकृत्य मुहूर्तमीरयन्निदम् ॥ शुकः शुकसमो राज्ञोऽनिच्छतः खमुपारुहत् ॥ ५९ ॥ श्रुत्वा तस्य वचः श्रीमान्मुमुदे मुमुदेऽपि च ॥ किमेतदुक्तवान्धीरः शुकः पद्यं पुनःपुनः ॥६०॥ समुपालब्धवान्किंवा मद्भाग्यं सुमनोहरम् ॥ किंवा चायं भवेत्कृष्णद्वैपायनसुतोऽपरः ॥ ६१ ॥ अथवा देवकीपुत्रः किंवा कश्यपनन्दनः ॥ स्वमथानुचरं ज्ञात्वा मम दृष्टिपथं गतः ॥ ६२ ॥ ममानुग्रहकर्त्ता च वासुदेवो भविष्यति ॥ इति चिंतापरे राज्ञि सा सेना समुपागता ॥ ६३ ॥

सुखी होकर बहुत प्रसन्न हुआ और वारंवार कहनेलगा यह तोतेने क्या कहा है ॥ ६० ॥ यह इसने श्रेष्ठ वाणी क्या कही है क्या यह कृष्णद्वैपायनके पुत्र दूसरे शुकदेव हैं ॥ ६१ ॥ अथवा यह देवकीपुत्र यदुनन्दन हैं अपना दास जान मुझे दर्शन देनेको आये हैं ॥ ६२ ॥ यह हमारे ऊपर अनुग्रह करनेवाले वासुदेव होंगे राजा यह चिन्ताही करताथा कि, उस समय राजाकी सेना आनकर प्राप्त हुई ॥ ६३ ॥

विना जाने राजाको वह ढूँढती फिरती थी हाथी घोडे पैदल आदि चतुरंगसमूहसे युक्त थी ॥ ६४ ॥ उस सेनाके प्राप्त होनेसे यह राजा बहुत प्रसन्न न हुआ परन्तु कनखियोंसे मंत्रियोंकी ओरको देखने लगा ॥ ६५ ॥ उसने जाना कि, राजाको कोई चिन्ता है कौन उसे दूर करसकता है इस प्रकार राजा चिन्ता करके कहींभी सुख न पाता हुआ ॥ ६६ ॥ न खाता न पीता न क्रोध करता था आनंदसागरमें योगीकी समान ध्यानमें मग्न होगया ॥ ६७ ॥ कहनेपरभी कुछ नहीं बोलता हँसानेसे नहीं हँसता न पुत्रोंको आलिंगन करै न भार्यासे प्रसन्न होता ॥ ६८ ॥ न कोई राजाके मनकी चिंता जाननेको

आजानेयखुरक्षुण्णा मेदिनीलोकिनी चिरात् ॥ वाजिवारणपादातरथवृंदलसद्भटा ॥ ६४ ॥ तामाप्य दृढधन्वासौ नातिहृष्टमना ययौ ॥ परंतु सचिवैः साकं नयनापांगलक्षितः ॥ ६५ ॥ नृपोऽप्यचिंतयच्चित्ते को मे शोकं पराणुदेत् ॥ इति चिंतापरो राजा न लेभे शर्म कुत्रचित् ॥ ६६ ॥ न शासते न वै भुंक्ते न हृष्यति न कुप्यति ॥ ध्यानमेवाश्रितः श्रीमान्योगीवानंदसंप्लवे ॥ ६७ ॥ वाच्यमानो न च ब्रूते हास्यमानो न नंदति ॥ परिरंभत नो पुत्रान्न भार्यामभिनंदति ॥ ६८ ॥ न च तच्चित्तगां चिंतां कोऽपि वेद नृपेतरः ॥ कदाचिदासाद्य पतिं साध्वी सा गुणसुन्दरी ॥ ६९ ॥ रहः प्रोवाच राजानं पौलोम्येव मरुत्पतिम् ॥ गुणसुन्दर्युवाच ॥ भो भो नृपतिशार्दूल शत्रुसेनाभयावह ॥ ७० ॥ महाराज नरेशान सर्वसाधुजनप्रिय ॥ किमेनमाधिं दुर्धर्षां हृदि धारयसे विभो ॥ ७१ ॥ नाहं जानामि वीरेश सज्जनानंदवर्द्धन ॥ त्वदाधिमूलं भूपाल त्रैलोक्येऽपि कुतो यथा ॥ ७२ ॥

समर्थ होता था । एक समय वह गुणसुन्दरी अपने पतिके निकट आनकर प्राप्त हुई ॥ ६९ ॥ और एकान्तमें राजासे कहनेलगी जैसे पौलोमी इन्द्रसे बोलती है । हे नृपशार्दूल ! शत्रुओंके भय देनेवाले ॥ ७० ॥ हे महाराज ! नरेशोंके नरेश सम्पूर्ण साधुजनोंके प्यारे हृदयके बीचमें आप कैसी दुर्धर्ष अग्निको धारण किये हैं ॥ ७१ ॥ हे वीरेश ! मेरे हृदयके आनंद देनेवाले मैं इस वार्ताको नहीं जानती हे महिपाल ! आपके हृदयका शूल त्रिलो-

कीमें होना नहीं देखती हूं ॥७२॥ नाग यक्ष पिशाच सुपर्ण उरग चारण गन्धर्व नर राक्षस सुर असुर मृग खग ॥ ७३ ॥ सदा आपके गुणोंका गान करते रहते हैं आपके प्रसादरूप अमृतकी सब कोई कामना करते रहते हैं ॥७४॥ सो आप किस प्रकार दुःखाग्निमें पडे रहते हैं ? हे स्वामिन् ! ऐसी चिन्ताको मनमें रखना आपको शोभा नहीं देता है ॥ ७५ ॥ हे वीर ! जो कुछ आपके अन्तःकरणमें हो पुत्र मंत्री आदिका यदि कोई अपराध हो तो आप क्षमा कीजिये ॥ ७६ ॥ माताके गर्भसे उत्पन्न हुआ बालक दुर्धर पदाघातको करता है तो माता उसके ऊपर क्या विकार करती

नागा यक्षपिशाचाश्च सुपर्णोरगचारणाः ॥ गंधर्वा नररक्षांसि सुरासुरमृगाः खगाः ॥ ७३ ॥ सद्गुणग्रामपीयूषपयोधिप्लाविताः सदा ॥ त्वत्प्रसादसुधासिंधुमाकांक्षंति निरंतरम् ॥ ७४ ॥ स भवान्कथमत्युग्रं चिंताज्वलनमुद्धतम् ॥ हृदि धारयते साधो नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥ ७५ ॥ यदि किंचिन्मया वीर भवांतः प्रकृतं भवेत् ॥ तनूजैः सचिवैर्वापि क्षमस्व त्व महीपते ॥ ७६ ॥ मातुर्जठरजो बालः पदाघातं सुदुर्धरम् ॥ करोत्यपि ममाधार किमिति विक्रियां भजेत् ॥ ७७ ॥ ततः क्षमस्व भूपाल अपराधशतानि चेत् ॥ शरच्छीतांशुसंदोहशोभनं वदनं तव ॥ ७८ ॥ कथं न राजते भूप हेमंते कमलं यथा ॥ प्रसन्ननयनापांगालोकनानंदनिर्वृता ॥ ७९ ॥ साहं कथं निरानंदे त्वयि स्यां हृदयेश्वर ॥ आपीय कर्णरस्यानि महिलावचनान्यपि ॥ ८० ॥ तथैवास्ते स भूपालो न किंचिदभिजल्पते ॥ स्मरञ्छुकवचस्तथ्यं दुर्विज्ञेयं सुरासुरैः ॥ ८१ ॥

है ॥ ७७ ॥ हे राजन् ! इसी प्रकार आपको सौ अपराध क्षमा करने चाहिये आपके मुखकमल शरद्के चन्द्रमाकी समान मनोहर हैं ॥ ७८ ॥ हे महाराज ! हेमंतकालीन कमलकी समान वह शोभित नहीं होता है आपके नेत्रोंकी दृष्टिसे सब लोक प्रसन्न होजाते हैं ॥ ७९ ॥ हे जनेश्वर ! सो आपके होते मैं कैसे निरानंदताको प्राप्त होती हूं ? इस प्रकार अमृतकी समान अपनी भार्याके वचन श्रवण कर ॥ ८० ॥ वह राजा वैसेही

स्थित रहा और कुछभी न बोला और देवता असुरोंकोभी दुर्विज्ञेय शुकके वचन स्मरण करता रहा ॥ ८१ ॥ और पतिव्रतमें परायण अपनी भार्यासे कुछ न बोला वहभी भर्ताके दुःखसे दुःखी हो गरम श्वास ले ॥ ८२ ॥ राजाके चिन्ता करनेके कारणको न जानसकी, इस प्रकार राजाको कितना एक समय बीतगया ॥ ८३ ॥ और संसारसागरसे पार होनेको बहुत कालतक विचार करनेलगा ॥ ८४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने भाषाटीकायां शुकवाक्यं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ सूतजी बोले ॥ एक समय वह

न किंचनोवाच प्रियां पातिव्रत्यपरायणाम् ॥ वाग्मिनी सापि निःश्वस्य भर्तृदुःखातिपीडिता ॥ ८२ ॥ न बुबोध धरानाथचिंताकारणमद्भुतम् ॥ एवमेव प्रियान्कालः प्रवव्राज महीपतेः ॥ ८३ ॥ संदेहसागरोत्तारहेतुं चिंतयताश्चिरम् ॥ ८४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने शुकवाक्यं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥ सूत उवाच ॥ कदाचिच्चिन्तयानस्य राज्ञः शोकातुरस्य च ॥ आजगाम प्रसन्नात्मा वाल्मीकिर्भगवान्विभुः ॥ १ ॥ यो रामचरितं दिव्यं चकार परमाद्भुतम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महापि विमुच्यते ॥ २ ॥ नृपतिस्तमथालोक्य मित्रावरुणनंदनम् ॥ अतिसंहृष्टवदनः स्वात्मानं बह्वमन्यत ॥ ३ ॥ अभ्यर्णवर्त्तिनां नारीमुवाच गुणसुंदरीम् ॥ बाले ममाद्य दुःखानामन्तः प्राप्तो हरीच्छया ॥ ४ ॥

गुणोंसे श्रेष्ठ राजा विचार करतेथे इसी समय भगवान् प्रभु वाल्मीकिजी आये ॥ १ ॥ जिन्होंने परम श्रेष्ठ रामचरित वर्णन कियाहै जिसके श्रवणमात्रसे ब्रह्महत्या छूट जातीहै ॥ २ ॥ उन उदार मित्रावरुणको राजा देखकर बहुत प्रसन्न हो अपने आपको कृतार्थ मानता हुआ ॥ ३ ॥ और अपने निकट वर्तमान स्त्रीसे इस प्रकार कहने लगा; हे बाले ! आज मेरे दुःखोंका अन्त प्राप्त हुआहै ॥ ४ ॥

यह वाल्मीकिही नहीं साक्षात् स्वयं नारायणही है साधु सब प्राणियोंमें दयायुक्त दीनवत्सल होतेहैं ॥ ५ ॥ यह साक्षात् रामके परम प्रिय मुनि हैं. हे शुभे ! द्विजातियोंमें इनके समान कोई दूसरा नहीं है ॥ ६ ॥ जिसने रामायण बनाकर त्रिलोकीको पवित्र कियाहै. हे वामोरु ! वही यह चले आते हैं इससे अधिक और क्या मेरा भाग्य होगा ॥ ७ ॥ सूतजी बोले ॥ इस प्रकार कहता हुआ राजा मुनीश्वरके समीप गया और वहा पृथ्वीमंडलका ईश्वर उनके

नायं वाल्मीकिरायाति किंतु साक्षाद्धरिः स्वयम् ॥ सर्वभूतदयायुक्ताः साधवो दीनवत्सलाः ॥ ५ ॥ अयं साक्षान्महाभागः श्रीरामदयितो मुनिः ॥ नानेन सदृशो लोके द्विजातिर्विद्यते शुभे ॥६॥ कृत्वा रामायणं येन पावितं जगतां त्रयम् ॥ सोऽयमायाति वामोरु किं मे भाग्यमतः परम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं रटन्महीपालः प्रत्युद्गम्य मुनीश्वरम् ॥ पपात चरणोपांते क्षोणीमंडलनायकः ॥ ८ ॥ तमासाद्य मुनिं प्रेम्णा वाल्मीकिं जगतां गुरुम् ॥ आनंदेन युतो राजा ददौ वै परमासनम् ॥ ९ ॥ मधुपर्कविधानेन संपूज्य मुनिपुंगवम् ॥ धेनुं निवेद्यातिथये विश्राम्य मुनिभूषणम् ॥ १० ॥ पादावंकगतौ कृत्वा कराभ्यां प्रामृजन्नृपः ॥ पादावनेजनीरापः शिरसातिमुदा वहन् ॥ ११ ॥ उवाच स्निग्धया वाचा स्मरञ्छुकवचो हृदि ॥ हार्दचिंतः तमाकांक्षन्मानयन्मुनिपुंगवम् ॥ १२ ॥

चरणोंमें गिर गया ॥ ८ ॥ जगत्के गुरु वाल्मीकिजीको प्रेमसे मिलकर राजाने परमानन्दको प्राप्त हो उनके निमित्त आसन दिया ॥ ९ ॥ और मधुपर्कके विधानसे मुनिश्रेष्ठका पूजन किया अतिथिसत्कारके निमित्त धेनु निवेदन कर विश्राम करनेको कहा ॥ १० ॥ और राजा अपने हाथसे उनके चरण दाबने लगा और उनके चरणोंका जल अपने शिरपर धारण किया ॥ ११ ॥ और हृदयमें तोतेके वचन स्मरण कर

राजाने कहा और अपने हृदयकी चिन्ता इस प्रकार उन मुनिश्रेष्ठसे सुनाने लगा ॥ १२ ॥ राजा बोले ॥ हे मुनीश्वर ! मैं कृतकृत्य और भाग्यवान् हूं आज मेरी सब क्रिया और जन्म आपके दर्शनसे सफल हुआ है ॥ १३ ॥ हे विभो ! आज आपके चरणदर्शनसे मेरा ज्ञान सफल है ॥ १४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हूं जो आप मेरे दृष्टिगोचर हैं इससे मेरा श्रुत शास्त्र सफल हुआ है ॥ १५ ॥ यह विचार करकेभी मैं नहीं जान सकताहूं कि किस पुण्यसे आपका दर्शन हुआ है जो त्रिलोकीके ताप दूर करनेवाले आप हमारे नेत्रगोचर हुए हो ॥ १६ ॥ आज हमारे पितर

राजोवाच ॥ भगवन्कृतकृत्योऽहं सभाग्योऽस्मि द्विजेश्वर ॥ अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलाः क्रियाः ॥ १३ ॥ अद्य मे सफलं ज्ञानं विभो त्वत्पाददर्शनात् ॥१४॥ कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं द्विजेश्वर ॥ श्रुतं मे सफलं जातं यद्भवानक्षिगोचरः ॥१५॥ विमृशन्नानुपश्यामि केन पुण्येन नो भवान् ॥ त्रैलोक्यतापसंहार यन्नेत्रविषयीकृतः ॥१६॥ अद्य मे पितरस्तृप्ताः सेन्द्रा लोके प्रतिष्ठिताः ॥ स्थूलसूक्ष्मात्मको देवो विष्णुस्तुष्टो महेश्वरः ॥ १७ ॥ किमु वर्ण्यं मद्भाग्यं जगत्पावनपावन ॥ दृश्यते मत्सभासंस्थो वाल्मीकिः सुरदुर्लभः ॥ १८ ॥ अहो स्वप्नः किमथवा माया वा मनसो भ्रमः ॥ अलभ्यमपि लोकेशैः पश्याम्यद्य समक्षतः ॥१९॥ त्वत्समागमतो ब्रह्मन्किमलभ्यं ममाधुना ॥ यत्त्वया जगतां नाथस्त्रैलोक्यपावनो हरिः ॥ २० ॥

इन्द्रादि देवताओं सहित प्रतिष्ठित हुए, आज स्थूलसूक्ष्मात्मक विष्णु महेश्वर सन्तुष्ट हुए ॥ १७ ॥ मैं अपने जगत्के पवित्र करनेवाले भाग्यका क्या वर्णन करूं जो सभाके बीचमें सुरदुर्लभ वाल्मीकिजीका दर्शन करताहूं ॥ १८ ॥ क्या यह स्वप्न माया वा मनका भ्रम है जो इन्द्रादिको अलभ्य देव मेरे नेत्रगोचर हुए हैं ॥ १९ ॥ हे भगवन् ! आपके दर्शनसे मुझको क्या अलभ्य है जो कि आपने त्रिलोकीके पवित्र करने-

वाले नारायणका इस प्रकार निरूपण किया है ॥ २० ॥ कि ऐसा और कोई निरूपण नहीं कर सकता तुम्हारे मुखसे निकले हुए हरिकथारूपी अमृतके पान करनेसे ॥ २१ ॥ मनुष्य सुखसे संसारसागरके पार हो जाते हैं। सूतजी बोले ॥ इस प्रकार राजा मुनिसे कह नमस्कार कर मौन हुआ पुत्र मित्र मंत्रिजनभी इसी प्रकार मुदित हुए ॥ २२ ॥ इस प्रकार वाल्मीकि राजाको प्रसन्न और विस्मययुक्त देखकर उनके वचनामृतसे तृप्त होकर बोले ॥ २३ ॥ वाल्मीकिजी बोले ॥ हे राजन् ! तुम धन्य हो यह भक्ति तुममें ही हो सकती है, हे राजन् ! रामके भक्तजन सदा

तथा निरूपितो रामो यथा नान्येन केनाचित् ॥ पिबतस्त्वन्मुखांभोजाच्च्युतं हरिकथामृतम् ॥ २१ ॥ मुच्यंते भवपाशेभ्यः सुखेनैवाजिताः जनाः ॥ सूत उवाच ॥ विरराम मुनिं नत्वा स्तुत्वा नृपतिनंदनः ॥ सपुत्रः स्वजनामात्यः सपत्नीकः सबांधवः ॥ २२ ॥ वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा राजानं विस्मयान्वितम् ॥ उवाच परमप्रीतः पीत्वा तद्वचनामृतम् ॥२३॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ साधुसाधु नृपश्रेष्ठ त्वय्येव उपपद्यते ॥ रामभक्ताः सदा राजन्परोपकृतये नराः ॥२४॥ धन्योऽस्मि नृपशार्दूल वद यत्ते मनोगतम् ॥ अदेयमपि दास्यामि ना देयं विद्यते तव ॥ २५ ॥ त्वाद्विधा गुणिनो राजन्वरार्हा नेतरे नृप ॥ किंचिद्वक्तुं स्पृहा तेऽस्ति ज्ञातमद्यैंगितैस्तव ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ त्वत्प्रसादान्मुने किंचिन्न्यूनं नास्ति ममाधुना ॥ यदहं वसुधापीठे कामये सुखकारणम् ॥ २७ ॥

परोपकारके निमित्त होते हैं ॥ २४ ॥ हे राजन् ! तुम्हारी वार्तासे मैं धन्य हूं जो आपके मनोगत हो उसको कहिये जो अदेय वस्तु होगी उसेभी दे सकताहूं मुझे कोई वस्तु आपको अदेय नहीं है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! आपसरीखे राजा ही श्रेष्ठ हैं दूसरे नहीं जो कुछ तुम्हारे पूछनेकी इच्छा हो सो कहो मैं कहूंगा ॥ २६ ॥ राजाने कहा॥ हे ब्रह्मन् ! आपके प्रसादसे मुझे किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं है वसुधाके पीठपर अर्थात् सिंहासनपर

स्थित हो सुखके कारणकी कामना करतेही पूर्ण होता है ॥ २७ ॥ आपके चरणोंकी कृपा मेरे ऊपर पूर्ण है हे विद्वन् ! तथापि मेरे हृदयमें संदेह है ॥ २८ ॥ इसके दूर करनेको आपके सिवाय कोई दूसरा नहीं है हे ब्रह्मन् ! सो आप मेरे हृदयका संदेह दूर कीजिये जो चिरकालसे मेरे मनमें शल्यके समान स्थित होरहा है ॥ २९ ॥ हे राजेंद्र ! आप शीघ्र कहिये ऐसा कहनेपर राजाने कहा । राजा बोला ॥ हे ब्रह्मन् ! मैं राज्य करता हूं और कोई इस तरह न करसके ॥ ३० ॥ मैं जहांतक देखता हूं वहांतक सुखका पार नहीं देखता हूं पुत्र पत्नी प्रजा भृत्य बांधव स्वजन ॥ ३१ ॥ हाथी घोडे

तत्त्वदीयपदांभोजकृपया चास्ति मेऽखिलम् ॥ परंतु हृदये विद्वन्संदेहो विद्यते मम ॥ २८ ॥ तस्य पारप्रदस्त्वत्तो नान्यस्त्रिभुवनेष्वपि ॥ तत्पराणुद मे ब्रह्मन्मनःशल्यं चिरार्पितम् ॥ २९ ॥ सत्वरं वद राजेंद्रेत्युक्तो भूपोऽप्युवाच ह ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्राज्यं करोम्यद्य कथं नान्यः करिष्यति ॥ ३० ॥ सुखानामपि नो पारं पश्यामि प्रविलोकयन् ॥ पुत्राः पत्न्यः पजा भृत्या बांधवाः स्वजना मम ॥ ३१ ॥ हया नागा रथा धान्यं धनं कोशो बलं सुहृत् ॥ मित्राणि मेदिनी सर्वा शरीरं चासनानि च ॥ ३२ ॥ सर्वमेतच्छ्रुतं तेऽस्ति यथा नान्यत्र विद्यते ॥ नापेक्षा मानुषे लोके त्रिदिवेऽपि मुनीश्वर ॥ ३३ ॥ केन पुण्यप्रभावेण लब्धमैश्वर्यमद्भुतम् ॥ स्पृहणीयं सुरेशाद्यैरपि किं मानवैर्मुने ॥ ३४ ॥ काशी-कोशलकर्णाटकांबोजकुरुकैकयान् ॥ मत्स्यमागधगांधारगोडसैंद्रेन्द्रसैंधवान् ॥ ३५ ॥

रथ धान्य धन कोश बल अधिक मित्र मेदिनी शरीर आसन ॥ ३२ ॥ वह मैंने सब कुछ प्राप्त किया है जो और स्थानमें नहीं है हे मुनीश्वर ! मुझे त्रिलोकीमें किसी प्रकारकी अपेक्षा नहीं है ॥ ३३ ॥ केवल यही पूछता हूं कि मैं किस पुण्यके प्रतापसे इस अद्भुत ऐश्वर्यको प्राप्त हुआ हूं यह ऐश्वर्य इन्द्रादिकोंकोभी दुर्लभ है मनुष्योंकी कौन कहै ॥ ३४ ॥ काशी कोशल कर्णाटक काम्बोज कुरु केकय मत्स्य मगध गांधार गौड सैंद्र इन्द सैंधव ॥ ३५ ॥

कलिंग वंग पाण्ड्य अनंग कैकट केरल दशार्ण नीच चैलेय लाटक मरु धीवर ॥ ३६ ॥ काश्मीर मरु पांचाल मरुमालव कैकय सौराष्ट्र जांगल आनर्त हूण हैहय जनक ॥ ३७ ॥ त्रिगर्त हय पांचाल पाटच्चर कुटच्चर पण्यप श्रीक लम्बोष्ठ दरद आभीर भैरव ॥ ३८॥ हयवर्त करीनास कर्ण प्राव - रण,औरभी देश तथा चित्र योधा राजाभी महायुद्ध करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥ हे महामुने! वह सब लीलाहीसे मुझे भेंटे देते हैं और प्रतापसे अनेक प्रकारके धन धान्य भेंट करते हैं ॥ ४० ॥ हे राजन् ! हमारे पुत्रोंने इनको वेश्याकी समान करदाता बना दिया है हे ब्रह्मन् ! इसमें क्या कारण है

कलिंगवंगपांडयांश्चानंगकैकटकेरलान् ॥ दशार्णनीचचैलेयाँल्लाटकान्मरुधीवरान् ॥ ३६ ॥ काश्मीरमरुपांचालमरुमालवकैकयान् ॥ सौराष्ट्रजांगलानर्त्तहूणहैहयजानकान् ॥ ३७ ॥ त्रिगर्तहयपांचालपाटच्चरकुटच्चरान् ॥ पण्यपश्रीकलंबोष्ठदरदाभीरभैरवान् ॥ ३८ ॥ हयवर्तान्करीनासान्कर्णप्रावरणानापि ॥ अन्यानपि च देशान्मे तन्नृपाश्चातियोधिनः ॥३९॥ लीलया बलिमादाय नत्वा यांति महामुने ॥ प्रतापादेव राजन्या धान्यं यच्छंति सत्वराः ॥४०॥ कृता मे तनयैर्वीर वेश्या इव करप्रदाः ॥ किमत्र कारण ब्रह्मंस्तपो दुःखिदयाथवा ॥ ४१ ॥ अन्यश्च हृदयाद्यन्मे ह्यनिशं नापसर्प्पति ॥ शृणु तन्मे मुनिश्रेष्ठ संदेहं मे पराणुद ॥ ४२ ॥ कदाचिन्मृगयाकामो गतोऽहं गहनं वनम् ॥ चरित्वा सुचिरं प्राप्तो दुश्चरं गहन वनम् ॥ ४३ ॥ भ्रमन्नपश्यन्कासारं तत्र पीतं जलं मया ॥ श्रमापनोदमाकांक्षंस्तीरे न्यग्रोधमाश्रितः ॥ ४४ ॥

सो आप हमसे कहिये ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! इसी विचारमें मेरा मन रहता है दूसरे स्थानमें नहीं जाता हे मुनिराज ! इस मेरे चरित्रको श्रवण करें आप मेरा सन्देह दूर कीजिये ॥ ४२ ॥ मैं एक समय वनमें मृगयाको गयाथा वहां बहुत कालतक वनमें विचरता रहा ॥ ४३ ॥ वहां वनमें भ्रमण करते मुझको एक सरोवर मिला वहां जलपान कर उसके किनारे न्यग्रोधका वृक्ष था उसके नीचे श्रम दूर करनेको मैं बैठ गया ॥ ४४ ॥

जिसकी सुन्दर छाया नन्दनवनकी समान मनको आनन्द देनेवाली थी वहां मैंने परम मनोहर एक शुकको अवलोकन किया ॥ ४५ ॥ बडा मधुर भाषण करता था उसको देखकर मेरा मन बडा प्रसन्न हुआ जबतक मेरे चित्तकी वृत्ति उस पक्षीमें पडे तबतक वह शुक मधुर वाणीसे मुझसे बोला अर्थात् उसने एक श्लोक पढा ॥ ४६ ॥ बारंबार वह पक्षी उस श्लोकको पाठ करने लगा मेरे अतीव सुखकी विद्यमानतामें उसने उपदेश किया ऐसा सुख देखकरभी ॥ ४७ ॥ जो विचार नहीं करता वह मूढ किस प्रकारसे पार होगा यह बात श्रवण कर मैं बडा विस्मित हुआ ॥ ४८ ॥

सुच्छायं सुंदरतरं मनोनयननंदनम् ॥ अपश्यं दर्शनीयांगं शुकमेकं मनोहरम् ॥ ४५ ॥ मधुराभाषिणं विप्रं दृष्ट्वा मे हर्षितं मनः ॥ चेतोवृत्तिर्यतस्तस्मिन्यावन्मम पतत्त्रिणि ॥ तावन्मां सम्मुखो भूत्वा श्लोकमेकं पपाठ ह ॥ ४६ ॥ पुनः पुनस्तदेवासौ पद्यं पठति पक्षिराट् ॥ विद्यमानातुलं सौख्यमालोक्यातीतमात्मनः ॥ ४७ ॥ न चिंतयति संमूढस्तत्कथं पारमेष्यति ॥ इति वाचं शुकेनोक्तामाकर्ण्याहं सुविस्मितः ॥ ४८ ॥ समुत्थितस्ततः शीघ्रं कीरराड्गगनं गतः ॥ न तज्जानाम्यहं ब्रह्मन्किमुवाच हरिच्छदः ॥ ४९ ॥ कोऽसौ शुकः किमाहायं मह्यं वै भावयन्मुने ॥ इमं मे हार्दसंदेहं भवानुच्छेत्तुमर्हति ॥५०॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वोपाख्याने दृढधन्ववृत्तांतकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा वाक्यानि भूपस्य वाल्मीकिर्मुनिसत्तमः ॥ प्राणायामपरो भूत्वा मुहूर्त्तं ध्यानमाश्रितः ॥ १ ॥

इस प्रकार वह पक्षिराट् कहकर आकाशको चला गया हे ब्रह्मन् ! यह मैं नहीं जानताहूं कि, पक्षिराजने क्या कहा ॥ ४९ ॥ वह शुक कौन था क्या उसने मुझे उपदेश किया मेरे इस हृदयके संदेह दूर करनेको आपही योग्य हो ॥ ५० ॥ इति श्रीप० पुरुषोत्तममा० दृढधन्वोपाख्याने भाषाटीकायां दृढधन्ववृत्तान्तकथनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिजी राजाके वचन श्रवण कर प्राणायाम करके एक मुहूर्तभर तक

ध्यानमें स्थित हुए ॥ १ ॥ भूत भविष्य वर्तमान उनको हाथमें आमलेकी समान वर्तमान था इसी कारण मुनिश्रेष्ठने मनमें ध्यान किया ॥ २ ॥ फिर हँसकर मुनिराजने राजासे कहा और विस्मयको प्राप्त होकर बारंबार शिर कंपित करने लगे ॥ ३ ॥ वाल्मीकिजी बोले ॥ हे राजन् ! अपना पहले जन्मका चरित्र श्रवण कीजिये हे राजन् ! जिस पुण्यके प्रतापसे आपको यह परम ऐश्वर्य प्राप्त हुआ है ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र ! पहले जन्ममें तुम द्रविडदेशमें ताम्रपर्णी नदीके किनारे सुदेव नामसे विख्यात विप्र थे ॥५॥ आश्वलायनप्रोक्त कर्ममें तत्पर सदाचारमें परायण धर्मात्मा सत्यवादी यथाला-

करामलकवद्विश्वं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ व्यालोक्य स मुनिश्रेष्ठो ध्यानस्तिमितमानसः ॥२॥ ततो विहस्य भगवा-न्राजानं मुनिरूचिवान् ॥ विस्मितः शुभया वाचा शिरो धुन्वन्पुनः पुनः ॥३॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ शृणु भूपतिशार्दूल प्राग्जन्मचरितं तव ॥ येन पुण्येन भगवांस्त्वय्यैश्वर्यं समर्पयत् ॥४॥ पुरा जन्मनि राजेंद्र भवान्द्रविडदेशजः ॥ द्विजः कश्चित्सुदेवाख्यस्ताम्रपर्णीतटे वसन् ॥ ५ ॥ आश्वलायनसंभूतः सदाचारपरायणः ॥ धार्मिकः सत्यवादी च यथा-लाभेन तुष्टिमान् ॥ ६ ॥ स्वाध्यायव्रतसंपन्नः सदा विष्णुपरोऽभवत् ॥ तस्यैवं वर्तमानस्य भार्यासीद्वरवर्णिनी ॥ ७ ॥ गौतमीति सुविख्याता सद्वंशजननी शुभा ॥ पतिं पर्यचरत्प्रेम्णा शीतांशुं रोहिणी यथा ॥ ८ ॥ तस्यैवं गृहमेधे च वर्त्तमानस्य धर्मतः ॥ व्यतीतः सुमहान्कालः प्राप नासौ सुसंततिम् ॥ ९ ॥

भसेही संतुष्ट होनेवाले ॥ ६ ॥ वेदपाठके व्रतमें सम्पन्न सदा विष्णुके भजनमें तत्पर थे उनकी परम श्रेष्ठ भार्या वर्तमान थी ॥ ७ ॥ वह गौतमी नामक श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न थी और प्रेमसे पतिव्रत धर्म पालन करतीथी जैसे रोहिणी चन्द्रमाकी परिचर्या करतीहै ॥ ८ ॥ उसके साथ यथायोग्य गृहस्थ-धर्ममें वर्तमान होकर उसको बहुत समय बीतगया तथापि कोई सन्तति न हुई ॥ ९ ॥

एक समय वह अपनी स्त्रीसे सेवित हो स्थित था और वह शोकसे गद्गद कंठ होकर कहनेलगा ॥ १० ॥ हे सुन्दरी ! संसारमें पुत्रप्राप्तिकी बराबर सुख नहीं है उस पुत्रकी प्राप्तिके विना मेरा जीवन निष्फल है ॥ ११ ॥ यदि मेरे पुत्र न हो जो श्रेष्ठ और मान देनेवाला है तो मेरी मृत्यु होनाही श्रेष्ठ है मुझको अपुत्र रहना अभीष्ट नहीं है ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह प्रियभाषी बडे खेदसे अपनी स्त्रीको देखकर दुःखी हुआ तब वह प्रियवादिनी अपने स्वामीको समझाती हुई वचन बोलनेमें चतुर श्रेष्ठ वचन कहने लगी ॥ १३ ॥ गौतमी बोली ॥ हे द्विजराज ! इस प्रकारके वचन आप मत

एकदा स समासीनः सेव्यमानः स्वकांतया ॥ जगाद वचनं विप्रः शोकेन गद्गदाक्षरम् ॥ १० ॥ अयि सुंदरि संसारे नास्ति सौख्यं सुतात्परम् ॥ तमप्राप्य वरं पुत्रं जीवितं मम निष्फलम् ॥११॥ न लभेयं सदृक्षं चेत्सुतं मानिनि मानदम् ॥ सद्यो मे मृतिरेवास्तु नहि पुण्यं प्रियं मम ॥ १२॥ अतिखेदसमाविष्टं प्रियं वीक्ष्य प्रियंवदा ॥ आश्वासयत्स्वभर्त्तारं वाक्यैर्वाक्यविशारदा ॥ १३ ॥ गौतम्युवाच ॥ मैवंविधानि वाक्यानि ब्रूहि वल्लभ भूसुर ॥ भवद्विधा भागवता मैवं मुह्यंति सूरयः ॥ १४ ॥ सत्यधर्मपरोऽसि त्वं जितः स्वर्गस्त्वया विभो ॥ साधुचारित्रसाहस्रैः किंतु पुत्रैः करिष्यसि ॥ १५ ॥ यदि नारायणः पुत्रं न दास्यति हरिप्रिय ॥ कथं पुत्रैः सुखावाप्तिर्भावित्री तव सुव्रत ॥१६॥ चिंतनं रघुनाथस्य हरिपादार्चनं विभो ॥ सुखं दास्यति विप्रेंद्र न तु पुत्रः कथंचन ॥ १७ ॥ यदि पुत्रजसौख्ये तु कामनास्ति दृढा तव ॥ कथं न देवदेवेशमाराधयसि केशवम् ॥ १८ ॥

कहिये आप सरीखे भक्त विद्वान् इस प्रकारसे शोच नहीं करतेहैं ॥ १४ ॥ आपने सत्य धर्ममें तत्पर होनेके कारण स्वर्ग जीत लिया है आपके चरित्रही बडे पवित्र हैं आप पुत्रोंसे क्या करोगे ॥ १५ ॥ यदि नारायणकी इच्छा पुत्र देनेकी न हो तो पुत्र और सुखादिकी प्राप्ति किस प्रकार होसकतीहै ॥ १६ ॥ रामका चिन्तन करना और हरिके चरणोंका पूजन करनाही सुखका देनेवाला है न कि पुत्र ॥ १७ ॥ और यदि आपकी कामना

पुत्रकेही सुखमें है तो फिर आप देवदेवेश केशवकी आराधना क्यों नहीं करतेहो ॥ १८ ॥ हे ब्रह्मन् ! पूर्वकालमें जिनकी आराधना कर कर्दमको सुखकी प्राप्ति हुई उन सर्व सुखके निधानको प्राप्त हो पीछे हरिपदको प्राप्त हुए ॥ १९ ॥ सर्वेश्वर हरि जगत्के नाथकी सेवा करो जिनकी किंचित् कृपासे प्राणी उभयलोकमें प्रसन्न होता है ॥ २० ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ अपनी स्त्रीके यह वचन श्रवण कर उसके साथ निश्चय कर ताम्रपर्णी नदीके किनारे गया ॥ २१ ॥ और एकान्तमें स्थित होकर परम दुष्कर तप करनेलगा चार सहस्र वर्षतक तप किया जिससे देवता कंपित होगये ॥ २२ ॥ जगन्नाथ हृषीकेश

यमाराध्य पुरा ब्रह्मन्कर्दमः सुखमाप्तवान् ॥ सर्वसौख्यनिधिं प्राप्य पश्चाद्धरिपदं गतः ॥ १९ ॥ सेवस्व जगतां नाथं हरिं सर्वेश्वरं विभुम् ॥ यत्कृपापांगलेशेन इहामुत्र च मोदते ॥ २० ॥ इति वाक्यानि रामायाः श्रुत्वा विप्रशिखामणिः ॥ निश्चित्यैवं तया सार्द्धं ताम्रपर्णीतटं गतः ॥२१॥ चचार विजने तस्मिंस्तपः परमदुष्करम् ॥ चतुर्वत्सरसाहस्रं येन देवाश्चकंपिरे ॥ २२ ॥ सभाजयञ्जगन्नाथं हृषीकेशं जगद्गुरुम् ॥ विष्णुः सर्वेश्वरो देवश्चिरात्तुष्टः समागमत् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा तं कमलाकांतं सुपर्णोपरि शोभितम् ॥ तुष्टाव परया भक्त्या सपत्नीकः प्रहर्षितः ॥ २४ ॥ सुदेव उवाच ॥ नमस्ते जगतां नाथ त्रैलोक्याभयद प्रभो ॥ सर्वेश्वर नमस्तेऽस्तु त्वामहं शरणं गतः ॥२५॥ पाहि मां परमेशान शरणागतवत्सल ॥ जगद्वंद्य नमस्तेऽस्तु नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २६ ॥

जगद्गुरुको ध्यान करते रहे सर्वेश्वर देव विष्णु बहुत कालमें सन्तुष्ट हुए और उनके समीप आये ॥ २३ ॥ उन कमलाकान्तको गरुडजीके ऊपर स्थित देखकर वह स्त्रीके सहित उनको परम भक्तिसे संतुष्ट करनेलगे ॥ २४ ॥ सुदेव बोला ॥ गरुडके ऊपर स्थित कमलाकान्तको नमस्कार है जगत्पति त्रिलोकीके अभय देनेवाले सर्वेश्वर आपको नमस्कार है मैं आपकी शरणमें प्राप्त हुआहूं ॥ २५ ॥ हे परमेशान ! हे शरणागतवत्सल ! आप मेरी रक्षा

कीजिये. हे जगद्वन्द्य पुरुषोत्तम ! आपके निमित्त नमस्कार है ॥ २६ ॥ जैसे दूसरे देवताओंके भक्त अज्ञानसंकटमें दुःख पाते हैं इस प्रकार आपके भक्त दुःखी नहीं होते हे पुरुषोत्तम देव ! आपको नमस्कार है ॥२७॥ हे महाराज ! जैसे आपने देवकीको कंसके संकटसे छुडाया है इसी प्रकार घोर दुःखसे मेरी रक्षा करो ॥ २८ ॥ जिस प्रकार यज्ञसेनसुता द्रौपदी दुर्योधनके वशीभूत हुई विलाप करती हुईकी आपने रक्षा की थी ऐसे मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ हे प्रभो ! जब कि आपने जरासंधके वशीभूत राजाओंको महासंकटसे छुडाया तौ आप हमारी रक्षा क्यों नहीं करते हो ॥३०॥ हे

यथान्यसुरभक्तस्तु क्लिश्यत्यज्ञानसंकटे ॥ न तथा भवदीया ये तेन त्वं पुरुषोत्तमः ॥ २७ ॥ यथाविता महाराज देवकी कंससंकटात् ॥ तथैव रक्ष मां स्वामिन्घोरदुष्पारसागरात् ॥ २८ ॥ यज्ञसेनसुता दुष्टदुर्योधनवशं गता ॥ लालप्यमानाऽविरतं त्वयैव परिरक्षिता ॥ २९ ॥ दुष्टमागधभूपालसंरोधपरिकर्षिताः ॥ राजन्या रक्षिता विष्णो न मां किमिह रक्षसि ॥ ३० ॥ दारुणाजगरग्रस्तानेकाहीरसुतान्विभो ॥ यस्त्वं रक्षितवान्कृष्ण स मां पाहि व्रजेश्वर ॥ ३१ ॥ बल्लव्यो विरहाक्रांतदेहाः काननविभ्रमाः ॥ मध्यतां दर्शयित्वा ते ह्यनल्पसुखपूरिताः ॥ ३२ ॥ पाहि मां जगदानंद गोविंद शरणागतम् ॥ प्रपन्नभयहत्यैवं व्रतं तेऽस्ति गदाधर ॥ ३३ ॥ जतुगेहे प्रचंडाग्निज्वालाभिः परिवेष्टिताः ॥ रक्षिताः पांडुतनयास्त्वयैव जगदीश्वर ॥ ३४ ॥

विभो ! महाअजगरसे ग्रसे हुए अहीरपुत्रोंकी जैसे आपने रक्षा की थी उसी प्रकार आप हमारी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ गोपी विरहसे व्याप्त हो वनमें भ्रमण करती थीं आपने भक्तिसे सन्तुष्ट हो उनको दर्शन देकर महासुखसे पूरित किया ॥ ३२ ॥ हे गोविन्द ! मैं शरणमें प्राप्त हुआ हूं आप मेरी रक्षा करो; आप प्रसन्न होकर मुझको अभय दीजिये हे गदाधर ! यही आपका व्रत है ॥ ३३ ॥ लाक्षागृह जिस समय महा प्रचंडाग्निसे प्रज्वलित

हो रहाथा हे जगदीश्वर ! उस समय आपनेही पाण्डुपुत्रोंकी रक्षा की ॥ ३४ ॥ हे दामोदर ! हमारे आधार भक्तोंके अभय करनेवाले लक्ष्मी-कान्त गरुडध्वज ॥ ३५ ॥ चौबीस तत्त्व जीवनके कारणसे वर्जित वासवानुज विश्वेश चक्रपाणि आपके निमित्त नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे ईश्वर ! ब्रह्मादि देवता आपकी स्तुति करनेको समर्थ नहीं हैं मैं मनुष्य अल्पबुद्धि किस प्रकारसे आपकी स्तुति कर सकूं ॥ ३७ ॥ इस प्रकार स्तुति कर वह ब्राह्मण नारायणके आगे स्थित हुआ, तब भगवान् उसके खेदको दूर करते हुए मधुरवाणीसे बोले ॥ ३८॥ विष्णु बोले ॥ धन्य हो

दामोदर ममाधार भक्तानामभयंकर ॥ क्षीरोदतनयाकांत सुपर्णांकितकेतन ॥ ३५ ॥ चतुर्विंशतितत्त्वौघजीवनाय-विवर्जित ॥ वासवानुज विश्वेश चक्रपाणे नमोऽस्तु ते ॥ ३६ ॥ न त्वां ब्रह्मादयो देवाः स्तोतुं शक्ता रमेश्वर ॥ मनुष्यो ह्यल्पबुद्धिश्च कथं स्तोतुं क्षमो ह्यहम् ॥ ३७ ॥ इति स्तुत्वा द्विजस्तस्थौ खिन्नो हि पुरतो हरेः ॥ ततो विष्णुर्ब्राह्मणं तं दृष्ट्वा म्लानमुखं पुरः ॥ प्रोवाच स्निग्धया वाचा तत्खेदं शमयन्निव ॥ ३८ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ साधुसाधु द्विजश्रेष्ठ किमिच्छसि वदस्व तत् ॥ यत्तेऽभिलषितं चित्ते दास्यामि तव भूसुर ॥ ३९ ॥ सुदेव उवाच ॥ किमज्ञातं महाराज कूटस्थाखिलचित्तज ॥ सर्वेंद्रियनियंतासि सर्वसाक्षी जगत्पतिः ॥४०॥ यदि प्रीतोऽसि भगवन्मे तद्वक्ष्यामि तेऽग्रतः ॥ अनाथनाथ नाथोऽसि शृणुष्व त्वमधोक्षज ॥ ४१ ॥ प्रभो पुत्रैर्विना शून्यं गार्हस्थ्यं काननोपमम् ॥ इहामुत्र सुराधीश नैराश्यं तनयैर्विना ॥ ४२ ॥

ब्राह्मण तुम बडे श्रेष्ठ हो तुम्हारी क्या इच्छा है कहो; हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! जो तुम्हारी अभिलाषा होगी सो मैं दूंगा ॥ ३९॥ सुदेवने कहा ॥ हे कूटस्थ ! सबके हृदयकी जाननेवाले आपको क्या अज्ञात है सम्पूर्णकी इन्द्रियोंके ज्ञाता आप जगत्पति हो ॥ ४० ॥ जो आप प्रसन्न हो तो मैं आपके आगे कहताहूं हे अधोक्षज ! आप अनाथोंके नाथ हो श्रवण कीजिये ॥ ४१ ॥ हे प्रभो ! पुत्रके विना गृहस्थपन शून्य अर्थात् वनकी समान है. हे सुराधीश !

पुत्रके विना मुझको दोनों लोक शून्य प्रतीत होते हैं ॥ ४२ ॥ इस प्रकार केशव ब्राह्मणके मुखके वचन श्रवण कर अत्यन्त प्रसन्न होकर वचन कहने लगे ॥ ४३ ॥ भगवान् बोले ॥ हे विप्र ! शेषजीकी पुच्छसे ले विचित्र भुवन पर्यन्त अनेक सुख हैं उनको मैं तुझे देता हूं ॥ ४४ ॥ परन्तु हे द्विजराज ! पुत्रका सुख तुम्हारे भाग्यमें नहीं है. हे मुने ! जो तुम्हारे भाग्यमें हो वही प्राणीको मिलता है इसमें तपका हेतु है ॥ ४५ ॥ सो पुत्रके विना और जो इच्छा हो सो मांगो पुत्रके शरीरका स्पर्श भाग्यके विना नहीं हो सकता है ॥ ४६ ॥ हे सुव्रत ! इस कारण दूसरी वार्ता कहो वह मैं तुमको

इति विप्रमुखोद्गीतां वाचमाकर्ण्य केशवः ॥ उवाच वचनं श्रीमानतिहृष्टमना विभुः ॥ ४३ ॥ विष्णुरुवाच ॥ शेषलांगूलतो विप्र विचित्रभुवनावधि ॥ संति सौख्यान्यनेकानि तानि ते वितराम्यहम् ॥ ४४ ॥ न तु पुत्रसुखं तेऽस्ति द्विजराजकुलोत्तम ॥ दीयते भाग्यनिर्दिष्टं तपसा हेतुना मुने ॥ ४५ ॥ अधुना सर्वदातास्मि तनुजाभ्यर्थनं विना ॥ पुत्रगात्रपरिष्वंगस्तव भाग्ये न विद्यते ॥ ४६ ॥ तस्मादन्यात्समाचक्ष्व तत्ते दास्यामि सुव्रत ॥ अर्जितं वर्षसाहस्रैस्तत्ते पुण्यं ददाम्यहम् ॥ ४७ ॥ इत्युक्त्वोपरते विष्णौ द्विजः परमदुर्मनाः ॥ पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ४८ ॥ पतिं पतितमालोक्य रुरोद प्रमदा भृशम् ॥ निराशं पश्यती नाथं बाला बालस्पृहा सती ॥ ४९ ॥ उत्तिष्ठ भूसुरश्रेष्ठ शृणुष्व वचनानि मे ॥ यद्भाग्यरचितं वस्तु लभेन्नारायणादपि ॥ ५० ॥

प्रदान करूंगा सहस्रों वर्ष जो तुमने तप किया है उसके पुण्यका फल ग्रहण करो ॥ ४७ ॥ विष्णुके यह वचन कहनेपर ब्राह्मण महादुःखी हुआ और तत्काल पृथ्वीमें जड कटे वृक्षकी समान गिर पडा ॥ ४८ ॥ अपने पतिको गिरा देख उसकी स्त्री अत्यन्त रुदन करने लगी अर्थात् वह अपने पतिको निराश देख महा दुःखी हो बालककी इच्छा किये हुए बोली ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उठो और मेरे वचन सुनो; जो भाग्यमेंही रची हुई वस्तु

नारायणसे मिलती है ॥ ५० ॥ और कमलकी समान श्यामवर्ण नारायण अधोक्षजको देखकरभी जो वस्तु प्राप्त नहीं होसकी वह कहांसे मिल सकती है ॥ ५१ ॥ रमानाथ और सुरेश्वर क्या करसकते हैं अथवा कैलासपति शिव वा महेश्वरी क्या करसकती हैं ॥ ५२ ॥ श्रीमान् गणेश तथा लोकपितामह ब्रह्मा अग्नि तथा कोई मुनि क्या करेगा ॥ ५३ ॥ पितृपति वरुण वा अनन्त नाग अथवा गरुडजी क्या कर सकते हैं जब नारायणहीकी इच्छा नहीं तो उसका किया सब व्यर्थ है ॥ ५४ ॥ हे नाथ ! रमाकान्तके वचन श्रवण कीजिये आपसे क्या कहा जाय यदि

यदि चेंदीवरश्यामं नारायणमधोक्षजम् ॥ समक्षीकृत्य नो प्राप्तस्तत्कुतो विंदसे विभो ॥५१॥ किं करोति रमानाथः किं करोति सुरेश्वरः ॥ कैलासनिलयः शंभुर्भवानी वा महेश्वरी ॥५२॥ गजेंद्रवदनः श्रीमन्पिता लोकपितामहः ॥ वीतिहोत्रः किंच कुर्यान्मुनिर्वा किं करिष्यति ॥५३॥ पितृराजो जलेशो वा अनंतो नागराडपि ॥ तस्य व्यर्थं भवेत्सर्वं व्यर्थस्तस्य परिश्रमः ॥५४॥ शृणु नाथ रमाकांत किं ते वदति संगतः ॥ यदि ते भाग्यविभ्रंशः कुतो दद्यात्तु पुत्रकम् ॥५५॥ अस्मद्भाग्यविनाशेन हरिदर्शनजं फलम् ॥ इह दुःखाय चोत्पन्नमसुत्र सुखदं विभो ॥५६॥ क्रतुदानतपःसत्यव्रतेभ्यो हरिसेवनम् ॥ वरं नाद्यापि पश्यामि भाग्यं तस्माद्बलाधिकम् ॥५७॥ श्रुत्वा वचांसि ब्राह्मण्याः शोकवेगाकुलानि च ॥ अत्यंतक्षोभसंजातवेपथुर्विनतात्मजः ॥ ५८ ॥

आपका भाग्यही नष्ट है तो आपके पुत्र कहांसे प्राप्त होगा ॥ ५५ ॥ हमारे भाग्य नष्ट होनेके कारणसेही नारायणके दर्शनका पुण्यफल हमारे दुःखके निमित्तही प्राप्त हुआ ॥ ५६ ॥ यज्ञ दान तप सत्य व्रतोंसे नारायणका सेवन करनाभी विना भाग्यके नहीं होसकता इस कारण अधिक बलवान् है ॥ ५७ ॥ इस प्रकार शोकवेगसे युक्त ब्राह्मणीके वचन सुनकर विनतापुत्र गरुड अत्यन्त क्षोभको प्राप्त हो कम्पित

होनेलगा ॥ ५८ ॥ और शोकसे पीडित हो भगवान्से बोले कारण कि ब्राह्मणकी पीडा देखकर उनके नेत्रोंसे जल बह रहाथा ॥ ५९ ॥ गरुडजी बोले ॥ हे भगवन् ! हमको बडा आश्चर्य है कि इस समय आपकी ब्रह्मवत्सलता क्या हुई जो इस दीन तपस्वीको देखकर आपके मनमें व्यथा उत्पन्न नहीं होती ॥ ६० ॥ हे विभो ! जब कि पतितोंको मुक्ति देनेमें आप विचार नहीं करते तो इस ब्राह्मणके ऊपर तुच्छ बातमें दया क्यों नहीं आती ॥ ६१ ॥ मुक्ति आठ सिद्धि सार्वभौम राज्यकी प्राप्तिभी आपके स्मरण करनेवालोंको दुर्लभ नहीं है फिर पुत्रकी इच्छा क्या बडी बात है ॥ ६२ ॥ हे गोविन्द ! इस

पद्मनाभमुवाचेदं ब्राह्मणी शोकपीडिता ॥ विप्रमालक्ष्य नयनक्षरद्वाष्पकलाकुलम् ॥ ५९ ॥ गरुड उवाच ॥ अहो ते देवकीसूनो ब्रह्मण्यत्वं कुतो गतम् ॥ यदिमं तापसं दीनं दृष्ट्वा नालक्ष्यते व्यथा ॥ ६० ॥ यदि कैवल्यदाने ते नास्ति विष्णो विचारणा ॥ पतितानामपि विभो नहि किं तापसे दया ॥६१॥ कैवल्यं सिद्धयोऽप्यष्टौ सार्वभौमादिसंचयः ॥ न ह्यलभ्यस्तव स्मर्तुः किं वराकी सुतस्पृहा ॥ ६२ ॥ तदस्मै देहि गोविंद पुत्रमेकं गुणाधिकम् ॥ न दास्यसि हृषीकेश सदोषं तव चार्हणम् ॥ ६३ ॥ त्वदीयानुचराः सर्वे विनष्टाः कीर्तिदूषणात् ॥ मास्तु नः श्रवणे वाक्यमिदं भूमन्कदाचन ॥ ६४ ॥ त्वामाराध्यजनः सर्वं फलं प्राप्नोति वांछितम् ॥ तत्राप्ययं द्विजवरस्त्वत्पादांबुजसेवकः ॥ ६५ ॥ अदांभिकः कृपाशीलः साधु सद्गुणभाजनः ॥ ब्राह्मणी च महाभागा त्वयि संन्यस्तमानसा ॥ ६६ ॥

कारण इसके निमित्त एक गुणी पुत्र दीजिये, यह पापरहित आपकी सदा पूजा करता रहाहै नहीं तो आपकी पूजामें दोष रहेगा ॥ ६३ ॥ कीर्तिदूषणसे आपके अनुचर नष्ट होंगे सो ऐसे वाक्य हमारे श्रवणगोचर कभी न हों ॥ ६४ ॥ आपकी आराधना कर सब प्राणी मनोवांछित फलको प्राप्त होतेहैं फिर उसमें तो यह ब्राह्मण आपके चरणोंकी सेवा करताहै ॥ ६५ ॥ तथा पाखण्डरहित कृपाशील साधु सद्गुणका पात्र है और इसी प्रकार यह ब्राह्मणी आपमें मन

लगाये है ॥ ६६ ॥ हे विश्वेश ! इनको देखकर आपके मनमें दया क्यों नहीं उत्पन्न होती ? इसके नेत्रोंसे निकला जल जाने क्या करेगा ॥ ६७ ॥ यह कानोंको अमृतकी समान गरुड़जीके वचन सुनकर गरुडको साश्चर्य कहते हुए ॥ ६८ ॥ प्रभु बोले ॥ हे गरुडजी ! जो आपके मनमें स्थित है वह इस ब्राह्मणको दो, ब्राह्मणको अभीष्ट विना दिये मेरा हृदयभी परितप्त हो रहाहै ॥ ६९ ॥ क्या करूंगा इसके भाग्यके वशसे मेरे मुखसे निकल गया जो इसका मनचिन्तित दिया

एनामालक्ष्य विश्वेश घृणा ते किं न जायते ॥ एतयोर्नेत्रसंभूतो वारिधिः किं करिष्याति ॥ ६७ ॥ श्रुत्वा सुपर्णवचनपीयूषं श्रुतिसुप्रियम् ॥ हरिः प्रसन्नः प्रोवाच वैनतेयं स्मयन्निव ॥ ६८ ॥ नागारे देहि विप्राय यत्ते मनसि वांछितम् ॥ ममापि हृदयं तप्तमदत्त्वा द्विजचिंतितम् ॥ ६९ ॥ किं करोम्यस्य भाग्येन मम वक्त्राद्विनिर्गतम् ॥ ममापि स्यात्प्रियं ह्येतद्ददाति चिंतितं भवान् ॥ ७० ॥ इत्याकर्ण्य हरेर्वाक्यं वैनतेयः प्रसन्नधीः ॥ ददौ यथेप्सितं कामं विप्राय सुमहात्मने ॥ ७१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवाय वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ क्षोणीपते ततो जातं वृत्तांतं कथयाम्यहम् ॥ सुपर्णः केशवादेशाद्वाक्यमाह द्विजेश्वरम् ॥ १ ॥ गरुड उवाच ॥ द्विजराजानृतं नाह विष्णुः पद्मविलोचनः ॥ भाग्ययोगेन च सुखं भवतीह द्विजोत्तम ॥ २ ॥

जावे तो इसमें मेराभी प्रिय होगा ॥ ७० ॥ यह वचन सुनकर गरुडजीने प्रसन्न होकर उस महात्मा ब्राह्मणके निमित्त पुत्रप्रदान किया ॥ ७१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवाय वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ वाल्मीकिजी बोले ॥ हे राजन् ! आपसे मैं वृत्तान्त कहताहूं गरुडजी भगवान्‌की आज्ञासे उस ब्राह्मणसे कहने लगे ॥ १ ॥ गरुडजी बोले ॥ हे ब्राह्मण ! कमललोचन विष्णु भगवान्‌ने असत्य नहीं कहा; हे द्विज !

भाग्यके योगसेही यहां सुख होताहै ॥ २ ॥ विष्णुके वाक्य अनादर कर मैं तुमको पुत्र नहीं देताहूं. हे पापरहित ! जो मेरा स्पर्श करताहै वह सर्वथा अभय हो जाताहै ॥ ३ ॥ इस कारण अपने अंशसे तुमको पुत्र देताहूं इस कारण सत्य आशीर्वादसे गौतमीमें पुत्रकी प्राप्ति करोगे ॥ ४ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! जो कि तुम्हारी नारायणके चरणोंमें मति प्राप्त है इससे तुम धन्य हो. सकामा अकामा कैसी भी हो हरिभक्ति सुख देनेवाली है ॥ ५ ॥ जिस प्रकार पत्तेपर स्थित जल क्षणमें नष्ट होजाताहै इस प्रकार यह शरीर क्षणमें विध्वंस होनेवाला है ॥ ६ ॥ उसमें जो रघुनाथजीके चरणकमलको हृदयमें चिंतन नहीं

विष्णुवाक्यमनादृत्य न चेद्दास्यामि ते सुतम् ॥ यो हि मां स्पृशते घोरो ह्यभयः सर्वथानघ ॥३॥ तस्मान्ममांशतस्तुभ्यं
सुतं दद्मि मनोहरम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या लप्स्यसे गौतमीसुतम् ॥ ४ ॥ धन्योऽसि द्विजशार्दूल यत्ते जाता हरौ
मतिः ॥ सकामाप्यथ निष्कामा हरिभक्तिः सुखप्रदा ॥ ५ ॥ पल्लवाग्रलसद्बिंदुक्षणध्वंसि जने वयः ॥ तत्र राघवपादा-
ब्जं धन्यश्चिंतयते हृदि ॥ ६ ॥ विषया विषरूपा वै नराणां तुच्छसौख्यदाः ॥ कौशल्येयमनादृत्य तेषु मूढोऽतिलं-
पटः ॥ ७ ॥ इंद्रियाणि प्रमाथीनि बांधवा इव दुर्धियः ॥ तदर्थं जानकीनाथं नोपसर्पति मंदधीः ॥ ८ ॥ नाशं वसुमती
गंत्री गंतारो गिरयो द्रुमाः ॥ आपगाः सागरा नागाः सुरा दैत्याः खगा मृगाः ॥ ९ ॥ यत्किंचिद्दृश्यते लोके स्थूलं
सूक्ष्मं परं च यत् ॥ सर्वं नाशात्मकं पश्यन्नोपयाति जनार्दनम् ॥ १० ॥

करताहै वह जन्म वृथा गमाताहै कारण कि; यह विषय तुच्छ सुख देनेवाले हैं मूर्ख रामचन्द्रको अनादर कर उनमें लम्पट होरहाहै ॥ ७ ॥ यह इन्द्रिय मनुष्योंको प्रमथन करनेवाली तथा दुर्बुद्धि बांधवोंकी समान है इनके विषयमें तत्पर हुआ भी यह मूर्ख नारायणके समीप नहीं प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ पृथ्वीका एक दिन नाश होगा पर्वत वृक्ष नष्ट होंगे नदी सागर नाग सुर दैत्य खग मृग ॥ ९ ॥ जो कुछ लोकमें दीखताहै तथा जो कुछ स्थूल सूक्ष्म

है यह सबको नाशात्मक देखकर भी जनार्दनके निकट उपस्थित नहीं होताहै ॥ १० ॥ अहो यह महामोहका अज्ञान तथा यह बुद्धिका महाभ्रम है इसको देखकर भी मूर्ख इससे पृथक् होकर हरिका सेवन नहीं करता है ॥ ११ ॥ क्या स्त्री पुत्र वा सुहृत् कोई भी अपना नहीं है धन घर भृत्य राज्य हाथी घोडे ॥ १२ ॥ इन सबको बलसे मृत्यु अपनेमें मिलाती है ऐसा जानकरभी जो मनुष्य कोशलपतिको चिन्तन नहीं करता उसको धिक्कार है ॥ १३ ॥ सिवाय पुण्डरीकाक्षके कौन उसको अवलम्बन दे सकता है नारायणके सिवाय दूसरा तारनेवाला नहीं है नहीं है ॥ १४ ॥

अहो मोहांधतामिस्रमहोऽयं बुद्धिविभ्रमः ॥ नाशात्मकं समालोक्य रघुवीरं न सेवते ॥ ११ ॥ किमु पत्नी सुतो वापि किमु कन्या कथं सुहृत् ॥ कथं धन कथं गेहं राज्यं भृत्या गजा हयाः ॥ १२ ॥ मृत्युनावर्तयंतीह बलात्कारोपयोजिताः ॥ धिग्जनं कोशलाधीशं नानुचिंतयतीह यः ॥१३॥ तमृते पुंडरीकाक्षं कोऽवलंबयते परम् ॥ नैव नैवेति नैवेति हरेरन्यो न तारकः ॥१४॥ हरेः कृपावलोकेन मया दत्तः सुतस्तव ॥ संसारसंभवं सौख्यं भुंक्ष्व विप्रेश्वर क्षितौ ॥१५॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ दंपत्योः पश्यतोः सद्यो दत्त्वा वरमनुत्तमम् ॥ ससुपर्णः सलक्ष्मीको हरिरंतरधीयत ॥ १६ ॥ स गौतम्या सुदेवोऽपि जगाम निलय स्वकम् ॥ हर्षसागरमासाद्य यथेच्छमभजत्सुखम् ॥ १७ ॥ कालानुक्रमतस्तस्यां दोहदः समपद्यत ॥ पांडुरं च मुखं दध्रे गौतमी पतिदेवता ॥ १८ ॥

नारायणकी कृपादृष्टिसे मैंने तुमको पुत्र दिया है. हे ब्राह्मण ! पृथ्वीमें तू संसारके सुखोंका अनुभव कर ॥ १५ ॥ वाल्मीकि बोले ॥ दोनों स्त्री पुरुषोंको इस प्रकार वर देकर गरुड और लक्ष्मीसहित नारायण वहांसे अन्तर्धान हो गये ॥ १६ ॥ वह गौतमी और सुदेवभी अपने स्थानको गये और प्रसन्नताके सागरको प्राप्त हो यथेच्छ सुख भोगने लगे ॥ १७ ॥ कालक्रमसे गौतमीको गर्भ रहा अर्थात् उस पतिव्रता स्त्रीका मुख श्वेत होगया ॥ १८ ॥

वह गर्भवती हो भर्ताको आनन्द देनेवाली शोभित हुई जैसे जयन्तको गर्भमें धारण करनेसे इन्द्राणी शोभित हुई थी ॥ १९ ॥ उस महाभाग्यवतीने चेतना प्रसादकी समान सर्वगुणयुक्त पुत्रको उत्पन्न किया जिसका मुख चन्द्रमाकी समान था ॥ २० ॥ मुनिश्रेष्ठने उसके जातकर्मादि किये और प्रसन्नताके कारण अपनेको बहुत मानते हुए ॥ २१ ॥ अहो मुझ अल्पभाग्यको पुत्रप्राप्ति कहां हो सकती है शंख चक्र गदा पद्म धारण करनेवाले नारायणहीकी कृपासे सब कुछ होसकता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार महा प्रसन्न हो उसने पुत्रके जातकर्म किये और उस महात्मा-

अंतर्वत्नी रराजेयं भर्तुरानंदवर्धिनी ॥ यथा पौरंदरी रेजे जयंते गर्भमागते ॥ १९ ॥ सा प्रसूता महाभागा प्रसादमिव चेतना ॥ सुतं सर्वगुणोपेतं पूर्णचंद्रनिभाननम् ॥ २० ॥ जातकर्मादिकार्याणि चकार मुनिपुंगवः ॥ महता हर्षयोगेन स्वात्मानं बह्वमन्यत ॥ २१ ॥ अहो ममाल्पभाग्यस्य कुतः पुत्रस्य वै सुखम् ॥ विना दयां सुरेशस्य शंखचक्रगदा-भृतः ॥ २२ ॥ इत्यानंदसमायुक्तः सर्वकार्याण्यथाकरोत् ॥ ब्राह्मणान्भोजयामास विष्णुबुद्ध्या महात्मनः ॥ २३ ॥ नाम चास्याकरोद्धीमान्ब्राह्मणैः स्वजनैर्युतः ॥ असौ शिशुः सुपर्णेन दत्तः प्रेम्णातिशोभनः ॥ २४ ॥ यस्माच्छ्लोकेन प्रहितो दीव्यतीव दिवाकरः ॥ शुकदेवेति नाम्नायं तस्माद्भवतु बालकः ॥ २५ ॥ व्यवर्द्धत शिशुः शीघ्रं शुक्लपक्ष इवो-डुराट् ॥ पितुर्मनोरथैः साकं मातुर्मानसनंदनः ॥ २६ ॥ क्रमाद्बभूव षड्वर्षः कंदर्पसमशोभनः ॥ कदाचित्तद्गृहाभ्या-शमाजगाम मुनिः स्वयम् ॥ २७ ॥

ने विष्णुबुद्धिसे ब्राह्मणोंको भोजन कराया ॥ २३ ॥ और इस महात्माने अपने कुटुम्बी जनोंके साथ इसका नामकरण किया जिस कारणसे कि, प्रसन्न हो गरुडजीने यह पुत्र दियाथा ॥ २४ ॥ जिस कारणकी श्लोकके द्वारा दिव्य प्रकाश हुआ इस कारण इस बालकका शुकदेवही नांम होगा ॥ २५ ॥ तब यह बालक शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान बढने लगा पिता और माताको आनंदित करने लगा ॥ २६ ॥ कामदेवकी समान

शोभायमान वह बालक क्रमसे छः वर्षका हुआ. एक समय उसके स्थानमें स्वयं मुनिराज ॥ २७ ॥ तेजसे प्रकाशमान नारदजी आये. उनका विधिपूर्वक पूजन कर ब्राह्मणने उनकी गोदीमें अपने पुत्रको ॥ २८ ॥ परम भक्तिसे लिटाकर प्रणाम किया और कहा; हे विप्रश्रेष्ठ ! सब प्रकारसे मंगल करनेवाला यह बालक आपहीका है ॥ २९ ॥ नारदने भी बडे प्रेमसे उस बालकको देखा उसे देखकर वारंवार हास्य किया ॥ ३० ॥ और गौतमीके

नारदः सुरसंकाशस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ तमर्च्य विधिवद्विप्रस्तदुत्संगे सुतं स्वकम् ॥ २८ ॥ निधाय परया भक्त्या ननामानतकंधरः ॥ बालस्तवायं विप्रर्षे पाव्यः सर्वात्मने हितः ॥२९॥ नारदः स्नेहसंयुक्तः कुमारमवलोकयन् ॥ नयनोपगतं कृत्वा स्मयित्वा च पुनः पुनः ॥ ३० ॥ उवाच गौतमीनाथं सुदेवं सात्त्विकं द्विजम् ॥ भोभो धन्योऽसि यत्साधो तुष्टस्ते यादृशो हरिः ॥ ३१ ॥ तपसाराधितः पुत्रं दत्तवानतिसुन्दरम् ॥ किमत्र शृणु मे वाक्यं प्रसादे विष्णुसंभवे ॥ ३२ ॥ तिर्यगूर्ध्वमधोमाने ह्यष्टोत्तरशतांगुलः ॥ सुदेव तनयस्तेऽयं किन्तु स्यात्पृथिवीपतिः ॥३३॥ अहो किमेतत्पश्यामि करे बालस्य धीमतः ॥ सच्छत्रं चामरयुगं हरेर्जेष्यति किं पुरम् ॥ ३४ ॥ कनिष्ठामूलतो रेखा तर्जन्यंतमुपाश्रिता ॥ अक्षता निर्मला दीर्घा दीर्घायुष्यप्रदायिनी ॥ ३५ ॥ अच्छिद्रौ कठिनौ रक्ततलौ पद्मोपमौ करौ ॥ राजाङ्कसूचकौ रक्तनखौ दीर्घांगुली शुभौ ॥ ३६ ॥

पति सुदेव सात्विक ब्राह्मणसे कहा हे ब्राह्मणदेव ! तुम धन्य हो जो कि, तुम्हारे ऊपर नारायण प्रसन्न हुए हैं ॥ ३१ ॥ और तपसे प्रसन्न हो तुमको पुत्र दिया है और इस विष्णुकी प्रसन्नतामें मेरे वचनको सुनो ॥ ३२ ॥ ऊपर नीचे तिरछे सर्वत्र एक सौ आठ अंगुल यह तुम्हारा पुत्र है. हे सुदेव ! यह तुम्हारा पुत्र पृथ्वीका पति होगा ॥ ३३ ॥ अहो मैं किस प्रकारसे इस बालकके हाथमें छत्रचामर देखताहूं क्या यह वैकुंठका जीतनेवाला होगा ॥ ३४ ॥ कनिष्ठिकाके मूलसे रेखा तर्जनीके अन्ततक चली गई है और जो निर्मल तथा दीर्घ है यह आयुकी देनेवाली है ॥ ३५ ॥ छिद्ररहित रक्तवर्णके हाथकमलकी

समान हैं दीर्घ अंगुली और लाल रंगके दीर्घ नखून राजा होनेका चिह्न कथन करते हैं ॥ ३६ ॥ जंघापर्यन्त लम्बायमान मांसल पुष्ट इसके हाथ हैं यह तुम्हारा पुत्र समुद्रपर्यन्तका राजा होगा ॥ ३७ ॥ मधुकी समान पिंगलवर्णके नेत्र श्याम शरीर स्निग्ध तथा घूंघरवाले बाल ऊंची छाती पुष्ट गर्दन समान कर्ण बैलकी बराबर ऊंचे कंधे ॥ ३८ ॥ गूढ हंसली गहरी नाभि त्रिवलीसे विभूषित उदर ह्रस्वलिंग पद्म गंधि वीर्ययुक्त पृथु कटि ॥ ३९ ॥ सुन्दर जंघा और ऊरुभाग सुन्दर आकृति पाठीन मछलीकी समान कोमल रक्तवर्ण पृथ्वीको स्पर्श

आजानुलंबिनौ हस्तौ हस्तितुल्यौ सुमांसलौ ॥ आवारिधेर्भूमिपालो भविष्यति सुतस्तव ॥ ३७ ॥ मधुपिंगेक्षणः श्यामः स्निग्धकुंचितमूर्द्धजः ॥ तुंगवक्षाः पृथुग्रीवः समकर्णो वृषांसकः ॥ ३८ ॥ गूढजत्रुर्गूढनाभिस्त्रिवलीभूषितोदरः ॥ ह्रस्वलिंगः पद्मगंधिवीर्ययुक्तः पृथुः कटौ ॥ ३९ ॥ सुजानुः सुन्दरतरो जंघाभ्यां च शुभाकृतिः ॥ पाठीनपृष्ठसदृशौ कोमलारक्तभूस्पृशौ ॥ ४० ॥ सुकुमारांगुली सौम्यावूर्ध्वरेखांबुजान्वितौ ॥ सुगुप्तगुल्फौ सत्पार्ष्णी पादौ तस्य मनोहरौ ॥ ४१ ॥ पाणिपादनखान्यक्षिजिह्वोष्ठौ गण्डतालुके ॥ अष्टौ रक्तानि दृश्यंते भाग्यचिह्नानि ते सुते ॥ ४२ ॥ मूत्राधारशिरःकेशौ दक्षिणावर्त्तिनौ यदि ॥ सालकं हृदयं विप्र दीर्घं सौख्यप्रकाशकम् ॥ ४३ ॥ सर्वलक्षणसंपूर्णः पुत्रो भाग्यनिधिर्द्विज ॥ निंद्यं नैवात्र पश्यामि परमाणुनिभं क्वचित् ॥ ४४ ॥

करनेवाली ॥ ४० ॥ ऊर्ध्व रेखावाली सुकुमार अंगुलियोंको अलंकृत सुन्दर रक्षित गुल्फ सत्यही मानो लक्ष्मीके स्थान उनके चरण हैं ॥ ४१ ॥ हाथ चरण नखून नेत्र जिह्वा ओष्ठ गाल और तालु यह आठ वस्तु जिसके लाल देखो उसे भाग्यवान् जानो ॥ ४२ ॥ जिसका मूत्राधार तथा शिरके बाल यदि दक्षिणावर्ती हों और हृदय जिसका रोमसहित चौडा हो वहभी बडा सुख पाता है ॥ ४३ ॥ हे विप्र! यह तुम्हारा पुत्र भाग्यवान् सब

लक्षणसे सम्पन्न है और परमाणुमात्र भी मैं इसमें पाप नहीं देखताहूं ॥ ४४ ॥ परम कान्तिमान् देवर्षि यह वचन सुनाकर फिर श्वास लेकर विचारते शिर धुनने लगे ॥ ४५ ॥ कि जब समय अपने अनुकूल होता है तब सब शुभ दीखता है और जब प्रतिकूल होता है तब तत्काल नष्ट हो जाताहै ॥ ४६ ॥ इसी कारण हे सुदेव! यह तुम्हारा पुत्र बारहवें वर्षमें मृत्युको प्राप्त होगा इसमें शोक न करो ॥ ४७ ॥ ईश्वरकी इच्छासे होनेवाले

इति वाचमुदीर्यासौ देवर्षिः परमद्युतिः ॥ निःश्वसन्मौलिमाधुन्वन्पुनराह विचारयन् ॥ ४५ ॥ शुभं संपश्यते सर्वं यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ स यदा प्रतिकूलः स्यात्सर्वं नश्यति हेलया ॥ ४६ ॥ सुदेव तनयस्तेऽयं द्वादशे हायने गते ॥ मृत्युमेष्यति तत्र त्वं मा शोके मानसं कृथाः ॥४७॥ अवश्यंभाविनो भावा भवंत्येवेश्वरेच्छया ॥ तत्र प्रतिविधिं नान्यः कर्तुमर्हति तं विना ॥ ४८ ॥ भवादृशां वदान्यानां धार्मिकाणां सुवर्चसाम् ॥ सज्जनप्रियकृत्कृष्णो ना सुखानि क्षमिष्यति ॥ ४९ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इत्युक्त्वा निर्ययौ ब्रह्मलोकं ब्रह्मतनूद्भवः ॥ सुदेवः सह गौतम्या निपपात धरातले ॥ ५० ॥ खातमूलो गिरिर्यद्वच्छिन्नमूलो यथा तरुः ॥ ध्वजयष्टिर्यथा वायोर्दंपती धरणीं गतौ ॥ ५१ ॥ व्यलुंठत्सुचिरं भूमावपस्मारहतो यथा ॥ ततः किसलयस्पर्द्धिकरद्वंद्वांचितः क्षणात् ॥ ५२ ॥

भाव अवश्य होतेहैं उनके विना कोई प्रतिविधि करनेको समर्थ नहीं है. ॥ ४८ ॥ आपसरीखे वदान्य धर्मात्मा तेजस्वी जनोंके सज्जन और प्रियबंधु कृष्णही सब मंगल करेंगे ॥ ४९ ॥ वाल्मीकिजी बोले ॥ इस प्रकारके वचन कह नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये और सुदेव गौतमके सहित पृथ्वीमें गिर पडा ॥ ५० ॥ जैसा जड खोदा हुआ पहाड और छिन्नमूल वृक्ष गिरजाता है अथवा वायुसे जैसे ध्वजा गिरती है ऐसे दोनों स्त्रीपुरुष गिरपडे ॥ ५१ ॥ और पृथ्वीमें लोटने लगे जैसा अपस्मारयुक्त मनुष्य गिर जाता है कमलकी समान स्पर्धा करनेवाले दोनों हाथोंका स्पर्श कर ॥ ५२ ॥

ब्राह्मण अमृत प्राप्त हुएकी समान तत्काल उठ बैठा और वह सुन्दरी बाला उस बालकको लेकर प्रेमसे उसका मुख चूमती हुई अपने स्वामीसे बोली हे द्विजराज ! होनहार वस्तुओंमें आपको भय करना नहीं चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ होनहार हुए विना नहीं रहती और जो होनहार नहीं है वह नहीं होती. होनहार वस्तुका किसी प्रकार लोप नहीं होता ॥ ५५ ॥ यदि अवश्य होनहार वस्तुओंका प्रतीकार होता तौ नल राम युधिष्ठिर कदाचित् दुःखी न होते ॥ ५६ ॥ दानवेंद्रका बंधन यदुकुलका क्षय कार्तवीर्यके शिरका छेदन दशग्रीवका नाश ॥ ५७ ॥ राम जानकीका विरह

सद्योऽमृतप्राप्त इव समुत्तस्थौ द्विजोत्तमः॥ अथ सा सुंदरी बाला स्वकमादाय बालकम्॥५३॥चुचुंब वदनं प्रेम्णा ततः स्वामिनमाह सा ॥ द्विजराज न ते कार्या भीतिर्भाव्येषु वस्तुषु ॥५४॥ ना भाव्यं कुत्रचिद्भावि भाव्यं नैव विनश्यति ॥ अवश्यं भावि यद्वस्तु सर्वथा नोपलुप्यते ॥ ५५ ॥ अवश्यं भावि भावानां प्रतीकारो भवेद्यदि ॥ तदा दुःखैर्न बाध्यंते नलरामयुधिष्ठिराः ॥ ५६ ॥ बंधनं दानवेंद्रस्य क्षयो यदुकुलस्य च ॥ कार्त्तवीर्यशिरश्छेदो दशग्रीवविनाशनम् ॥५७॥ विरहो रामजानक्योर्लक्ष्मणस्य विवासनम् ॥ वालिगोपुच्छनिर्णाशस्त्रिशंकुतनयापदः ॥ ५८ ॥ वधो हिरण्यकशिपोर्वृत्रासुरनिबर्हणम् ॥ त्रैलोक्ये तानि भो नाथ ज्ञेयान्यमितबुद्धिना ॥ ५९ ॥ बहूपायैरपि विभो नाभाव्यं भवति क्वचित् ॥ भाव्यस्यापि नरः कर्त्ता नासीत्सुरवरोऽपि सन् ॥ ६० ॥ अकार्यं शक्यते कर्त्तुं यदि केनापि भूसुर ॥ मागधारुद्धभूपालाः कथं जीवितमाप्नुयुः ॥ ६१ ॥

लक्ष्मणका त्याग वालिका नाश त्रिशंकुके पुत्रपर आपत्ति ॥ ५८ ॥ हिरण्यकशिपुका वध वृत्रासुरका विनाश हे नाथ ! यह त्रिलोकीमें वार्ता हुआ करती हैं सो बुद्धिमान्को जाननी उचित हैं ॥ ५९ ॥ हे विभो ! कितने भी उपाय करो होनहार नहीं चुकती होनहारका कर्ता कहीं कोई देवताभी नहीं हो सकता है ॥ ६० ॥ हे भूसुर ! यदि कोई अकार्य करनेमें समर्थ हो तो जरासंधके घेरे हुए राजा किस प्रकारसे जीवनको प्राप्त हो

सकते ॥ ६१ ॥ राजर्षि परीक्षित दानवोत्तम प्रह्लाद अजगरग्रसित भीम अर्जुनका भीष्मकी जय करना ॥ ६२ ॥ लाक्षागृहसे कुंतीका मृत्युके मुखसे निकालना अथवा शंबरका रुक्मिणीके पुत्रका हरण करना ॥ ६३ ॥ सीताका रावणके हाथमें पडना चित्राश्वका मृत्युपाशमें पडना तथा दशपुत्र होनेपरभी पिताका सुख न पाना ॥ ६४ ॥ इस प्रकार जो होनेवाले भाव हैं वह अवश्य होकर रहते हैं हे विप्र ! इसमें तुमको किसी प्रकारकी शंका करनी उचित नहीं है ॥ ६५ ॥ यदि हमको पुत्रकी प्राप्ति होनहार है तो उसको इन्द्र वरुण और कुबेर किसी प्रकार

परीक्षिदपि राजर्षिः प्रह्लादो दानवोत्तमः ॥ भीमोऽप्यजगरग्रस्तः पार्थो भीष्मं धनंजयः ॥ ६२ ॥ लाक्षागृहे तदा कुंती मृत्युवक्त्राद्विनिर्गता ॥ शंबरो व्याहरद्ब्रह्मन्रौक्मिणेयं महाबलम् ॥ ६३ ॥ पौलस्त्यकरगा सीता चित्राश्वो मृत्युपाशगः ॥ दशपुत्रपिता विप्रो नाप पुत्रसुखं च सः ॥ ६४ ॥ एवं ये भाविनो भावास्तानालक्ष्य कदाचन ॥ द्विजराज न ते शंका कार्या चेतसि पुत्रके ॥ ६५ ॥ यद्यस्माकं सुखावाप्तिर्भवित्री सुतसंभवा ॥ न सापकर्षुं शक्या वै सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥ ६६ ॥ न कार्यस्तत्र संत्रासः क्लेशो वापि कथंचन ॥ नित्यं धर्मे रमस्व त्वं मा शोके मानसं कृथाः ॥ ६७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवगौतम्याश्शोकापानोदनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ इति ताः शीतला वाचः समाकर्ण्य प्रियामुखात् ॥ नियमे मानसं बुद्ध्वा निनायानिमिषं हि तत् ॥ १ ॥

दूर नहीं कर सकते ॥ ६६ ॥ इसमें क्लेश और संताप किसी प्रकार करना उचित नहीं है तुम नित्य धर्ममें रमण करो किसी प्रकार तुम्हारे मनमें शोक होना उचित नहीं है ॥ ६७ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवस्य शोककरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ वाल्मीकिजी बोले ॥ इस प्रकार स्त्रीके मुखसे वह शीतल वचन सुन मनमें शोकके अधिक होनेके कारण भाग्यको प्रबल मानता हुआ ॥ १ ॥

अनेक निश्वासोंको त्यागता हुआ बहुतकालतक शंकित रहकर क्या होनहार है इस प्रकार वह ब्राह्मण मनमें विचार करने लगा ॥ २ ॥ एक समय समिधाकुश फलके भोजनोंके निमित्त वनको गया. सुदेव शान्तचित्त कृष्णके चरणोंका सेवी था ॥ ३ ॥ उसी समय इसका कान्तिमान् पुत्र अपनी समान अवस्थाके बालकोंके साथ जलमें प्रवेश कर क्रीडा करने लगा ॥ ४ ॥ पिचकारियें छोडते हुए बालकोंके साथ प्रत्येक कमलके निकट विचरने लगा जैसे विषयोंमें मन विचरता है ॥ ५ ॥ यह चतुरताके गुणवाले बालकोंके साथ रमण करने लगा पानीके ऊपर एक दूसरे-

निःश्वासान्बहुलान्मुक्त्वा सुशंकितमनाश्चिरम् ॥ किं मे भावीति मनसाचिंततासौ द्विजेश्वरः ॥ २ ॥ समित्कुशफलाहारः कदाचित्काननं ययौ ॥ सुदेवः शांतकरणः कृष्णपादांबुजाश्रयः ॥ ३ ॥ तदास्य तनयः श्रीमाञ्जलवापीं मनोरमाम् ॥ आविश्य क्रीडयामास वयस्यैरावृतः शुचौ ॥ ४ ॥ वारियंत्रैः क्षिपन्वारि पद्मगंधाधिवासितम् ॥ पद्मेपद्मे च विहरन्विषयेषु मनो यथा ॥ ५ ॥ चातुर्यगुणसंयुक्तो बालाकान्रमयत्यसौ ॥ आरुह्यारुह्य पानीये निपतन्पातयन्स्वकान् ॥ ६ ॥ जलक्रीडासु चतुरो वयस्यैरावृतः सुधीः ॥ एवं द्विजातितनये रमणासक्तमानसे ॥ ७ ॥ तत्र कश्चिन्महाग्राहो विधिना नोदितो बलात् ॥ पद्भ्यामाकृष्य तं बालं भीतमंतर्जलं गतः ॥ ८ ॥ समानवयसः सर्वे हाहाकृत्वा प्रधाविताः ॥ गौतम्यै वेदयांचक्रुर्बहुशोकपरायणाः ॥ ९ ॥ मातस्ते तनयः क्रीडन्नस्माभिः सहितः सुहृत् ॥ जले जलचरग्रस्तः परासुर्न विलोक्यते ॥ १० ॥

को डालने लगे ॥ ६ ॥ इस प्रकार वह बालक जलक्रीडामें चतुर बालकोंसे आवृत हुआ बालकोंसे संग क्रीडामें आसक्त था ॥ ७ ॥ उस समय कोई महाग्राह बडा बलपूर्वक शब्द करता हुआ उस बालकको चरणोंसे पकडकर जलके भीतर चला गया ॥ ८ ॥ तब समान अवस्थावाले सम्पूर्ण बालक हाहा करके धावमान हुए और महाशोकसे व्याकुल हो गौतमीसे यह वचन कहते भये ॥ ९ ॥ हे मातः! तुम्हारा पुत्र

क्रीडा करताथा परन्तु किसी जलचरने उसको ग्रहण करलिया अब वह दिखाई नहीं देता ॥ १० ॥ हे राजन् ! जिस समय दयासे युक्त वे कुमार इस प्रकारके वचन दयायुक्त होकर कह रहे थे उसी समय सुदेव समिधा लेकर वनसे आया ॥ ११ ॥ उन बालकोंके वह दोनों स्त्रीपुरुष वज्रपातकी समान वचन सुनकर उस बालककी क्रीडा करनेवाली बावडीके निकट गये ॥ १२ ॥ उसमें उसको न देखकर वह बडा शब्द कर रुदन करने लगे तब चलकर उन दोनों मिलकर उस स्थानमें जाकर ॥ १३ ॥ उस पुत्रको मृतक देख छिन्न पंखवाले पक्षीकी समान शिथिल हो छिन्नमूलवाले

किशोरेषु वदत्स्वेवं दयायुक्तेषु भूपते ॥ आजगाम वनाद्विप्रः सुदेवः समिदाहरः ॥ ११ ॥ वज्रपातोपमं वाक्यमाकर्ण्य द्विजदंपती ॥ जग्मतुर्यत्र सा वापी तनूजक्रीडनालया ॥ १२ ॥ तौ तत्र तमपश्यंतौ चक्रतू रुदनं बहु ॥ तावत्पुरालयैस्ताभ्यां धृतः पुत्रो निवेदितः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा पुत्रं परासुं स्वं छिन्नपक्षौ यथा द्विजौ ॥ पेततुः शिथिलांगौ तौ छिन्नमूलाविव द्रुमौ ॥ १४ ॥ परमां ग्लानिमापन्नौ बुबुधाते न जीवितम् ॥ चिरात्कथंचिदालभ्य संज्ञां पुत्रानुरागिणौ ॥ १५ ॥ आकृष्य सुतदेहं तावालिंग्य च पुनः पुनः ॥ अंके पुत्रं निधायादौ चुचुंबतुरधोमुखौ ॥ १६ ॥ धैर्यमुत्सृज्य मंदौ तौ रुदंतौ च पुनः पुनः ॥ वद पुत्र शुभां वाणीमस्मत्कर्णसुखप्रदाम् ॥ १७ ॥ न विहातुं भवानर्हः स्थविरौ पितरौ तव ॥ एतादृशानि वाक्यानि ऊचतुर्दुःखितौ भृशम् ॥ १८ ॥

वृक्षकी समान गिर पडे ॥ १४ ॥ और परमग्लानिको प्राप्त हो उन्होंने अपने जीवनकोभी न जाना. बहुत कालमें उन पुत्रके अनुराग करनेवालोंको संज्ञा प्राप्त हुई ॥ १५ ॥ पुत्रके देहको खैंच वारंवार आलिंगन करके उस बालकको गोदीमें धर वारंवार उसका मुख चूमने लगे ॥ १६ ॥ और धैर्य त्यागन कर वारंवार रुदन करने लगे कि हे पुत्र ! आप हमारे कानोंको सुख देनेवाली वाणी कहिये ॥ १७ ॥ तू अपने बूढे मातापिताको

छोडनेके योग्य नहीं है इस प्रकारके वचन वे दोनों दुःखी होकर कहनेलगे ॥ १८ ॥ हे शिशो ! यदि मैंने कोई तेरा विकृत किया हो तौ क्षमा कर मूत्रादि ऊपर करनेपरभी तेरी सेवा कीथी सो किस कारण हमको त्यागकर तुम वहां चलेगये ॥ १९ ॥ तुम्हारे मनोहर वचनोंसे हमारा हृदय अमृतकी समान सींचाजाताथा सो आज हमारे मनोरथरूप चमेलीकी बेल शोकरूपी दवाग्निसे जलाई गई है ॥ २० ॥ कुररी समान वह चिरकाल पर्यन्त इस प्रकार रुदन करते रहे, हे पुत्र हे तोते ! किस प्रकारकी तुम्हारी दशा होगई तुम कैसे यहां आये थे ॥ २१ ॥ हे पुत्र! यह तुम्हारा कोमल

अयि शिशो मयि ते विकृतं तव परिचितं यदमुत्र विनिर्गतः ॥ सुविधुरं करणं गलिताशिषः प्रविलपंतमिहैव विहाय माम् ॥ १९ ॥ तव कलाक्षरवाक्यसुधाघने विरमिते हृदयंगमवर्णिनि ॥ विपुलशोकदलानलसंहृता मम मनोरथ-माधविकाततिः ॥ २० ॥ सुत शुकेति शुकेति विलापितं कुररियूथमिव स्वजनं चिरम् ॥ किमवलंब्य विधे विषये शिशुं परमितो नयता सकलं हृतम् ॥ २१ ॥ अयि शिशो सुकुमारतनो कथं कुटिलतीव्रधनंजयदीप्तयः ॥ कलपिना-किरणैररुणप्रभो अरुणतामगमद्वदनं तव ॥ २२ ॥ अयि विधे मयि तेऽर्थमतिः कृता बत कुमारवधे नु विमुंचता ॥ किमिति निर्दयमान नयनस्यहो कमपराधमहं कृतवांस्त्वयि ॥ २३ ॥ तव मनोहरवक्त्रसमुद्गताकलपदालपितानि पुनः पुनः ॥ अतिसुखानि दहंति हृदंतरं जवयजानि यथा सुतमागमान् ॥ २४ ॥

शरीर किस प्रकारसे अग्निकी लपटको सहन करेगा मैं विलाप करताहूं हे पुत्र ! तुम्हारे मुखसे अभीतक अरुणता नहीं गई है ॥ २२ ॥ हे विधाता ! इस कुमारके वध करनेसे तुमने बडी निष्ठुरता दिखाई है इसको पुनर्जीव देकर हमारी और कृपादृष्टि करो अथवा मानियोंको बडी निष्ठुरता होती है मैंने तुम्हारा क्या अपराध कियाथा ॥ २३ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे मुखसे जो वारंवार मनोहर तोतले शब्द निकलतेथे वह हमारे मनको बडा आनंद

देतेथे अब वह स्मरण कर हमारा हृदय दग्ध हुआ जाता है ॥ २४ ॥ जब घर जाकर तुम्हारे बिना मैं अग्निशालाको देखूंगा हे पुत्र ! तब मुझसे वहां स्थित न रहा जायगा मैं किस प्रकार स्थित रहूंगा ॥ २५ ॥ न मैंने कोई गुप्त पाप किया है न ब्रह्महत्या की है न स्त्रीहत्या न गर्भहत्या की है यह पापका फल है ॥ २६ ॥ हे विधाता ! मुझ दीनके ऊपर कृपा करो मैं प्रार्थना करताहूं शुकदेवके आश्रित मार्गकी मुझे शीघ्र प्राप्ति कराओ ॥ २७ ॥ हे विधाता ! इस कार्यको करके तुमने क्या फल पाया है जो मुझ दीन दुःखीके दोनों नेत्र निकाललिये ॥ २८ ॥ मुझ निर्धनका धन और अन्धेका नयन

द्रक्ष्यामि गेहमागत्य वह्निशालामृते त्वया कथं भजामि सत्पुत्र कमरण्ये समाश्रये ॥ २५ ॥ न मया चरितं गुह्यं ब्रह्महत्यापि नो कृता ॥ स्त्रीहत्या भ्रूणहा नास्मि कस्येदं कर्मणः फलम् ॥ २६ ॥ अहो धातः किमेतावत्त्वया लब्धं महत्फलम् ॥ लोचनद्वंद्वमाकृष्टं दीनस्य मम दुःखिनः ॥ २७ ॥ धातस्तात कृपां देहि मयि दीने वदामि ते ॥ शुकदेवाश्रितं मार्गं मह्यं लंभय मा चिरम् ॥ २८ ॥ निर्धनस्य धनं ह्येतदंधस्य नयनं मम ॥ हृत्वा किं ते शुभं भावि विधे दारुणदारुण ॥२९॥ रवे विप्रसुतास्तुभ्यं भवंति च यतः प्रियाः ॥ कथं न त्रायते त्रासाज्जगद्वंद्ये द्विजाप्रिय ॥३०॥ कुतो गत्वा तु किं कृत्वा पृथिव्यंतमपि भ्रमन् ॥ द्रक्ष्ये तवाननं सूनो सुनसं चारुलोचम् ॥३१॥ पर्जन्याच्च्यवते वारि सूते धान्यं धरापि च ॥ रत्नं तिमिरदुर्गेषु मुक्तासारं पयोनिधौ ॥ ३२ ॥ फलानि द्रुमषंडेषु धातवोऽचलसानुषु ॥ न तं देशं प्रपश्यामि यत्र गत्वा मनोहरम् ॥ ३३ ॥

यही था सो तुमने मेरा ग्रहण कर लिया हे विधे ! मुझे दारुण दुःख देकर तुम्हे क्या शुभ होगा ॥ २९ ॥ हे सूर्यदेव ! स्वभावसेही तुमको ब्राह्मणपुत्र प्रिय होते हैं हे जगद्वंद्य द्विजप्रिय ! सो दुःखसे उनकी रक्षा क्यों नहीं करते ॥ ३० ॥ कहां जाऊं पृथ्वीमें कहां भ्रमण करूं मैं अपने सुनेत्र पुत्रको कहां देखूं मेघ जल वर्षाते पृथ्वी धान्य उत्पन्न करती है अन्धकार गहनतममें रत्न और सागरमें मोती होते हैं ॥ ३२ ॥ वृक्षखण्डोंमें फल पर्वतोंमें धातु

होती है परन्तु उस देशको नहीं देखताहूं जहां जाकर मनोहर ॥ ३३ ॥ पुत्रके शरीरको आलिंगन कर हृदयके दाहको मिटाऊं बारबार आलिंगन कर अपने आसूँ पोंछूं ॥ ३४ ॥ हे पुत्र ! कोई वचन हमको सुनाकर हमारे ऊपर दया करो क्या वृद्ध मातापिताकोभी देखकर तुमको दया नहीं आती ॥ ३५ ॥ हे वीर ! मुझसे विना कहे तुम कहीं नहीं जातेथे हे पुत्र ! अब मेरे पूछे विना कैसे दीर्घ मार्गको चले गये ॥ ३६ ॥ हे पुत्र ! रात्रिमें

पुत्रगात्रं समालिंग्य हृद्गतं दाहमुत्सृजे ॥ भूयोभूयः समाश्लिष्य प्रकरोम्यश्रुमार्जनम् ॥ ३४ ॥ सुत कामपि वाचं मे श्रावयाशु दयां कुरु ॥ जरठं पितरं दीनं वीक्ष्य नायाति ते दया ॥ ३५ ॥ अननुज्ञाप्य मां वीर न कदापि गतो भवान् ॥ मामपृष्ट्वा कथ दीर्घं मार्गं यातोऽसि पुत्रक ॥ ३६ ॥ निशायां पठनार्थाय बोधयिष्यामि कं सुत ॥ स शुको परप्रातं त्वामृते वद्धभात्मजः ॥ ३७ ॥ हरितः सावकाशा मे सर्वाः शून्यास्त्वया विना ॥ कुतोऽपि ताततातेति शुभां वाचं शृणोम्यहम् ॥ ३८ ॥ अरे प्रमादिताः प्राणाः कुतः स्वस्थाः कलेवरे ॥ कथं सुखाशयारूढाः कुतो न प्रचलंत्युत ॥ ३९ ॥ श्रुत्यानुसारिणीं वाचं कस्य श्रोष्यामि पुत्रक ॥ गेहमद्य समासाद्य धिङ्मां दुर्जीविनं खलम् ॥ ४० ॥

पढनेको अब मैं किसको जगाऊं हे पुत्र ! तुम्हारे विना यह तोता प्रातःकालमें शब्द करताहुआ तुम्हारे विना शोभित नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे पुत्र ! तुम्हारे विना सब दिशा मुझे शून्य लगतीहैं हे पिता ! हे तात ! अब मैं ऐसे शब्दोंको कहां सुनूं ॥ ३८ ॥ अरे प्राणो ! क्या प्रमाद करते हो क्यों कलेवरमें पडे हो अब कौनसे सुखकी कथा तुमको प्राप्त होगी अब तुम क्यों नहीं निकलते हो ॥ ३९ ॥ हे पुत्र ! अब मैं शास्त्रानुसारिणी किसकी वाणी श्रवण करूंगा आज घरमें प्राप्त होकर मेरा जीवन धिक्कार है ॥ ४० ॥

त्वामनुस्मरतो वीरं कलवाक्यं मनोहरम् ॥ शतधा दीर्यते नाद्य हृदयं त्वायसं मम ॥ ४१ ॥ बहुमानस्य संकल्पवल्ली प्रज्वलिताऽधुना ॥ अत्यंतपापिनो मेऽद्य पुनरुद्भवते कथम् ॥४२॥ मन्ये सुधन्यं किल कोशलेशं यः काननं दाशरथौ प्रयाते ॥ दधार नोऽसूंस्तनयाधिदग्धो धिङ्मां तनूजप्रलयेऽप्यनष्टम् ॥ ४३ ॥ धन्यो धनेशावरजस्तनूजमाकर्ण्य कीर्णं रघुवीरबालात् ॥ पुत्राधितप्तः प्रविवेश रामवह्निं तु धिङ्मामलयं सुतार्तम् ॥ ४४ ॥ गोविंद विष्णो रघुनंदनेश सीतापते दाशरथे मुरारे ॥ दीनानुकंपिन्भगवन्दयालो मां त्राहि मग्नं सुतशोकवार्धौ ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्ण नारायण वासुदेव गोविंद विष्णो भगवन्मुरारे ॥ श्रीयादवेशाऽखिललोकनाथ मां त्राहि० ॥ ४६ ॥ हरे विभो कंसनिषूदनाघमर्दिन्बकारे मधुकैटभारे ॥ घोराहिमूर्द्धांगणखेलनाद्य मां त्राहि० ॥ ४७ ॥

हे वीर ! मैं तेरे मनोहर वाक्योंको स्मरण करता हुआभी मेरे हृदयके सौ टुकडे नहीं होते ॥ ४१ ॥ आज हमारे बडे मानकी संकल्पित वल्ली (बेल) जल गई अब हमारा तप भी अधिक नहीं है इससे फिर वह किस प्रकार उत्पन्न होसक्ती है ॥ ४२ ॥ मैं दशरथकोही इस विषयमें धन्य मानताहूं जो दशरथ कुमारोंके वनमें प्रवेश करनेपर अपने शरीरको त्यागते भये और मेरा पुत्र नष्ट होगया तथापि मैं जीवन धारण करताहूं मुझे धिकार है ॥ ४३ ॥ कुबेरके छोटे भ्राताहीको धन्य है जो पुत्रकी विपत्तिको सुनकर रामरूपी अग्निमें प्रविष्ट हुआ पुत्रकी व्याधिसे तप्त हुए मुझको धिकार है ॥ ४४ ॥ हे गोविन्द ! हे विष्णो ! हे मुरारे ! हे रघुनन्दन ! हे सीतापते ! दीनोंके ऊपर दया करनेवाले भगवान् दयालु मुझे पुत्रशोकसे पार कीजिये मैं शोकसागरमें पडाहूं इससे मेरा उद्धार करो ॥ ४५ ॥ हे श्रीकृष्ण नारायण वासुदेव गोविन्द विष्णु भगवान् मुरारी श्रीयादवेश सम्पूर्ण लोकके नाथ ! पुत्रके शोकसागरसे मेरी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे हरि हे विभो हे कंसनिषूदन हे अघासुरके मारनेवाले हे बकासुरमर्दन करनेवाले हे मधुकैट-

भारी ! घोर सर्प मुझको ग्रास किये लेता है इस सुतशोकसे मेरी रक्षा करो ॥ ४७ ॥ हे देवाधिदेव ! सम्पूर्ण लोकनाथ गोपाल बालरक्षक अग्निपान करता कलिन्दकन्यासे रमण करनेवाले पुत्रशोकसागरसे मेरी रक्षा करो ॥ ४८ ॥ हे वैकुंठ ! हे नरकासुरशत्रु ! चराचरके आधार रथांगपाणे काकुत्स्थवंशके अधिपति कोशलेन्द्र मुझे पुत्र शोकसागरसे बचाओ ॥ ४९ ॥ मेरी समान कोई मूढ नहीं होगा जो नारायणके वचनको उल्लंघन कर पुत्रकीही दुराशा की प्रारब्धमें न होनेवाली वस्तुको कौन प्राप्त हो सकता है ॥ ५० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवस्य पुत्र-

देवाधिदेवाखिललोकनाथ गोपालबालोग्रनिपीतवह्ने ॥ कलिंदकन्यारमणैकबंधो मां त्राहि० ॥ ४८ ॥ वैकुंठ विष्णो नरकासुरारे चराचराधार रथांगपाणे ॥ काकुत्स्थवंशाधिपकोशलेंद्र मां त्राहि० ॥ ४९ ॥ मूढो मदन्यो भवते न कोऽपि यो देवकीसूनुवचो विलंघ्य ॥ पुत्रे दुराशां कृतवान्सुरेश लभेत को दिष्टविनष्टवस्तु ॥ ५० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवस्य पुत्रविलापो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ एवं विलपतस्तस्य बहुशोकयुतस्य च ॥ अकालजलदोऽभ्यागाद्गर्जन्नाच्छादयन्दिशम् ॥ १ ॥ ववर्षाविरतं वारि नूनं स्फुरितविद्युतः ॥ अत्यासारातिवाताभ्यां तर्जयन्निव मानवान् ॥ २ ॥ गंभीरतमसा लुप्तादिग्विवेकाविकल्पकः ॥ ववर्ष मासमात्रं च सांवर्तक इवापरः ॥ ३ ॥

विलापो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ इस प्रकार महाशोकसे उस ब्राह्मणके विलाप करनेपर अकाल मेघ गर्जनासे दशों दिशाओंको आच्छादन करता प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ और बिजली चमकने लगी जल वर्षने लगा और दिशाओंको आच्छादन कर मनुष्योंको तर्जन करती पवन चलने लगी ॥ २ ॥ गंभीर अंधकारसे दिशाओंका ज्ञान किसीको न रहा एक महीनेतक प्रलयकी समान वर्षा होती रही ॥ ३ ॥

परन्तु पुत्रशोकके कारण ब्राह्मणने कुछभी न जाना और पुत्रको गोदीमें लिये कुररेके समान विलाप करनेलगा ॥ ४ ॥ उसने कुछभी जलकी वर्षाको न जाना और उसके सिवाय और कुछभी न कहता हुआ न अपने आसनसे चलायमान हुआ न उसको शांति हुई ॥ ५ ॥ उसको अज्ञात पुरुषोत्तम मास बीतगया और वह नारायणके नाम उच्चारण करनेसे तपोरूप होगया जिसके कारण महामना कमललोचन विष्णु भगवान् प्रगट हुए ॥ ६ ॥ जगन्नाथके प्रगट होतेही अनेक पापराशी दूर हो गईं जब उन्होंने लक्ष्मीपति लक्ष्मणके बडे भ्राताको देखा ॥ ७ ॥ तब ब्राह्मणने

नासौ विज्ञातवान्किंचित्पुत्रशोकनियंत्रितः ॥ तथैव सुतमादाय रुरोद कुररो यथा ॥ ४ ॥ न पयो बुबुधे चैव जल्पन्नान्यन्न किंचन ॥ न चचाल न सुष्वाप नोपलेभे सुखं स्थितः ॥ ५ ॥ तदज्ञाततपो जातं पुरुषोत्तममासतः ॥ विष्णुः कमलपत्राक्षः प्रादुरासीन्महामनाः ॥ ६ ॥ प्रादुर्भूते जगन्नाथे विलीनाः पापराशयः ॥ ददर्श कमलाकांतं भूपणं लक्ष्मणाग्रजम् ॥ ७ ॥ द्विजस्तुष्टमनाः पुत्रदेहं भूमौ निधाय च ॥ सपत्नीको नमश्चक्रे दंडवज्जानकीपतिम् ॥ ८ ॥ कोटिचंद्रसमाह्लादं कोटिसूर्यातिभासुरम् ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजं सुपर्णोपरि राजितम् ॥ ९ ॥ तं हरिं सायुधं दृष्ट्वा विस्मितोऽभूद्विजोत्तमः ॥ भगवानपि विश्वात्मा तुष्टस्तत्कर्मरंजितः ॥ १० ॥ उवाच प्रश्रितां वाणीं पीयूषस्राविणीं मुदा ॥ द्विजसाधनसंभूतपुण्यर्द्धिबहुयंत्रितः ॥ ११ ॥

पुत्रका देह पृथ्वीमें रखकर पत्नीसहित जानकीपतिको प्रणाम किया ॥ ८ ॥ कोटिचन्द्रकी समान आह्लाद देनेवाले करोड सूर्यके समान प्रकाशमान प्रसन्न कमलसा मुख गरुडके ऊपर विराजमान ॥ ९ ॥ आयुध लिये नारायणको देख ब्राह्मण विस्मित होगया और विश्वात्मा भगवान्भी उसके कर्मसे प्रसन्न हुए ॥ १० ॥ और अमृतकी समान सुन्दर वाणी बोले कारण कि, ब्राह्मणके साधनसे वह महाप्रसन्न होगये थे ॥ ११ ॥

भगवान् बोले हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस समय तू बडा पुण्यवान् है तेरे भाग्यका प्रमाण मैंभी नहीं करसकता हूं ॥ १२ ॥ हे ब्राह्मण ! तुम श्रवण करो बारह सहस्र वर्षतक यह तुम्हारा सुख देनेवाला पुत्र इन्द्रके ऐश्वर्यकी समान सुख देनेवाला होगा ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! इस प्रकारके सुखकी प्राप्ति तुम करोगे देव मनुष्य नाग यक्ष किन्नर ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रके ऐश्वर्यको कोईभी प्राप्त न होगा तुम्हारे पुत्रका ऐश्वर्य देखकर उसकी स्पृहा करेंगे और तुम्हारे पुत्रका विलास देखकर वे स्वयं पुत्रकी उत्कंठा करेंगे ॥ १५ ॥ जिस प्रकार सुखदायक पुत्र दूसरोंने तपसे प्राप्त

श्रीविष्णुरुवाच ॥ भो भो द्विजवर श्रीमन्पुण्यवानासि सांप्रतम् ॥ त्वद्भाग्यमानं कर्तुं नो मयाप्यन्यैर्न शक्यते ॥ १२ ॥ शृणु धात्रीसुरेशान यत्ते भावि ब्रवीमि ते ॥ वर्षद्वादशसाहस्रं पुत्रोऽयं ते सुखप्रदः ॥ १३ ॥ तादृशं पुत्रसौख्यं त्वं प्राप्स्यासि द्विजसत्तम ॥ देवमानवनागाश्च ऋषयो यक्षकिन्नराः ॥ १४ ॥ त्वत्तनूजसुखं वीक्ष्य सस्पृहास्त्वत्प्रशंसकाः ॥ त्वामेव बहु मन्यंते भविष्यंति सुतोत्सुकाः ॥ १५ ॥ यथान्ये तपसा लब्धाः पुत्रा हि सुखदायकाः ॥ भवंति न तथा विप्र मया दत्तः सुतस्तव ॥ १६ ॥ पुरा मुनीश्वरः कश्चिद्धनुषाख्यो महामनाः ॥ मृतियुक्तान्सुताँल्लोके पश्यन्दीनमनाभवत् ॥ १७ ॥ स तपस्वतवान्नद्याः पुलिने त्वन्नवर्जितम् ॥ तपंतं बहुकालंतमीयुः सेंद्राः सुरावदन् ॥ १८ ॥ वरेणच्छन्दयामासुरमरं वृतवान्सुतम् ॥ तमूचुर्निर्जरा नैवममरः कोऽपि भूतले ॥ १९ ॥

किये हैं हे द्विज ! इस प्रकार तुम्हारा पुत्र न होगा ॥ १६ ॥ पहले एक मुनीश्वर धनुष नामक महात्मा थे वह अपने पुत्रको मृत्युयुक्त देखकर बडे दीनमन हो गये ॥ १७ ॥ तब वह निर्धनतायुक्त पुत्र होनेके निमित्त तप करने लगे बहुत कालपर्यन्त उनको तप करते देखकर इन्द्रादि देवता कहने लगे ॥ १८ ॥ और वरदान देनेके निमत्त उसको वरण किया तब उसने कहा मैं ऐसे पुत्रकी इच्छा करता हूं जो अमर हो देवताओंने

कहा पृथ्वीमें कोई अमर नहीं हो सकता ॥ १९ ॥ तब ब्राह्मणने देवताओंसे कहा तो किसी निमित्तताके युक्त आयु दीजिये देवता बोले क्या निमित्त किया जाय सो आप कहिये ब्राह्मणने निमित्तका वर्णन किया ॥ २० ॥ समयपर उस धनुष नामकने आनन्द देनेवाले पुत्रको प्राप्त किया और उसका आनन्द पुत्रके साथ बढने लगा ॥ २१ ॥ उस पुत्रको उस महात्माने सम्पूर्ण विद्या पढाई तब अपने पुत्रको विद्यायुक्त देखकर मुनीश्वर कहने लगे ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! विद्यासे मुनीश्वरोंको जय करता हुआ विचरण कर यह वचन सुन वह मुनि सम्पूर्ण ब्राह्मणोंको उद्वेजित करता हुआ विचर-

पुनराह द्विजो देवान्निमित्तायुर्भवेत्सुतः ॥ सुराः प्रोचुर्निमित्तं किं वद सोऽप्यवदद्द्विजः ॥२०॥ धनुषाख्यः सुतं लेभे काले-नाल्पेन मानद ॥ स पुत्रो ववृधे तस्य साकं हर्षेण मानदः ॥ २१ ॥ तत्पुत्रं पाठयामास सर्वां विद्यां महामनाः ॥ स्वपुत्रं विद्यया युक्तं दृष्ट्वोवाच मुनीश्वरः ॥ २२ ॥ चर पुत्र मुनीन्सर्वान्विद्यया विजयन्सदा ॥ तथेत्युक्त्वा चचारासौ मुनि-मंडलमुद्विजन् ॥ २३ ॥ वरदानकृतोत्साहो ब्राह्मणानवमन्यत ॥ कदाचिन्महिषो नाम ऋषिः परमकोपनः ॥ २४ ॥ शशाप मुनिपुत्रं तमद्यैव मरणं व्रज ॥ चेतसा चिंतयामास निमित्तायुरयं भवेत् ॥२५॥ इति चिंतयता तेन निःश्वासा-त्प्रकटीकृताः ॥ महिषाः कोटिशो विप्र तैर्गिरिः शकलीकृतः ॥२६॥ ममार मुनिपुत्रोऽपि धनुष्याख्योऽतिदुःखितः ॥ विलप्य बहुकालं स गृह्य पुत्रकलेवरम् ॥ २७ ॥

नेलगा ॥ २३ ॥ और वरदानके उत्साहके कारण ब्राह्मणोंका तिरस्कार करनेलगा किसी महिष नामके परम कोपवान् ऋषिने ॥ २४ ॥ उसको शाप दिया कि तू अभी मृत्युको प्राप्त हो परन्तु फिर चित्तसे विचारने लगा कि यह तो निमित्तायु है ॥ २५ ॥ यह विचारकर उन ऋषिराजने अपने श्वाससे अनन्त महिष प्रगट किये उन्होंने वह पर्वत खण्ड २ करदिया ॥ २६ ॥ उसके फटनेसे महादुःखी हो मुनिपुत्रभी मृत्युको प्राप्त

हुआ तब बहुत कालतक विलाप कर पुत्रके कलेवरको ले ॥ २७ ॥ उसका पिता बडा दुःखी हो अग्निमें प्रविष्ट हुआ इस प्रकार नीतिसे सुख देनेवाले बलसे प्राप्त पुत्र नहीं होते हैं ॥ २८ ॥ और यह पुत्र तुझको मेरे वाहन गरुडजीने दिया है यह तुमको इस जन्ममें दुर्लभ पुत्र सुखको देगा ॥ २९ ॥ और मृत्युको प्राप्त होकर तू ब्रह्मलोकमें अनेक सुखको प्राप्त होकर निवास करेगा फिर बहुत कालतक पृथ्वीमें चक्रवर्ती होकर रहैगा ॥ ३० ॥ उस समय तुम महापुण्यको प्राप्त हो पृथ्वीमें अनेक भोगोंको भोगोगे तीस सहस्र संवत्सर पर्यन्त राज्य करेगा ॥ ३१ ॥ चार पुत्र और एक पुत्री तुम्हारे

प्रविवेश पिता वह्निं सुतदुखाऽतिपीडितः ॥ एवं बलात्पुत्रा ये भवेयुर्नातिसौख्यदाः ॥२८॥ अयं तु तनयस्तुभ्यं सुपर्णो मम वाहनम् ॥ इह जन्मनि ते दत्त्वा पुत्रसौख्यातिदुर्लभम् ॥ २९ ॥ मृतस्त्वं ब्रह्मणो लोके वसिष्यसि सुखैर्युतः ॥ बहुकालं ततोऽवन्यां चक्रवर्ती भविष्यसि ॥३०॥ तदापि त्वं महापुण्यैः क्षितौ ख्यातो भविष्यसि ॥ संवत्सराणां नियुतत्रयं राज्यं करिष्यसि ॥ ३१ ॥ चत्वारस्तनया भाव्यास्तत्र पुत्री च तेऽपरा ॥ भार्या चात्यंतसुभगा इयमेव भविष्यति ॥ ३२ ॥ भुक्त्वा भोगान्सुदुष्प्रापान्सुरैरप्यमराधिपैः ॥ अयमेव तदा पुत्रस्त्वन्निस्तारनिमित्तभूः ॥ ३३ ॥ भविष्यति शुको भूत्वा वाक्यमेकं वदिष्यति ॥ श्रुत्वा वाक्यं शुकप्रोक्तं निर्विण्णस्त्वं गृहाश्रितः ॥ ३४ ॥ दुर्मनाश्चिन्त्यमानस्तु वाल्मीकिं मुनिमाप्स्यसि ॥ तेन निर्भिन्नसंदेहजालः सद्योविमुक्तिमान् ॥ ३५ ॥

होगी और यही अत्यन्त सौभाग्यवती भार्या तेरे होगी ॥ ३२ ॥ देवताओंकोभी दुष्प्राप भोगोंको भोगकर यही पुत्र तुम्हारे निस्तार करनेका निमित्त होगा ॥ ३३ ॥ अर्थात् तोतेका रूप धारण कर एक वचन बोलेगा शुकके वचन सुनकर तू घरसे विरक्त हो जायगा ॥ ३४ ॥ तब दुर्मनायमान हो चिन्ता करता हुआ वाल्मीकि ऋषिको प्राप्त होगा उससे सन्देहरहित हो शीघ्र सब दुःखजाल दूर होजायँगे ॥ ३५ ॥

हे ब्राह्मण ! मेरे चरणसेवनसे उत्तम कालके अंगको प्राप्त होकर स्त्रीसहित तू मेरे उत्तम स्थानको प्राप्त होगा ॥ ३६ ॥ जिस पदको जाकर कभी फिर निवृत्ति नहीं होती शान्त संन्यासी जिसकी सदा उत्कंठा करते रहते हैं इस प्रकार अमित तेजस्वी विष्णुभगवान्‌के कहनेसे ॥ ३७ ॥ वह ब्राह्मण पुत्र पिताका मन प्रसन्न करता हुआ उठ बैठा सब देवता प्रसन्न हो वारंवार फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ३८ ॥ सब दिशा प्रसन्न और सब जन्तु परम आनन्दित हुए और शुकदेवनेभी अपने माता पिता तथा हरिको प्रणाम किया ॥ ३९ ॥ उस ब्राह्मणके पुत्रको देख गरुडजी महा-

कालोत्तमांगमाकृष्य पदा सव्येन भूसुर ॥ मदीयमुत्तमं स्थानं सपत्नीकः समेष्यसि ॥ ३६ ॥ यद्गत्वा न निवर्तंते शांताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ एवं प्रवदतस्तस्य विष्णोरमिततेजसः ॥३७॥ द्विजात्मजः समुत्तस्थौ पित्रोरानंदयन्मनः ॥ सुराः सर्वे च संतुष्टाः कुसुमैर्ववृषुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ सुप्रसन्ना दिशो जाताः सानंदाः सर्वजंतवः ॥ ननाम शुकदेवोऽपि पितरं मातरं हरिम् ॥ ३९ ॥ सुपर्णोऽप्यऽतिसंहृष्टः ससुतं वीक्ष्य भूसुरम् ॥ दंपती अतिसंहृष्टौ परिपस्वजतुर्मुदा ॥ ४० ॥ द्विजोऽभूच्चकितस्तूर्णमतिविस्मितमानसः ॥ प्रोवाच भुवनेशानं केन तुष्टोऽसि मे विभो ॥ ४१ ॥ चतुर्वत्सरसाहस्रं तपस्तप्तं पुरा मया ॥ न ददौ किं सुतं मह्यं भाग्यहीनास्त्विति ब्रुवन् ॥ ४२ ॥ अधुना केन मे भाग्यमुद्भूतं जगदीश्वर ॥ येन नष्टं सुतं भोगानन्यजन्मनि दुर्लभान् ॥ ४३ ॥

सन्तुष्ट हुए और वे दोनों स्त्री पुरुष महा प्रसन्न हो पुत्रको हृदयसे लगाते हुए ॥ ४० ॥ और ब्राह्मणभी विस्मयको प्राप्त हो बडा चकित हुआ और नारायणसे बोला ॥ हे प्रभो ! आप क्यों मेरे ऊपर प्रसन्न हुए इसका कारण कहो ॥ ४१ ॥ पहिले मैंने चार सहस्र वर्षतक तप किया उस समय भी आपने भाग्यहीनताके कारण मुझको पुत्र न दिया ॥ ४२ ॥ हे जगदीश्वर ! अब किस पुण्यके प्रतापसे मैं भाग्यवान् होगया हूं सो आप कहिये

जिससे नष्ट पुत्रकी प्राप्ति हुई और अन्य जन्ममेंभी दुर्लभ भोग भोगूंगा ॥ ४३ ॥ और अन्तमें देवदुर्लभ मुक्ति मिलेगी हे महाराज ! सो आप कहिये इसमें मुझे महा संदेह है ॥ ४४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवस्य पुत्रजीवनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ विष्णुभगवान् बोले ॥ हे द्विजराज ! जो तुमने किया है वैसा कोई नहीं करेगा जिसने कि, देवताओंको दुरासद मेरा स्थान जीतलिया है ॥ १ ॥ तथा वह लोकभी जीतलिया इसमे मैं तेरे ऊपर महा प्रसन्न हूं जिससे मैं प्रसन्न हुआ हूं इस वार्ताको तुम जानते नहीं हो ॥ २ ॥ यह मेरा प्रिय पुरुषोत्तम मास बीतता है काम

तदंते मोक्षमेवापि सुरैरपि सुदुर्लभम् ॥ तन्मे ब्रूहि महाराज संशयोऽत्र महान्मम ॥ ४४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये सुदेवस्य पुत्रजीवनं नाम षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ द्विजराज कृतं यत्ते नैतदन्यः करिष्यति ॥ जितं येन ममाप्युच्चैः पदं देवैर्दुरासदम् ॥ १ ॥ अय लोकोऽपि विजितस्तुष्टश्चाप्यहमद्भुतम् ॥ न तद्वेत्ति भवान्नूनं येनाहं तुष्टिमातवान् ॥ २ ॥ अयं मम प्रियो मासः प्रयातः पुरुषोत्तमः ॥ कामात्क्रोधाच्च विद्वेषाल्लोभाद्दंभाद्भयादपि ॥ ३ ॥ एकमप्युपवासं यः करोत्यस्मिन्द्विजोत्तम ॥ स्नानं वापि रजोमात्रं दानं वाचापि शोभनम् ॥ ४ ॥ सोऽनेकजन्माचरितकोटिपातकपंजरम् ॥ भित्त्वाप्नोति महत्स्थानं निर्मलं स्वेन कर्मणा ॥ ५ ॥ सुतशोकमिषेणाद्य त्वया तप्तं महत्तपः ॥ मासमात्रं निराहारस्त्वकालजलदोऽभ्यगात् ॥ ६ ॥ त्रिषु लोकेषु ते विद्वन्स्नानानि प्रतिवासरम् ॥ अभ्रावकाशं दुःष्प्रापमस्मिल्लब्धं त्वया तपः ॥ ७ ॥

क्रोध लोभ विद्वेष पाषण्ड भयसे ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण इसमें एकभी उपवास करता है वा स्नान अथवा रजमात्रभी जो दान देता है ॥ ४ ॥ वह अनेक जन्मके किये कोटि दुस्तर पापोंको दूर कर अपने निर्मल मेरे कर्मसे शाश्वत स्थानको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ तैंने पुत्रशोकके निमित्तसे बडा तप किया है अकाल मेघकी वर्षा सहकर एक महीने पर्यन्त निराहार रहा ॥ ६ ॥ हे ब्रह्मन् ! त्रिलोकीमें तू प्रतिदिन तप करके प्रतिदिन स्नान करता रहा

और अनाच्छादित स्थानमें स्थिति करनेसे तुझको महातपकी प्राप्ति हुई है ॥ ७ ॥ आसन जीते हुए निराहार जितालोक जितेंद्रिय शोकमेंभी मेरेही नामका जप बराबर करते रहे ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण ! जो कर्म तैंने अहंकाररहित होकर किया है ऐसा कौन कर सकता है हे द्विज ! तुम्हारे विना कोईभी पुरुष यह तप करनेको समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ यह लोक परलोक तथा इससे आगेकेभी लोक तैंने इस कृत्यसे जीत लिये अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ १० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस तेरे साधनकी महिमा मैं कहनेको समर्थ नहीं हूं दूसरा कैसे कह सकता है ॥ ११ ॥ सुदेवने कहा ॥

जितासनो जिताहारो जितालोको जितेंद्रियः ॥ मन्नामालापचतुरः शोकेनापि भवानभूत् ॥ ८ ॥ निरहंकारिणा विप्र यत्कृतं ते करोति कः ॥ नैतत्कर्तुं पुमाञ्छक्तस्त्वदन्यः पृथिवीसुर ॥ ९ ॥ अयं लोकः परो लोकः परात्परतरोऽपि ते ॥ जितस्त्वनेन कृत्येन किं पुनः परिपृच्छसि ॥ १० ॥ त्वदीयसाधनस्यास्य महिमानं द्विजोत्तम ॥ नाहं वक्तुं समर्थोऽस्मि कथमन्यः क्षमो भवेत् ॥ ११ ॥ सुदेव उवाच ॥ कोऽसौ मासस्त्वया विष्णो वर्ण्यते बहुविस्तरम् ॥ किमास्मिन्करणीयं स्यात्को विधिर्नियमश्च कः ॥ १२ ॥ किं प्रदेयं च को देवः सर्वं विष्णो वदस्व मे ॥ इष्टदेवोऽसि मे स्वामिन्भुक्तिमुक्तिप्रद प्रभो ॥ १३ ॥ नारायण उवाच ॥ मासाः सर्वे द्विजश्रेष्ठ सूर्यदेवस्य संक्रमाः ॥ अधिमासस्त्वसंक्रातिमासोऽसौ शरणंगतः ॥ १४ ॥

हे विष्णुजी ! वह क्या महीना है जिसका आपने बडा विस्तार वर्णन किया है क्या इसमें कर्तव्य है इसकी विधि और नियम क्या है ॥ १२ ॥ इसमें क्या देना चाहिये कौन इसका देवता है यह आप हमसे वर्णन कीजिये हे स्वामिन् ! भुक्ति मुक्ति देनेवाले आप मेरे इष्ट देवही हो ॥ १३ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! संपूर्ण महीने सूर्यदेवकी संक्रांतिके कारण होते हैं अधिमासमें संक्रांति नहीं होती यह इस कारण मेरी शरणमें प्राप्त हुआ ॥ १४ ॥

तबसे यह पुरुषोत्तम मास मुझे सबसे अधिक प्रिय है हे विप्र ! मैं सर्वथा इस पुरुषोत्तम मासके स्वामित्वमें कल्पित हुआ हूं ॥ १५ ॥ मेरा प्रिय होनेसेही इसकी पुरुषोत्तम संज्ञा हुई है और महीनोंमें इस प्रकारसे मैं प्रियता नहीं करता ॥ १६ ॥ और महीनोंमें जो कृत्य हैं उसके स्वामी सूर्यदेव हैं परन्तु पुरुषोत्तम मासमें जितने कृत्य हैं ॥ १७ ॥ उनका मैं प्रभु अच्छी प्रकारसे फलका देनेवाला हूं हे पापरहित ! जो इसमें कर्तव्य है सो सुन ॥ १८ ॥ जो फल भली प्रकार सौ वर्ष तप करनेसे प्राप्त होता है वह फल इस महीनेमें एक दिन व्रत करनेसे प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

मम प्रियतमोऽत्यंतं मासोऽयं पुरुषोत्तमः ॥ अस्याहं सततं विप्र स्वामित्वे पर्यवस्थितः ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तमता तस्मादस्य जाता मदात्मनः ॥ मासेष्वन्येषु मे स्वाम्यमीदृशं न कदाचन ॥ १६ ॥ सर्वमासेषु यत्कृत्यं तत्स्वामी कश्यपात्मजः ॥ पुरुषोत्तममासेषु यानि कृत्यानि मानद ॥ १७ ॥ तेषामहं प्रभुः सम्यक्फलदातास्मि सर्वदा ॥ शृणु विप्र फलं ह्यस्मिन्कर्त्तव्यस्य च मेऽनघ ॥ १८ ॥ सम्यक्चीर्णेन तपसा शतवर्षमितेन च ॥ यत्फलं लभते विप्र मासेऽस्मिन्नेकवासरात् ॥ १९ ॥ कोटिशो ब्राह्मणान्सम्यक्संभोज्य स्वर्णभाजने ॥ विविधैः शोभनै रत्नैर्यत्पुण्यमुपलभ्यते ॥ २० ॥ सावित्रीलक्ष्यजाप्येन लभ्यते यत्फलं नरैः ॥ सकृन्मंत्रजपेनैव मासेऽस्मिन्नुपलभ्यते ॥ २१ ॥ तत्पुण्यं लभ्यते मासि सकृद्ब्राह्मणतर्पणात् ॥ नालभ्यं दृश्यते किंचिन्मत्प्रिये पुरुषोत्तमे ॥ २२ ॥ द्वादशाक्षरमंत्रोऽयं यो जपेत्कृष्णसंनिधौ ॥ दशवारमपि ब्रह्मन्स कोटिफलमश्नुते ॥ २३ ॥

जो स्वर्ण पात्रोंमें करोडसौ ब्राह्मणोंके जिमानेका फल है जो पुण्य अनेक सुवर्ण और रत्न दानसे प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ तथा जो फल लाख गायत्रीके जपनेसे प्राप्त होताहै वह फल इस महीनेमें एकही बार मंत्रके जपनेसे प्राप्त होता है ॥ २१ ॥ अथवा इस महीनेमें एकही बार ब्राह्मणको तृप्त करनेसे वह पुण्य फल मिलताहै मेरे प्रिय पुरुषोत्तम मासमें जपादि करनेसे संसारमें कोई वस्तु अलभ्य नहीं रहती ॥ २२ ॥ जो नारायणके निकट द्वादशा-

क्षरका जप करताहै वा दशवारभी जप करताहै वह अनन्त फलको प्राप्त होताहै अर्थात् उसे एक करोड मंत्र जपनेका फल मिलता है ॥ २३ ॥ पुरुषोत्तम मासमें सुकृत करनेसे सात कुलतक पवित्र कर देताहै इसमें पंचाक्षरी महाविद्याको जो पांचवार भी जपताहै ॥ २४ ॥ वह सैकडों पाप दूर करके परम पदको प्राप्त होजाता है यदि आसक्त होकर फल मूलादिसे ब्राह्मणको तृप्त करै तो ॥ २५ ॥ उसको पुरुषोत्तम मासमें सैकडों ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल मिलताहै छः वा आठ वर्णमें कोई हो जो पुरुषोत्तम भगवान्‌का स्मरण करता है ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मण ! सौ वार स्मरण करनेसे

कृत्यं पुरुषोत्तमे यत्तु पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥ पंचाक्षरीं महाविद्यां पंचकृत्वोऽपि यो जपेत् ॥ २४ ॥ विधूयाघसहस्राणि स याति परमं पदम् ॥ सुभक्त्या फलमूलाद्यैर्यदि तर्पयते द्विजम् ॥ २५ ॥ तेन स्युर्भोजिता विप्राः शतशः पुरुषोत्तमे ॥ षड्वर्णमष्टवर्णं वा यः स्मरेत्पुरुषोत्तमे ॥ २६ ॥ शतवारमपि ब्रह्मन्स कोटिफलमश्नुते ॥ दरिद्रार्णवमुत्क्रम्य वैभवं भुवि लभ्यते ॥ २७ ॥ विष्णोरनुग्रहं प्राप्य गाणपत्यपदं व्रजेत् ॥ मासं सर्वोत्तमं प्राप्य जानकीजीवनं हरिम् ॥ २८ ॥ न पूजयति मंदात्मा स गच्छेन्नरकं चिरम् ॥ ध्वजारोपणमुच्चैर्यो मासेऽस्मिन्हरिमंदिरे ॥ २९ ॥ करोति चैलखंडेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ वीणावाद्यमृदंगाद्यैर्वादित्रैर्नृत्यगायनैः ॥ ३० ॥

करोड मंत्र जपनेका फल होता है और दरिद्रसागरके पार होकर ऐश्वर्योंमें लय होजाता है ॥ २७ ॥ फिर विष्णुके अनुग्रहको प्राप्त हो गाणपत्यके पदको प्राप्त होता है इस सर्वोत्तम मासको प्राप्त होकर जानकीजीवन नारायणको ॥ २८ ॥ जो मंदात्मा पूजन नहीं करते हैं वह चिरकालतक नरकमें जाते हैं जो इस महीनेमें हरिमंदिरमें ध्वजारोपण करते हैं ॥ २९ ॥ अथवा जो वस्त्रसे ध्वजा चढाते हैं उसके पुण्यका फल सुनो वीणा बाजे मृदंगी बाजे नृत्य गायन ॥ ३० ॥

आदि ऊंचे स्वरसे विष्णुकी स्तुति करता है वह आनंदको प्राप्त होता है वह सहस्र युग पर्यन्त आनंद कर फिर विष्णुके लोकको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥ सहस्र दीपदानका सब भय हरनेवाला फल सुनो सुवर्णके चांदीके ताम्बेके अथवा पीतलके पात्रमें ॥ ३२ ॥ तेलका अथवा घृतके पात्रमें जो मनुष्य दीपदान करता है वह अत्यन्त सुखको प्राप्त हो मेरा प्रिय होता है ॥ ३३ ॥ वह अनेक वर्षोंतक नाना प्रकारके भोगोंको भोगकर पीछे परब्रह्म परत्माके सालोक्यको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ इस कारण सब प्रकार विष्णुमंदिरमें

स्तुतिं विष्णोः करोत्युच्चैर्मोदत्याखण्डलांतिके ॥ मोदित्वा युगसाहस्रं पश्चाद्धरिपदं व्रजेत् ॥ ३१ ॥ दीपदानस्य साहस्रं शृणु सर्वभयापहम् ॥ सौवर्णे राजते ताम्रे पैत्तले पार्थिवेऽपि च ॥ ३२ ॥ तैलेन च घृतेनापि भाजने दीपदो नरः ॥ अत्यन्तं सुखमाप्नोति मत्प्रिये पुरुषोत्तमे ॥३३॥ भुक्त्वा भोगाञ्छुभान्सर्वान्संवत्सरगणान्बहून् ॥ पश्चात्प्रयाति सालोक्यं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ ३४ ॥ तस्मात्सर्वात्मना कार्यो दीपः श्रीविष्णुमंदिरे ॥ मन्मंदिरगतं ध्वांतं येन दीपैर्विनाशितम् ॥ ३५ ॥ तस्य त्वंतर्गतध्वांतं क्षिणोम्यंतस्थितो ह्यहम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये पुरुषोत्तमे कर्तव्यताया वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ विष्णुरुवाच ॥ समाप्यैवं शुभं मासमेकस्मिन्नपि वासरे ॥ सुरसद्मनि दीपो वै न कृतो मन्दभाग्यतः ॥ १ ॥ कथं तस्याल्पभाग्यस्य जन्मकोटिगतं दृढम् ॥ दारिद्र्यं नाशमायाति दुर्भाग्यस्याकृतात्मनः ॥ २ ॥

दीपक बालना उचित है मेरे मंदिरमें प्रकाश करनेसे यमलोकका अंधकार दूर होताहै ॥ ३५ ॥ और मैं उसके हृदय अन्तरका अन्धकार दूर करदेता हूं ॥ ३६ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये पुरुषोत्तमे कर्तव्यताया वर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥ श्रीविष्णुजी बोले ॥ इस प्रकार इस मासको समाप्त कर एक दिनमेंभी जिसने नारायणके आगे दीपदान नहीं किया वह बडा मन्दभागी है ॥ १ ॥ उस अल्पभाग्यके अनेक कोटि जन्म वृथा गये भी

उस अकृतात्मा पुरुषका दरिद्र कैसे नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ २ ॥ जिसने दीपज्योतिसे समान प्रकाशमान विष्णुका मुख नहीं देखा उसको इस सर्वोत्तम मासमें क्या फल प्राप्त होताहै वह आप सुनिये ॥ ३ ॥ दरिद्र व्याधिवान् मूर्ख शठ सर्वत्र निन्दित होताहै और जहां जहां उसका जन्म होताहै वहां वहां वह नेत्ररोगी व्रणवाला और जड होता है ॥ ४ ॥ जो जो मनुष्य पृथ्वीमें महानेत्ररोगी देखे जाते हैं हे द्विजश्रेष्ठ ! उन उनको तुम पराई स्त्रियोंके देखनेवाले जानो ॥ ५ ॥ अग्नि धाता रवि चन्द्र गौ ब्राह्मण संन्यासी गुरु हरि ब्रह्मा ईशान इनके भक्तोंको तथा परस्त्रीको ॥ ६ ॥

नालोकि विष्णुवदनं दीपज्योतिःप्रकाशितम् ॥ मासे सर्वोत्तमे पुण्ये तस्य किं स्याच्छृणुष्व तत् ॥ २ ॥ दारिद्रो व्याधितो मूर्खः षंढः सर्वत्र निंदितः ॥ यत्रयत्रावतारी स्यान्नेत्ररोगी व्रणी जडः ॥ ४ ॥ ये ये नयनरोगाढ्या दृश्यंते भुवि मानवाः ॥ ते ते ज्ञेया द्विजश्रेष्ठ परदारावलोकिनः ॥ ५ ॥ अग्निं धातुं रविं चन्द्रं गां विप्रं न्यासिनं गुरुम् ॥ हरिं ब्रह्माणमीशानमेषां भक्तं परास्त्रियम् ॥ ६ ॥ उच्छिष्टा निर्विशंकाश्च प्रेक्षंते ये नराधमाः ॥ पतंति नरके घोरे पश्चान्नयनरोगिणः ॥ ७ ॥ स कथं पातकान्मर्त्यो मुच्यते भवपाशतः ॥ नालोकयाति मासेऽस्मिन्दीपज्योतिर्गतं हरिम् ॥ ८ ॥ येनाहं कमलानाथो नार्चितस्तुलसीदलैः ॥ सुगन्धैः कोमलैर्गंधैः स कथं मुक्तिमाप्स्यति ॥ ९ ॥ अन्यैः कोटिमितैः पुष्पैः पूजा नारायणे कृता ॥ सुगन्धतुलसीपत्रैरेकेनापि कृता भवेत् ॥ १० ॥

उच्छिष्ट निश्शंकित हो जो क्रूर दृष्टिसे देखते हैं वे दुष्ट पहले घोर नरकमें पडकर पीछे जहां जन्मते हैं नेत्ररोगी होते हैं ॥ ७ ॥ वह मनुष्य किस प्रकार यमराजके घोर पाशों और पातकोंसे छूट सकता है जो पुरुषोत्तम मासमें दीपक बालकर नारायणका दर्शन नहीं करता है ॥ ८ ॥ जिन्होंने तुलसीदलसे कमलानाथका पूजन नहीं कियाहै अथवा सुगंधिवाले कोमल पुष्प नहीं चढाये वह किस प्रकार मुक्तिका भाजन होसक्ताहै ॥ ९ ॥ जिसने एकभी

सुगंधित तुलसीपत्रसे नारायणकी पूजा की है ऐसा जानो कि उन्होंने करोडों दूसरे फूल चढा दिये हैं ॥ १० ॥ जो भक्तिसे तुलसीदल द्वारा नारायण जगन्नाथका पूजन करता है वह अपने दश पहले और दश अगले पितरोंका उद्धार करताहै ॥ ११ ॥ वह परमस्थानको प्राप्त होता है जहां जाकर शोच करना नहीं पडता । जिसने पुरुषोत्तम मासमें शालग्रामका पूजन कियाहै ॥ १२ ॥ वह फिर माताके उदरमें शयन नहीं करता जिसने अप्रमादसे शालग्रामके स्नानका जलपान किया है ॥ १३ ॥ उस बुद्धिमान्‌को फिर माताका दुग्धपान नहीं करना पडता चंपक, करवीर, चमेली, मुद्गर ॥ १४ ॥ कर्णिकार

वृंदादलैर्जगन्नाथं भक्त्या संपूजयन्नमन् ॥ आत्मना साकमुद्धृत्य दर्शपूर्वान्दशापरान् ॥ ११ ॥ प्रयाति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ॥ शालग्रामशिला येन पूजिता पुरुषोत्तमे ॥ १२ ॥ जननीजठरावासी न भूयो जायते नरः ॥ शालग्रामशिलातोयं पीतं येनाप्रमादिना ॥ १३ ॥ न भूयः पिबति प्राज्ञः स्तन्यं मातुः कदाचन ॥ चंपकैः करवीरैश्च जातीचंपकमुद्गरैः ॥ १४ ॥ कर्णिकारैश्च कमलैर्बिल्वपत्रैः सुशोभनैः ॥ मल्लिकायूथिकाकुंदैर्मालतीकिंशुकोत्करैः ॥ कैलासनिलयः शर्वश्चार्चितः पुरुषोत्तमे ॥ १५ ॥ तेन सर्वं जितं मन्ये त्रैलोक्यं स्वीकृतं पुनः ॥ १६ ॥ न तदस्ति पदं ब्रह्मंस्तदलभ्यं तु यद्भवेत् ॥ शर्वः शतधृतिर्विष्णुर्नानृणस्तस्य कुत्रचित् ॥ १७ ॥ तिलतुल्यं न मेध्यं स्याज्जगत्सु द्विजसत्तम ॥ पृथिव्यां सर्वदानेभ्यस्तिलदानं विशिष्यते ॥ १८ ॥

कमल सुंदर बेलपत्र चमेलीकी लता कुंद मालती किंशुकोत्करद्वारा ॥ १५ ॥ कैलासवासी शंकरका जिन्होंने पुरुषोत्तममासमें पूजन किया उसने मानो तीनों लोकोंको जीतकर अपने वशमें करलिया है ॥ १६ ॥ हे ब्राह्मण ! ऐसा कोई पद नहीं है जो इस मासमें पूजन करनेसे प्राप्त न हो इससे शिव विष्णु उससे अनृण नहीं होते ॥ १७ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! संसारमें तिलकी बराबर कोई वस्तु पवित्र नहीं है सब दानोंसे पृथ्वीमें तिलदान अधिक

श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥ जो द्रोणमात्र तिल सुवर्णसाहित ब्राह्मणके निमित्त प्रदान करता है वह इस विष्णुमासके प्रसादसे कहीं जन्म पावै ॥ १९ ॥ कुरूप कुत्सित अल्पायु मत्सरवाला दरिद्री अत्यागी कृपण दुर्भागी ॥ २० ॥ अनाडी दुर्बुद्धि पापी रोगी नहीं होता है; तिलका देनेवाला पुरुष धन्य और तिलकाही देनेवाला पवित्र है ॥ २१ ॥ पितरोंको तिल और जल देनेसे अक्षय होता है तिलसे अग्निमें हवन करनेसे देवताओंकीभी तृप्ति होती

तिलद्रोणं द्विजेंद्राय स हिरण्यं प्रयच्छति ॥ यत्र कुत्रापि संयाति विष्णुमासप्रभावतः ॥१९॥ कुरूपः कुत्सितो न स्यान्नाल्पायुर्न च मत्सरी ॥ न दरिद्री न चात्यागी कृपणो न च दुर्भगः॥२०॥नानार्यो न च दुर्मेधा न पापी न च रोगवान्॥ तिलदः पुरुषो धन्यस्तिलदः पुरुषः शुचिः ॥२१॥ तिलोदकं पितृगणे दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ तिलहोमकृतो वह्निर्देवानामपि तृप्तिदः ॥ २२ ॥ तिलान्दत्त्वा सकृद्धुत्वा पुरुषोत्तमवासरे ॥ आत्मबुद्धिं प्रपद्याशु ब्रह्मलोके महीयते ॥ २३ ॥ तिलमेकमपि प्राज्ञे विप्रे दत्त्वा भवेच्छुचिः ॥ विक्रयं च पुनः कुर्वन्नरके याति दारुणे ॥ २४ ॥ तिलधेनुं गुडधेनुं मधुधेनुं जलस्य च ॥ विष्णोर्मासि द्विजेंद्राय प्रयच्छन्गर्भगो नहि ॥२५ ॥ शय्यां सोपस्करां धेनुं भूषणानि शुभानि च ॥ व्यंजनानि विचित्राणि कर्पूरागरुचन्दनम् ॥ २६ ॥

है ॥ २२ ॥ जो पुरुषोत्तम मासके दिनोंमें तिलदान करता तथा हवन करता है वह आत्मज्ञानको प्राप्त हो ब्रह्मलोकमें गमन करता है ॥२३॥ एक तिलभी पितरोंके उद्देशसे ब्राह्मणोंको देकर पवित्र होता है और ब्राह्मण तिल बेचनेसे दारुण नरकमें पडता है ॥ २४ ॥ तिलधेनु गुडधेनु मधुधेनु जलधेनु पुरुषोत्तममासमें विष्णुके निमित्त दान करनेसे फिर उसका जन्म नहीं होता है ॥ २५ ॥ सामग्रीसहित शय्या धेनु सुन्दर भूषण विचित्र व्यंजन कर्पूर अगर चंदन ॥ २६ ॥

सोने चांदी कांसी तांबेके बरतन •धन हाथी घोडे दिव्य महिष रथ ॥ २७ ॥ पालकी नौकर चाकर स्त्री गहने यह सब उमामहेश्वरको तिलपात्रके साथ समर्पण कर तथा घृतभी निवेदन कर ॥ २८ ॥ यह सब वस्तु अपने वित्तके अनुसार ब्राह्मणको प्रदान करें यह पवित्र पुरुषोत्तम मास विष्णुकी सन्तुष्टिके अर्थ है ॥ २९ ॥ जो मनुष्य नित्य अन्य ब्राह्मणके घरमें भोजन करता है वह एक सेर अन्न लेकर कुंभमें पूजन करे ॥ ॥ ३० ॥ हे विप्र ! जबतक हमारा प्रियदिन द्वादशी आवे तबतक नारायणकी बराबर पूजा करता रहै कलश और दक्षिणा भक्तिसे उनको देनी

स्वर्णरूप्यकांस्यताम्रभाजनानि धनानि च ॥ गजं च वाजिनं दिव्यं महिषीं स्यंदनानि च ॥२७॥ शिबिकानुचरा दास्यो वनिता भूषणानि च ॥ उमामहेश्वरं विप्र तिलपात्रं हवींषि च ॥२८॥ सर्वं देयं द्विजेंद्राय आत्मवित्तानुसारतः ॥ पुण्ये विष्णुप्रिये मासि पुरुषोत्तमतुष्टये ॥२९॥ यश्चाश्नाति नरो नित्यं गृहे ह्यन्यस्य ब्राह्मणाः ॥ अन्नप्रस्थमुपादाय कुम्भे नित्यं प्रपूजयेत् ॥ ३० ॥ यावन्मम दिनं विप्र द्वादश्यामर्चयेद्धरिम् ॥ कलशं दक्षिणां तस्मै भक्त्या दद्यात्समाहितः ॥३१॥ तत्कर्ता च जनः कश्चिन्नान्यपीडामवाप्नुयात् ॥ न कदाचिद्भवेद्दुःखी संकटं नाभिपद्यते ॥ ३२ ॥ न कश्चिन्नरकं पश्येन्नापि जाठरवेदनाम् ॥ सदा भोगी सदा दाता न कदाचिदृणी भवेत् ॥ ३३ ॥ नियमान्पालयेन्नित्यं यावन्मासावधिर्भवेत् ॥ मासांते मंडलं कृत्वा दिव्यैर्धान्यैः सुशोभनम् ॥ ३४॥

चाहिये ॥ ३१ ॥ इस विधानका कर्ता कोई मनुष्य पीडाको प्राप्त नहीं होता न कभी दुःखी और न संकटको प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥ न कभी नरक न कभी गर्भवासकी वेदनाको प्राप्त होता है सदा भोगी सदा दाता और कदाचित्भी ऋणी नहीं होता है ॥ ३३ ॥ जबतक मासकी पूर्ति हो नियमोंका पालन करे मासान्तमें दिव्य धान्यका सुंदर मंडल करके ॥ ३४ ॥

सोने या चांदीका व्रणरहित कुंभ स्थापन करै तांबेके वा अन्य पात्रको अन्नसे पूर्ण करै ॥ ३५ ॥ पुरुषोत्तमकी सुवर्णमूर्तिको रेशमी वस्त्रोंसे लपेटे और उस पात्रमें स्थापन करिकै सर्व साधनोंसे पूजै ॥ ३६ ॥ सोलह उपचारोंसे पुरुषोत्तम देवका पूजन करै और उतने दिनकी संख्यासे गुणसम्पन्न ब्राह्मणोंका वरण करै ॥ ३७ ॥ कुंडल कंकण मनोहर छत्र वस्त्र यज्ञोपवीत पद मुद्रा आसन आदिसे नारायणका पूजन करै ॥ ३८ ॥ और भक्तिमान् मनुष्य विष्णुकी समान ब्राह्मणोंका पूजन करै ब्राह्मण और नारायणमें भेद माननेसे मनुष्यको पाप लगता है ॥ ३९ ॥ जो विष्णुका

अव्रणं स्थापयेत्कुंभं सौवर्णं राजतं पुनः ॥ ताम्रजं मार्तिकं वापि त्वन्नेनैव प्रपूरयेत् ॥ ३५ ॥ वेष्टयेत्पट्टकूलैस्तु सौवर्णं पुरुषोत्तमम् ॥ स्थापयित्वा च तत्पात्रे पूजयेत्सर्वसाधनैः ॥ ३६ ॥ उपचारैः षोडशभिः पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ॥ ब्राह्मणान् गुणसंपन्नान्वरयेद्दिनसंख्यया ॥ ३७ ॥ कुंडलैः कंकणैर्हृद्यैश्छत्रवस्त्रोपवीतकैः ॥ पदमुद्रासनाहारैरर्चयेद्द्विजसत्तम ॥ ३८ ॥ यथा विष्णुं तथा विप्रान्पूजयेद्भक्तिमान्नरः ॥ विप्रे नारायणे भेदं कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥ ३९ ॥ विष्णुं संपूजयन्भक्त्या ब्रह्मद्वेषं समाचरेत् ॥ महाव्रतं कृतं तस्य सर्वं भवति निष्फलम् ॥ ४० ॥ तस्माद्विप्रेऽच्युते नैव विभेदं कारयेत्सुधीः ॥ एवं दिवानिशं विष्णुं संपूज्योत्सवकीर्त्तनैः ॥ ४१ ॥ भास्करोदयवेलायां प्रार्थयेज्जगदीश्वरम् ॥ देवदेव जगत्स्वामिन्प्रसीद जगदीश्वर ॥४२॥ कृतेनानेन मे देव त्राहि मां भवसागरात् ॥ कृतं न्यूनाधिकं यन्मे विष्णो- मासे तव प्रिये ॥ ४३ ॥

पूजन करता हुआ ब्राह्मणसे द्वेष करता है उसका किया सम्पूर्ण महाव्रत नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥ इस कारण बुद्धिमान् ब्राह्मण और नारायणमें भेद न करै इस कारण रात दिन विष्णुका उत्सव और कीर्तन द्वारा पूजन करै ॥४१॥ सूर्योदयके समय जगदीश्वरकी पूजा करै और कहे हे देवदेव! जगत्के स्वामी परमेश्वर आप प्रसन्न हूजिये ॥ ४२ ॥ हे देव ! इस कृत्यसे आप मुझे भवसागरसे पार करो. हे विष्णो ! जो इस आपके प्रिय मासमें

मैंने न्यूनाधिक किया है ॥ ४३ ॥ स्नान दान तप होम वेदपाठ पितृतर्पण उपोषण नित्यदान नियमादि देवार्चन ॥ ४४ ॥ द्विजपूजा भूतरक्षा जो कुछ मैंने की है हे पुरुषोत्तम ! जो कुछ पूर्ण अपूर्ण हो ॥ ४५ ॥ वह सब आपके प्रसाद और पुरुषोत्तमके सेवनसे तथा ब्राह्मणोंके वचनसे परिपूर्ण हो ॥ ४६ ॥ इस प्रकार सब ब्राह्मणोंको प्रणाम कर स्वस्तिवाचन कराय विसर्जन करे वह लक्ष्मी और विष्णुमंडल ब्राह्मणोंके निमित्त निवेदन

स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ उपोषणं नित्यदानं नियमादिसुरार्चनम् ॥ ४४ ॥ द्विजपूजां भूतरक्षां यत्किंचित्कृतवानहम् ॥ अतिरिक्तं खिलं वापि यद्भवेत्पुरुषोत्तम ॥ ४५ ॥ सर्वं तव प्रसादेन पुरुषोत्तमसेवनात् ॥ द्विजेंद्रवचनाद्वापि यातु मे परिपूर्णताम् ॥ ४६ ॥ इत्यानम्य द्विजान्सर्वान्स्वस्ति वाच्य विसर्जयेत् ॥ लक्ष्मीं विष्णुमंडलं च विप्राय विनिवेदयेत् ॥ ४७ ॥ यदिष्टं स्वस्य सततं देयं वित्तानुसारतः ॥ ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दक्षिणां भूरि दापयेत् ॥ ४८ ॥ पश्चात्स्वजनमध्यस्थः स्वयं भुंजीत वाग्यतः ॥ अनेन विधिना चीर्णव्रतो याति कृतार्थताम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये कृतस्य कर्मणो महिमवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
श्रीभगवानुवाच ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म लब्धं पूर्वकृतैः शुभैः ॥ पश्चान्न चिंतयन्मूढः पुनर्मे किं भविष्यति ॥ १ ॥

करे ॥ ४७ ॥ जो जो वस्तु अपनेको इष्ट हो वह वह अपने वित्तके अनुसार दान करे भक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन करावे दक्षिणा अधिक दे ॥ ४८ ॥ पीछे अपने कुटुंबियोंके साथ स्थित हो स्वयं भोजन करे इस प्रकार विधिपूर्वक व्रत करके कृतार्थ होजाता है ॥ ४९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये कृतस्य कर्मणो महिमवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले यह मनुष्यजन्म बडा दुर्लभ है बडे श्रेष्ठ कर्मोंसे प्राप्त होता है मूर्ख इस बातको नहीं विचारता कि, फिर मेरा क्या होगा ॥ १ ॥

अहो ! मनुष्योंकी अत्यन्त मूर्खता तो देखो जो मेरे मुखसे पुरुषोत्तम मासका माहात्म्य श्रवण करकेभी ॥ २ ॥ उसे छोड मृगतृष्णाकी समान इधर उधर धावमान होते हैं अर्थात् वे शीतल जलसे भरी गंगाको त्यागकर ॥ ३ ॥ मोहको प्राप्त हो चेतनारहित बावडी देखनेको भ्रमण करते हैं ऐसे पुरुषोत्तमको छोडकर वृथा अन्यकर्मोंमें होरहे हैं ॥ ४ ॥ हे विद्वन् ! उन दुरात्माओंको अवश्य नरककी प्राप्ति होगी वे अभागी पुरुषोत्तम भगवान्‌का किस प्रकार भजन करसकते हैं ॥ ५ ॥ जो मेरे पुरुषोत्तममासको वृथा

अहो मौढ्यं जनेऽत्यंतं रूढं सर्वत्र पश्यत ॥ पुरुषोत्तममासं तु श्रुत्वा भुक्तिप्रदं सुखात् ॥२॥ विहाय परिधावंति सर्वतो मृगतृष्णया ॥ शीतपानीयसंपूर्णां गंगामुत्सृज्य पार्श्वतः ॥ ३ ॥ वापीं सुमोहमापन्ना भ्रमंति गतचेतसः ॥ अन्यकर्मसमासक्ता विहाय पुरुषोत्तमम् ॥ ४ ॥ तेषां दुरात्मनां विद्वान्नियतं निरयस्थितिः ॥ भजंत्यभागसंपूर्णाः कथं ते पुरुषोत्तमम् ॥ ५ ॥ एषामनियमाद्यातो मन्मासः पुरुषोत्तमः ॥ जन्मजन्मनि दुर्भाग्याः परभाग्योपजीविनः ॥ ६ ॥ रोगिणो भग्नसंकल्पा दारिद्र्येणोपजीविनः ॥ यत्रयत्रापि कुर्वंति तत्रतत्रातिदुःखिनः ॥ ७ ॥ कुरूपाः कुत्सिता रौद्रा मूर्खा मूढातिलोलुपाः ॥ पुत्रपौत्रसुखातुष्टाः पापिनो नष्टजीविनः ॥८॥ स्त्रियोऽपि विधवा हीनाः कुरूपाः क्षीणवैभवाः॥ मातृकैः पैतृकैः सौख्यैर्भ्रातृपितृसुखैरपि ॥ ९ ॥ वर्जिता नाथ विकला गुणचारित्रदूषिताः ॥ यत्रयत्र प्रदीयंते तत्राप्यत्यंतदुःखिताः ॥ १० ॥

व्यतीत करदेते हैं वे दुर्भाग्य जन्मजन्ममें पराये भाग्यसे जीनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥ वे रोगी भग्नसंकल्प दरिद्रतासे जीवन धारण करते हैं जहां कहीं स्थित हों वहीं दुःखी होते हैं ॥ ७ ॥ कुरूप कुत्सित रौद्र मूढ अति लालची पुत्रपौत्रके सुखसेही सन्तुष्ट होनेवाले पापी नष्टजीवी होते हैं ॥ ८ ॥ स्त्री विधवा हीन कुरूप क्षीण ऐश्वर्यवाली होती हैं माता पिताके सुख, भाई पिताके सुखोंसे ॥ ९ ॥ रहित अनाथ विकल अंग गुणचरित्रसे

दूषित होती है जहां जहां दीजाय वहीं वहीं अत्यन्त दुःखी होती है ॥ १०॥ हे उत्तम भूसुर ! इस प्रकार जो पृथ्वीमें देखे जाते हैं उन मूर्खोंको तुम इसी प्रकार वृथा जन्मवाले पंडितमानी जानो ॥ ११ ॥ वे क्षुद्रकर्मा पुरुषोत्तम माससे विमुख हैं इस कारण हे विप्र ! तुम सब प्रकारसे इस समय धन्य हो ॥ १२ ॥ जो इस मासमें तुमने बडा तप किया है यह पुरुषोत्तम मास नित्य मेरा प्रिय है ॥ १३ ॥ जो जो अत्यन्त दीन दिन रातमें भूंखे रहते हैं दूसरे घरोंमें भिक्षा मांगते फिरते हैं जहां तहां अन्नके कारण धिक्कार पाते हैं ॥ १४ ॥ वे निराश सब प्रकार भग्नआशा हुए देवता

ईदृशा ये प्रदृश्यंते सृष्टौ भूमिसुरोत्तम ॥ विद्धि तानपि पापिष्ठान्मूढान्पंडितमानिनः ॥ ११॥ पुरुषोत्तममासस्य विमुखान्क्षुद्रकर्मिणः ॥ तस्मात्सर्वात्मना विप्र भवान्धन्योऽसि सांप्रतम् ॥ १२ ॥ यदस्मिंस्तत्तवानुग्रं ततः परमभासुरम् ॥ मम प्रियात्मना नित्यं मन्मासः पुरुषोत्तमः ॥ १३ ॥ ये ये दीनतरा नित्यं दिवारात्रौ बुभुक्षिताः ॥ भ्रमंति परगेहेषु धिक्कारामान्नतुष्टयः ॥ १४ ॥ निराशा भग्नसर्वाशाः सुरविप्रपराङ्मुखाः ॥ सदा दुर्बुद्धिबहुलाः कटुवाक्याः कुचेलिनः ॥ १५ ॥ आनिशीथमपि ग्रासं सर्वेषु कांक्षिणः क्षितौ ॥ सदारोगसमायुक्ता विप्रियाः सर्वजंतुषु ॥ १६ ॥ जायंते ईदृशाः सर्वे येषां व्यर्थो गतो मम ॥ अत्यंतवल्लभो मासो मत्प्रियः पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥ तस्मात्सर्वात्मना विप्र संसेव्यः पुरुषोत्तमः ॥ स मत्प्रियः पुमाँल्लोके स धन्यो भाग्यपारगः ॥ १८ ॥

ब्राह्मणोंसे पराङ्मुख सदा महादुर्बुद्धि कटुवाक्यभाषी मैले वस्त्र पहरे ॥ १५ ॥ आधीराततक ग्रासके निमित्त पृथ्वीमें विचरनेवाले सदा रोगी सब प्राणियोंके विप्रिय ॥ १६ ॥ वे प्राणी इस प्रकारके जन्म लेते हैं जिनका यह पुरुषोत्तम मास मेरा अत्यन्त प्रिय और वल्लभ है ॥ १७ ॥ हे, विप्र ! इससे सब प्रकार पुरुषोत्तम मासका सेवन करना चाहिये वही पुरुष लोकमें मेरा प्रिय और वही धन्य बडा भाग्यवान् होता है ॥ १८ ॥

जो मनुष्य पुण्यराशि मेरे मासका आराधन न करके अन्य कर्म करते हैं तो मेरे माससे विमुख होनेके कारण सब निष्फल होता है ॥ १९ ॥ वाल्मीकिजी बोले ॥ इस प्रकारसे गरुडवाहन हरि उसे प्रीतिसे कहकर अपने स्थान वैकुण्ठको चलेगये ॥ २० ॥ वह गौतमी और सुदेव महा प्रसन्न हुए पुरुषोत्तम मासका प्रभाव सुन बडे हर्षित हुए ॥ २१ ॥ उस दिनसे वह ब्राह्मण इस मासकी अर्चा करता रहा और उस पुत्रसे ऐसे शोभित हुए जैसे जयन्तके सहित इन्द्र ॥ २२ ॥ शुकदेवजी अपने पिताको प्रसन्न करता रहा सुखपूर्वक बहुत समय बीतगया ॥ २३ ॥ सुदेवने वह बीतते हुए दिन

नाराधयति मां पुण्यराशिरन्यः कृतो नरैः ॥ मन्मासविमुखैस्तेषां सर्वं भवति निष्फलम् ॥ १९ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ एवमुक्त्वा सहस्राक्षो हरिर्गरुडवाहनः ॥ जगामाकाशमाविश्य वैकुंठनिलयं प्रभुः ॥२०॥ गौतमी च सुदेवश्च मुमुदाते च हर्षितौ ॥ अतीव हर्षितौ श्रुत्वा प्रभावं पुरुषोत्तमम् ॥ २१ ॥ ततः प्रभृति विप्रोऽसौ तं मासं मुदितोऽर्चयत् ॥ तेन पुत्रेण शुशुभे जयंतेनेव नाकराट् ॥ २२ ॥ पितरं शुकदेवोऽपि नंदयामास तत्कृतम् ॥ क्रमंतं बहुलं कालं यत्सुखाविष्टचेतनम् ॥ २३ ॥ बुबुधे न सुदेवोऽपि ह्यहोरात्रमिदं भ्रमात् ॥ वसिष्ठः शक्तिना यद्वत्कुमारेण सतीपतिः ॥ २४ ॥ प्रद्युम्नेन रमाधीशः पांडुर्यद्वत्किरीटिना ॥ जयंतेन यथा शक्रः कानीनेन पराशरः ॥ २५ ॥ मुमुदे स च धर्मात्मा तेन पुत्रेण धीमता ॥ ध्यायन्देवं जगन्नाथं चक्रपाणिं तमीश्वरम् ॥ २६ ॥ स्तुवन्मासं च विष्णुं च प्रेम्णा संपूजयन्नमन् ॥ ब्रह्मलोकप्रदेभ्योऽपि कर्मभ्योऽमन्यताद्भुतम् ॥ २७ ॥

रात न जाने जिस प्रकार शक्ति पुत्रके साथ वसिष्ठ और कुमारसे शिव प्रसन्न हुएथे ॥ २४ ॥ वा प्रद्युम्नको प्राप्त होकर श्रीकृष्ण और अर्जुनको प्राप्त होकर जैसे पाण्डु प्रसन्न हुएथे अथवा जैसे पराशर व्यासजीके जन्मसे प्रसन्न हुएथे ॥ २५ ॥ इस प्रकार वह धर्मात्मा उस पुत्रसे प्रसन्न हुए चक्रपाणि ईश्वर देव जगन्नाथको ध्यान करता रहा ॥ २६ ॥ इस मास और विष्णुकी स्तुति करता हुआ प्रेमसे पूजन करता हुआ तथा ब्रह्मलोकके देनेवाले कर्मों-

सर्वदुःखापहं मासं वरिष्ठं पुरुषोत्तमम् ॥ ददावीजे जपी पाठी तस्मिन्नेवाभजद्धरिम् ॥२८॥ भुक्त्वा भोगान्यथाकामं वर्षसाहस्रकालिकम् ॥ जगाम ब्रह्मणो लोकं नातिशीतं न घर्मदम् ॥ २९ ॥ यत्र ना यज्विनो यांति नातप्ततपसो जनाः ॥ असत्यवादिनो लुब्धा न त्वचीर्णबृहद्व्रताः ॥ ३० ॥ यत्र गत्वा न शोचंति वसंति ब्रह्मणोऽतिकम् ॥ ब्राह्मः संवत्सरो यावत्सौख्यमापद्द्विजोत्तमः ॥ ३१ ॥ सोयं भवान्समुत्पन्नो दृढधन्वेति विश्रुतः ॥ लुब्धवानतुलं सौख्यं सुराणामपि दुर्लभम् ॥३२॥ तेन पुण्येन भूपालः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ एतत्ते सर्वमाख्यातं पृष्टवानसि यन्मम ॥ ३३ ॥ सौख्यकारणमत्युग्रं जातं ते पूर्वदैहिकम् ॥ शृणु त्वं शुकवृत्तांतं पृष्टं यद्भवता मम ॥ ३४ ॥ पूर्वजन्मनि ते भूप शुकदेवोऽभवत्सुतः ॥ साक्षात्सुपर्णः स्वांशेन समुत्पन्नः कृपावशात् ॥ ३५ ॥

सेभी अद्भुत है ॥ २७ ॥ यह पुरुषोत्तम मास सब दुःखका दूर करनेवाला है इसमें यज्ञ जप तप दान करनेसे सब सुख मिलता है ॥ २८ ॥ यथायोग्य सहस्र वर्षतक अनेक भोगोंको भोगकर वह शीत उष्णतारहित ब्रह्मलोकको चलागया ॥ २९ ॥ जहां तप करनेवाले ज्ञानियोंके सिवाय दूसरे लोग नहीं जाते हैं असत्यवादी लोभी तथा बडे व्रत करनेवाले वहां नहीं जासके ॥ ३० ॥ जहां जाकर शोच नहीं करते और ब्रह्माके निकट निवास करते हैं ब्रह्माके संवत्सर पर्यन्त वह ब्राह्मण श्रेष्ठ सुख पाते रहे ॥ ३१ ॥ वही अब आप दृढधन्वा नामसे उत्पन्न हुएहो और देवताओंको भी दुर्लभ तुम सुखको प्राप्त हुएहो ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! इसमें सन्देह नहीं वह सब उसीका पुण्य है यह जो आपने पूछाथा सो सब आपको श्रवण कराया ॥ ३३ ॥ यह पूर्वजन्मके पुण्यसे इस प्रकार तुमको सुखकी प्राप्ति हुई है अब जो तुमने पूछा है वह शुक कौन था उसका वृत्तान्त श्रवण करो ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! यह पूर्वजन्ममें तुम्हारा शुकदेव नाम पुत्र था. साक्षात् सुपर्णके अंशसेही कृपापूर्वक वह उत्पन्न हुएथे ॥ ३५ ॥

तेनैताच्चिंतितं भूप यस्य कुक्षावहं सुतः ॥ तस्या मास्तु पुनर्जन्म घोरे संसारसंकटे ॥ ३६ ॥ तवाप्यस्ति महत्कृत्यं पुरुषोत्तमसंभवम् ॥ तेनासौ कीररूपेण दर्शयामास तेऽग्रतः ॥ ३७ ॥ न्यग्रोधविटपारूढः श्रावयामास तद्वचः ॥ येन वैराग्यमापन्नो जनो याति कृतार्थताम् ॥ ३८ ॥ शुकस्य कारणं यत्तत्तव सौख्यप्रदायकम् ॥ श्रावितं ते महाराज पृष्टोऽहं यत्त्वयानघ ॥ ३९ ॥ अथोऽनुज्ञातुमिच्छामि घोरा संध्या प्रवर्त्तते ॥ सरयूमापगां पुण्यां यास्याम्याप्लवनाय वै ॥ ४० ॥ इत्यादिश्य मुनिश्रेष्ठस्तमामंत्र्य महीपतिम् ॥ पूजितस्तेन चात्यर्थं विस्मितेन पुनःपुनः ॥ ४१ ॥ जगामाकाशमाविश्य ब्रह्मभूतो मुनीश्वरः ॥ राजाप्यत्यंतचकितश्चिंतयामास चेतसा ॥ ४२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये वाल्मीकिना दृढधन्वनः पूर्ववृत्तांतकथनानंतरं वाल्मीकिप्रस्थानं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

हे राजन् ! उसने यह वार्ता विचारी कि जिसका मैं पुत्र हूँ उसका घोर संसारसागरमें फिर जन्म न हो ॥ ३६ ॥ तुम्हाराभी पुरुषोत्तम मासमें महत्कृत्य है उससे कीररूपसे उसने तुमको दर्शन दिया है ॥ ३७ ॥ न्यग्रोधके पेडपर चढकर उस वचनको सुनाया जिससे विरक्त हो मनुष्य कृतार्थ होजाता है ॥ ३८ ॥ जो शुकका कारण है वह तुम्हारे सुखका कारण है; हे महाराज ! जो आपने पूछा सो वर्णन किया ॥ ३९ ॥ अब मैं जानेकी इच्छा करता हूं कारण कि इस समय घोर संध्या प्रवृत्त होती है अब मैं स्नान करनेको सरयूको जाता हूं ॥ ४० ॥ इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ राजाको आमंत्रण कर उनसे वारंवार पूजित होकर ॥ ४१ ॥ ब्रह्मभूत मुनि आकाशमार्गमें स्थित होकर चले गये और राजाभी चकित चित्त हो चिन्ता करने लगा ॥ ४२ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये वाल्मीकिना दृढधन्वनः पूर्ववृत्तान्तकथनं नामैकोन- : ॥ १९ ॥

सूतजी बोले यह अधिक मासका माहात्म्य श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठ है इससे अधिक क्षणमात्रमें पापका दूर करनेवाला क्या होगा यह राजाने मनमें विचार किया कि मुनिने क्षणमात्रमें मेरा घोर अज्ञान दूर करदिया ॥ १ ॥ कामक्रीडामें लोलुप भोगेच्छामें तत्पर मुझको धिक्कार है जो अज्ञानमें पडा हुआ स्त्रियोंका क्रीडामृग हो रहा हूं ॥ २ ॥ इस स्थावरजंगमात्मक जगत्में कुछभी स्थायि नहीं है मेरी अधिक क्रिया अध्यक्षता दृढता और महाचतुरताको धिक्कार है ॥ ३ ॥ विद्या बडे गुणकोभी धिक्कार है जिसको प्राप्त होकर मृत्यु न निवृत्त हुई यह ब्रह्मांडका भक्षण करनेवाला काल बडा दुर्घट वर्तमान है ॥ ४ ॥

सूत उवाच ॥ अहो मासस्य माहात्म्यं महाश्चर्योत्तरं परम् ॥ किमेतन्मुनिना मह्यं ध्वांतौघो दारितः क्षणात् ॥ १ ॥ धिङ्मां भोगेच्छया मूढकामक्रीडासु लंपटम् ॥ अज्ञानपीडितं क्षुद्रस्त्रीणां क्रीडामृगं खलम् ॥ २ ॥ न किंचिद्दृश्यते स्थायि जगत्स्थावरजंगमम् ॥ धिक्क्रियां धिक्च ह्याध्यक्ष्यं धिक्चातुर्यमकल्पकम् ॥ ३ ॥ धिग्विद्यां धिग्गुणान्प्रौढान्यन्मृत्युर्न निवर्त्तते ॥ ब्रह्माण्डं कवलीकुर्वन्वर्त्ततेऽतीव दुर्घटः ॥ ४ ॥ वाल्मीकिगमनादूर्ध्वमतिनिर्विण्णचेतसा ॥ चिंतयन्मुनिराजानमिदमाह महीपतिः ॥ ५ ॥ किं मया क्रियतेऽत्यंतमूढबुद्ध्या कुमेधसा ॥ न मयाराधितो विष्णुः कोटिब्रह्मांडनायकः ॥ ६ ॥ चिंताशा नुतुदान्नित्यं तुच्छभोगायुतान्विता ॥ कामलुब्धा च विक्षिप्ता दुर्गा विषयवागुरा ॥ ७ ॥ पंगुं करोति सत्पादमंधयत्यातिसे क्षणात् ॥ मच्चित्तं चेतनाहीनं सुवाचं मूकतां गतम् ॥ ८ ॥

इस प्रकार चित्तसे महाव्याकुल होकर मनमें मुनिराजको चिन्तन करता हुआ राजा इस प्रकारके वचन कहने लगा ॥ ५ ॥ हे भगवन् ! मूढबुद्धि अब मैं क्या कर सकता हूं कोटि ब्रह्माण्डनायक विष्णुका मैंने आराधन नहीं किया ॥ ६ ॥ नित्य चिंतारूपी आशा मुझे व्याकुल करती है और अनेक तुच्छ भोग चित्तको व्याकुल करते हैं लुब्ध होकर विक्षिप्तता प्राप्त करती है और कठिन विषयकी लगाम है ॥ ७ ॥ जो सत्पादको पंगु करती

नेत्रवालेको अंधा करती मंद करती मेरा चित्त चेतनाहीन और वाणी मूकताको प्राप्त हुई है ॥ ८ ॥ मैं किस प्रकार नारीके सद्रूप संपत्तिसे अत्यंत मोहित हो रहा हूं और कलुषित चित्तमें किस प्रकारसे निवृत्तिको प्राप्त हो सकता हूं ॥ ९॥ आंतोंके बंधनसे अखण्ड और रक्त मज्जा नखोंसे युक्त केश रक्त कफ विष्ठा मूत्र और रोम लारसे विडम्बित शरीरमें ॥ १०॥ महा अद्भुत मोहका माहात्म्य तो देखो जो क्लेदमांस कर्दमसे लिप्त कोटर है उसमें ॥ ११ ॥ जिसके कि नौ द्वारोंसे विष्ठा मूत्र कीट निकलते हैं जिसमें कृमिकीटकी उत्पत्ति होतीहै जो थोडे जीवन और निर्लज्जतासे युक्त है ॥ १२ ॥

किमहं मोहितोऽत्यंतं नारी सद्रूपसंपदा ॥ केन वा पुनरावृत्तिं गतः कलुषचेतनः ॥ ९ ॥ आंत्रनिर्बंधसकले रक्तमज्जा-नखायुते ॥ केशासृक्कफविण्मूत्ररोमलालाविडंबिते ॥ १० ॥ अहो मोहस्य माहात्म्यं पश्यताऽद्भुतमुद्गतम् ॥ क्लेदास्थि-तिचयो मांसकर्दमालिप्तकोटरे ॥ ११ ॥ नवकोटरनिर्गच्छद्विष्टामूत्रकफान्विते ॥ कृमिकीटगदव्याप्ते स्वल्पायुषि गत-त्रपे ॥ १२ ॥ नारीकलेवरे तुच्छे किमहं मोहितश्चिरम् ॥ यतो न ज्ञातवान्कालं ममायुर्दलनक्षमम् ॥ १३॥ एवं पापतरा नारी सन्मार्गप्रतिबंधिनी ॥ कामधीवरदुर्जालं नानाविषयमामिषम् ॥ १४ ॥ मत्तुल्यानेकशफरीबंधनार्थं प्रसारितम् ॥ दुस्तीर्णे दुःखसलिलपूर्णे संसारवारिधौ ॥ १५ ॥ के मत्पुत्राः कुतो राज्यं कुत्र गेहानि वा पुरम् ॥ कुत्रैते स्वजनामात्याः पाशपाणावुपस्थिते ॥ १६ ॥

ऐसे स्त्रीरूप कलेवरमें मैं किस प्रकार बहुत कालपर्यंत मोहित रहा जो मैंने अपनी अवस्था नष्ट करनेवाले कालको न जाना ॥ १३ ॥ इस प्रकार सत्मार्गसे वंचित करनेवाली पापात्मा स्त्रीही है कालरूपी धीवरने नाना विषयरूपी मांसयुक्त जाल पसारे हैं ॥ १४ ॥ यह जाल मेरे तुल्य अनेक मछलियोंके पकडनेको फैलाये जाते हैं यह दुःखरूपी जलसे भरा संसारसागर दुष्पार है ॥ १५ ॥ कौन मेरा पुत्र घर वा पुर है कहां

यह स्वजन अमात्य हैं यह पाश हाथमें लिये उपस्थित हैं ॥ १६ ॥ पुत्र पिता माता भाई बंधु शरीर मित्र कोश सुहृद् सखा कोई नहीं है ॥ १७ ॥ न घर न मित्र न चार प्रकारका ऐश्वर्य न गुणवती स्त्री न अधिक विद्या बुद्धि ॥ १८ ॥ कुटिलताके वेगसे उठा जिसकी भ्रूलतासेही जीवन आकर्षित हो जाता है ऐसे दुर्धर्ष वेतालरूपी कालसे मनुष्य क्षेम कहां पासकते हैं ॥ १९ ॥ देवदेव सनातन विष्णु नारायणके भजन विना कुशल नहीं है इस कारण मैं उन्हीं गदाधर देवकी शरणमें जाताहूं ॥ २० ॥ इस प्रकार विचार कर राजाने गुणसुन्दरी रानीसे कहा हे प्रिये ! तुम्हारे साथ बहुत

न सुता न पिता माता न भ्राता नापि बांधवाः ॥ न शरीरं न मित्राणि न कोशः सुहृदः सखा ॥ १७ ॥ न गृहाणि न मित्राणि वैभवं न चतुर्विधम् ॥ नापि दारा गुणा रामा न विद्या सौष्ठवं सुधीः ॥ १८ ॥ संरंभकुटिलोद्भूतभ्रूलताकृष्टजीवितात् ॥ कालदुर्दर्शवैतालात्क्षेमं गच्छंति मानवाः ॥ १९ ॥ विना नारायणं विष्णुं देवदेवं सनातनम् ॥ यास्यामि शरणं तस्मान्मंक्षु देवं गदाधरम् ॥ २० ॥ इति निश्चित्य भूपालः प्रोवाच गुणसुन्दरीम् ॥ प्रिये बहुतरं कालं भुक्तं सौख्यं त्वया सह ॥ २१ ॥ इदानीमस्मि संवृत्तो मामनुज्ञातुमर्हसि ॥ इत्युक्तवति राजेंद्रे किञ्चिन्मानसुपेयुषी ॥ २२ ॥ उवाच पृथिवीपालं सुन्दरी गद्गदाक्षरम् ॥ राजन्मम मनो बुद्धिः शरीरं जीवितं त्वयि ॥ २३ ॥ प्राणेशोऽस्ति भवान्मह्यं त्यक्त्वा किंनु प्रयास्यासि ॥ त्वया सार्द्धं सुखं भुक्त्वा कुत्र स्थास्यामि मे वद ॥ २४ ॥

दिनोंतक सुख भोगा ॥ २१ ॥ इस समय मैं वन जानेको तत्पर हूं सो तुम मुझको आज्ञा दो । राजाके यह कहनेपर कुछेक मानको प्राप्त होनेवाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दरी गद्गद अक्षरसे राजाके प्रति कहने लगी हे राजन् ! मेरा मन बुद्धि जीवन शरीर तुममेंही है ॥ २३ ॥ तुम मेरे प्राणेश हो मेरे प्रति ऐसा कहकर कहां जाते हो आपके साथ सुख भोगकर अब मैं कहां स्थित हूंगी यह तो मुझसे कहो ॥ २४ ॥

हे राजन् ! मुझे आप अपनी देहकी छाया स्वरूपिणी जानिये अपनी स्त्रीके वचनसे संतुष्ट हो राजा कहने लगा ॥ २५ ॥ हे सुन्दरी ! तुम बहुत धन्य हो मैं तुमको त्यागन नहीं करूंगा वनको हमारे साथ चलो तुम्हारे साथ दुष्कर तप करूंगा ॥ २६ ॥ आजसे आठ दिनके उपरान्त पुरुषोत्तम मास आवेगा और तुम्हारे शरीरसे उत्पन्न गुणोंमें श्रेष्ठ ज्येष्ठ पुत्रको अभिषिक्त करेंगे ॥ २७ ॥ धर्मकी रक्षा और दुष्ट जनोंको शान्त करनेको राजाने विचार कर पुत्रको राज्यमें अभिषेक करादिया ॥ २८ ॥ उसे ब्राह्मणोंकी गोदीमें रख मंत्रियोंको

त्वद्देहवर्तिनीं छायां मां विजानीहि भूमिप ॥ कांतावचनसंतुष्टः प्रोवाच नृपतिः प्रियाम् ॥ २५ ॥ अतिधन्यासि सुश्रोणि न त्वां त्यक्ष्यामि सुंदरि ॥ एहि साकं मयारण्यं चरिष्ये दुश्चरं तपः ॥ २६ ॥ इतोऽष्टमादिनादूर्ध्वं मासोऽस्ति पुरुषोत्तमः ॥ तावत्तनूद्भवं ज्येष्ठं वरिष्ठं गुणभूषणम् ॥ २७ ॥ धर्मसंरक्षणार्थाय प्रशमायेतरस्य च ॥ इति निश्चित्य भूपालः पुत्रं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ २८ ॥ ब्राह्मणांके समाधाय मंत्रिषु न्यस्य सत्क्रियाः ॥ वरवैराग्यमापन्नो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २९ ॥ यतः प्रवर्तते गंगा स्वर्धुनी सरितां वरा ॥ तस्याः कूलं समाश्रित्य सपत्नीकः स्थितो मुनिः ॥ ३० ॥ प्राप्त हरिप्रियं वीक्ष्य तं मासं पुरुषोत्तमम् ॥ तपस्तेपे स धर्मात्मा निर्जरा येन विस्मिताः ॥ ३१ ॥ ऊर्ध्वबाहुर्लंबः पादांगुष्ठाश्रितावनिः ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्निराहारः स्थिरचित्तः समानतः ॥ ३२ ॥

लगाय महा वैराग्यको प्राप्त हो उत्तर दिशामें गमन किया ॥ २९ ॥ जहांसे नदीश्रेष्ठ गंगाजी प्रवृत्त होती हैं उसके किनारे स्त्रीसहित स्थित हुआ ॥ ३० ॥ फिर नारायणके प्रिय पुरुषोत्तम मासको आया देख उस धर्मात्माने इस किया जिससे देवता विस्मित हो गये ॥ ३१ ॥ ऊपरको भुजा उठाये निरालम्ब चरणके अँगूठेके बलसे पृथ्वी

स्थित हुए ऊपरको दृष्टि किये निराहार स्थिरचित्त समान वर्ण ॥ ३२ ॥ राजाको देखकर सिद्धजन धन्यवाद करने लगे और यह नारायण हरिको स्मरण करता परम जप करने लगा ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कृष्णपक्षकी त्रयोदशीतक उसको तप करते करते त्रयोदशीके दिन राजा अन्धकारसे परे ॥ ३४ ॥ देवताओंसे प्रार्थित नारायणके धामको गया. हे शौनक! उसी शरीरसे वह नारायणके लोकको चला गया ॥ ३५ ॥ वह स्त्रीभी अपने पतिको वैकुंठमें जाता देखकर कुछ मलिन मुख कर क्षणमात्रको दुःखी हुई ॥ ३६ ॥ और यूथसे भ्रष्ट हुई मृगीकी समान संभ्रान्तचित्त होगई और

धन्योऽयमिति सिद्धौघैः सादरं प्रविलोकितः ॥ जजाप परमं जाप्यं स्मरन्नारायणं हरिम् ॥ ३३ ॥ एवं प्रतपतस्तस्य यावत्कृष्णत्रयोदशी ॥ दिने तस्मिन्महीपालो जगाम तमसः परम् ॥ ३४ ॥ वैकुंठाख्यं हरेर्धाम स्पृहणीयं सुरैरपि ॥ तेनैव वपुषा विद्वन्गतोऽसौ हरिमंदिरम् ॥ ३५ ॥ सा नारी स्वपतिं वीक्ष्य यातं वैकुण्ठसद्मनि ॥ किंचिन्म्लानमुखी साध्वी क्षणं दुःखान्विताभवत् ॥ ३६ ॥ संभ्रांता यूथविभ्रष्टा मृगीवायतलोचना ॥ दृष्ट्वा निर्जरचक्रैश्च दिक्चक्रं वीक्ष्य विस्मिता ॥३७॥ स्थिता भूमौ विशुद्धेन स्वासनं परिकल्प्य च ॥पार्ष्णिना गुदमापीड्य वायुमुत्सारयच्छनैः ॥३८॥ ततः समानं नाभिस्थं कृत्वा सोपानमूर्ध्वगे ॥ हृदि प्राणं समाधाय प्राणं सोपानमूर्ध्वगम् ॥ ३९ ॥ आज्ञाचक्रमुपाधाय भ्रूमध्यमनयच्छनैः ॥ सर्वतो व्यानमाकृष्य तत्रानयि गतत्वरा ॥ ४० ॥

देवसमूहयुक्त निर्जरचक्रको देखकर विस्मित हुई ॥ ३७ ॥ और विशुद्ध आसनकी कल्पना कर पृथ्वीमें स्थित हुई एडीसे गुदास्थानको पीडित कर शनैःशनैः वायुको निकालती ॥ ३८ ॥ नाभिमें समान वायुको स्थित कर उसको पवनके जानेकी ऊर्ध्वसोपान बनाकर हृदयमें प्राणोंको समाधान कर ऊर्ध्वगामी सोपान कल्पना कर ॥ ३९ ॥ आज्ञाचक्रसे आगे शनैः २ भ्रूमध्यमें ले जाकर सब ओरसे व्यानको खैंचकर वहां ले जाय शीघ्रता

न कर ॥ ४० ॥ वह सुन्दरी हाथकी अंगुलियोंसे नासिकादिके छिद्रोंको रोक स्वामीके चरणोंका हृदयमें धारण कर जो उसनें चिरकालतक उपा-
सना कियेथे ॥ ४१ ॥ प्राण अपानकी गतिको रोक पापरहित हो वह सुन्दरी अग्निकी धारणा कर देहको भस्म करती हुई ॥ ४२ ॥ देहक्षयके
पहले उसका प्राण ब्रह्मरंध्र भेदकर उसके स्वामीके सालोक्यको गया जहां पतिव्रता जाती हैं ॥ ४३ ॥ इस प्रकार दृढधन्वा राजा इस मासकी उपा-
सना कर पुरुषोत्तम मासके माहात्म्यसे परमपदको गया ॥ ४४ ॥ मैं क्या वर्णन करूं कारण कि, मेरे एकही जिह्वा है. हे भृगुकुलोत्पन्न ! इस प्रकारके

करांगुलीभिः संरुध्य खानि सर्वाणि सुंदरी ॥ भर्तृपादौ हृदि ध्यात्वा चिरोपास्तावतिप्रियौ ॥ ४१ ॥ प्राणापानगती
रुद्ध्वा साध्वी विगतकल्मषा ॥ कृत्वाग्निधारणां देहं भस्मीभूतं चकार सा ॥ ४२ ॥ सा च देहक्षयादर्वागास्फोट्य ब्रह्मरं-
ध्रतः ॥ जगाम भर्तृसालोक्यं यत्र यांति पतिव्रताः ॥ ४३ ॥ एवमाराध्यमासाद्य दृढधन्वा महीपतिः ॥ पुरुषोत्तममा-
हात्म्याज्जगाम परमं पदम् ॥ ४४ ॥ वर्णयामि किमद्याहं यदेका रसना मम ॥ नेदृशोऽस्ति महामासः सत्यं सत्यं भृगू-
द्वह ॥ ४५ ॥ इहलोकेऽतुलं सौख्यं परलोकेऽतुलां गतिम् ॥ पूजितो भगवान्यस्मिन्कोटिकल्मषनाशकृत् ॥ ४६ ॥
व्याजेनापि कृते ह्यस्मिन्स्नाने दाने कृते शुभे ॥ कोटिजन्मकृतानेककिल्बिषौघनिकृंतनम् ॥ ४७ ॥ जायते मुनि-
शार्दूल यथा शाखामृगो गतः ॥ अज्ञानतः कृतेनापि त्रिरात्रस्नानमात्रतः ॥ ४८ ॥ पुराकृतानां दुर्गाणां कर्मणां निष्कृतिः
प्रभो ॥ ततो विश्वंभरप्राप्तिर्महिमा वर्ण्यते किमु ॥ ४९ ॥

माहात्म्यसे युक्त कोई महीना नहीं है ॥ ४५ ॥ जिससे इस लोकमें अतुल सुख और परलोकमें अतुलगतिकी प्राप्ति हो जिसने करोडों पापके दूर करनेवाले
भगवान्‌का उस मासमें पूजन किया है ॥ ४६ ॥ और किसी बहानेसे भी इसमें स्नान दान किया है तो करोडों जन्मके अनेक पाप नाश हो जाते
हैं ॥ ४७ ॥ हे मुनिराज ! इस प्रकार एक वानरराज अज्ञानसे तीन दिन स्नान करके पातकरहित होगया ॥ ४८ ॥ हे प्रभो ! उसके कठिन पुरातन

पाप नष्ट होगये; फिर विश्वम्भरकी प्राप्ति हुई है. इसकी महिमा हम तुमसे क्या कहैं ॥ ४९ ॥ वानरकी क्या श्रद्धा है जिससे नारायण प्रसन्न होजाते हैं तीन दिन स्नान करने मात्रसे वडी शक्ति हो जाती है ॥ ५० ॥ अहो अज्ञानी मनुष्य इस मासका सेवन क्यों नहीं करते इसमें विष्णुका प्रिय माहात्म्य विख्यात है ॥ ५१ ॥ वे धन्य और पुण्यात्मा हैं जो पुरुषोत्तमको जानते हैं नामसेही मनुष्यको पवित्र कर देता है; दान जपकी कौन कहै ॥ ५२ ॥ दूसरे उपयोगी फलोंको मुखरोगके कारण त्यागन करकेही इस दानसे एक कपिराज उत्तम गतिको प्राप्त हुआ ॥ ५३ ॥

का नाम वानरश्रद्धा यया तुष्टो हरिः स्वयम् ॥ त्रिरात्रस्नानमात्रेण वस्तुशक्तिर्बलीयसी ॥ ५० ॥ अहो नरैर्मूढतरैः किमु मासो न सेव्यते ॥ विष्णुप्रियं प्रतापाढ्यमुत्तमं पुरुषोत्तमम् ॥ ५१ ॥ ते धन्याः कृतपुण्यास्ते ज्ञातो यैः पुरुषोत्तमः ॥ नाम्नापि पावयत्यज्ञं किमु दानजपादिभिः ॥ ५२ ॥ मुखरोगपरित्यक्तफलैरन्यापयोगिभिः ॥ एतद्दानेन कपिराड्गतो गतिमनुत्तमाम् ॥ ५३ ॥ इति श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वनः सपत्नीकस्य वैकुण्ठप्राप्तिवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ छ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग विस्मयो मे महानिह ॥ सर्वार्थसाधनो देहो मानुषोऽयमिति श्रुतः ॥ १ ॥ अन्येषु सर्वदेहेषु साधने न मतिर्भवेत् ॥ कथं शाखामृगोऽप्यद्धा मुक्तो यस्य प्रभावतः ॥ २ ॥ किमसौ वर्ण्यते वीर मासो वै पुरुषोत्तमः ॥ कथयस्व कथामेतां मम चित्तप्रसादिनीम् ॥ ३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये दृढधन्वनः सपत्नीकस्य वैकुण्ठप्राप्तिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ शौनकजी बोले ॥ हे महाभाग सूतजी ! इसमें मुझको महान् विस्मय है यह मनुष्यदेह सम्पूर्ण अर्थका साधन करनेवाला ऐसा विख्यात है ॥ १ ॥ और सम्पूर्ण देहोंमें साधनमें मति नहीं होती शाखामृग इसके प्रभावसे कैसे मुक्त होगया ॥ २ ॥ हे वीर ! क्या पुरुषोत्तममासकी यह भी महिमा है हमारे चित्त प्रसन्न करनेवाली यह कथा

कहिये ॥ ३ ॥ हे सूतनन्दन ! तीन दिनतक उसने कहां व्रत कियाथा इस कपिका क्या नाम क्या आहार और क्या आचार था तथा यह कहां रहता था ॥ ४ ॥ आप पुरुषोत्तममाहात्म्य विस्तारसे कहिये आपसे कथामृत श्रवण करनेसे मेरी तृप्ति नहीं होती है ॥ ५ ॥ सूतजी बोले ॥ हे द्विजराज ! मैं सावधानतासे इस कथाको विस्तारसे कहता हूं जिसके सुननेसे पापसमूह नष्ट होजाते हैं ॥ ६ ॥ कोई केरलदेशनिवासी ब्राह्मण वडा लोभी था नित्यही धन संग्रह करनेमें तत्पर मधुमक्षिकाकी समान था ॥ ७ ॥ इसी कर्मसे लोकमें उसको कदर्य कहते थे, इससे पहले उसका चित्रक नाम था ॥ ८ ॥

कुत्रासौ कृतवान्कृत्यं त्रिरात्रं सूतनंदन ॥ कोऽसौ कपिः किमाहारः किमाचारः कुतो वसन् ॥ ४ ॥ वद श्रीकृष्णमासस्य माहात्म्यमतिविस्तरात् ॥ न तृप्तजायते त्वत्तः शृण्वतो मे कथामृतम् ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ द्विजराज कथामेतां वर्णयामि समाहितः ॥ यद्विश्रुतिसुपर्णेन लीयन्ते कल्मषाहयः ॥ ६ ॥ कश्चित्केरलदेशीयो द्विजः परमलोभवान् ॥ नित्यं धनचये दक्षः सरघावद्धसुप्रियः ॥ ७ ॥ लोके कदर्य इत्याख्यां गतस्तेनैव कर्मणा ॥ चित्रकेति पुरा नाम तस्याभूत्पितृकल्पितम् ॥ ८ ॥ नान्नमश्नाति नो वस्त्रं परिधत्ते शुभं क्वचित् ॥ न जुहोति ददात्यन्नं न कदापि द्विजातये ॥ ९ ॥ महाश्रमेण सततमकरोद्भूरिसंचयम् ॥ पंचसूनादोषनाशनिमित्तं न चकार सः ॥ १० ॥ पितृपक्षे पितृदिने न श्राद्धं कृतवानसौ ॥ न च माघे कृतं तेन तिलदानं कदाचन ॥ ११ ॥ कार्तिके दीपदानं च नारायणपदाप्तये ॥ वैशाखे धान्यदानानि व्यतीपाते कदाचन ॥ १२ ॥

न वह कभी अच्छा अन्न खाता न अच्छा वस्त्र पहरता न होम करता और न कभी ब्राह्मणोंको दान करताथा ॥ ९ ॥ केवल अपने स्थानमें धनसंचय करता था. तथा पांच स्थानोंमें जो नित्य हत्या होती है उसके दोप शान्त करनेके निमित्तभी उसने कुछ नहीं किया ॥ १० ॥ पितृपक्षमें पिताके निमित्त कुछ दान न किया न श्राद्ध किया न कभी माघ महीनेमें तिलदान किया ॥ ११ ॥ न नारायणपदकी प्राप्तिके निमित्त कार्तिकमें

दीपदान किया वैशाख और व्यतीपातमें न कभी धान्यदान किया ॥ १२ ॥ दही बूरा गुडयुक्त लड्डू तथा वैधृतयोगमें चांदीका दान द्वादशीमें अन्नदान ॥ १३ ॥ तथा संक्रान्ति और चन्द्र सूर्यके ग्रहणमें भी कभी कुछ दान न किया कृपणवासनायुक्त सर्वत्र दीन वाक्य बोलताथा ॥ १४ ॥ अहो मैं बडा भूंखा हूं मेरे पास कुछ नहीं है चौथे वा पांचवें दिन कभी एक समय भोजन मिलनेपर खाताथा ॥ १५ ॥ और जो कभी अधिक मिलगया तो उसे एकान्तमें बेंचलेताथा बडे पुराने कपडे लपेटे विचरण करताथा ॥ १६ ॥ वर्षा पवन धूप शीत झेलनेसे नित्य

दधि च शर्करा चैव गुडमिश्रं न लड्डुकम् ॥ वैधृतौ रूप्यदानं च द्वादश्यामन्नमेव च ॥ १३ ॥ संक्रमे चैव नो दत्तं चन्द्रसूर्यग्रहे किमु ॥ सर्वत्र दीनवाक्यानि वक्ति कृपणवासनः ॥ १४ ॥ अहो बुभुक्षितोऽत्यंतं मम किंचिन्न विद्यते ॥ चतुर्थे पंचमे वापि भुंक्तेऽसौ वासरे शठः ॥ १५ ॥ कदाचिन्नियतं लब्धं विक्रीणाति रहः कुधीः ॥ जीर्णेन वाससाच्छन्नः पापकृद्विचरत्यसौ ॥ १६ ॥ वर्षवातातपैः शीतैर्नित्यं श्यामकलेवरः ॥ बभ्राम पृथिवीं सर्वां महालौल्यातिपीडितः ॥ १७ ॥ तस्यातिमित्रं सद्वाटीपतिः काश्चिद्वनेचरः ॥ मालाकारः प्रसन्नात्मा दीनं ज्ञात्वाऽकरोत्कृपाम् ॥ १८ ॥ धिक्कृतं सर्वलोकेषु स्थितिं तत्र चकार सः ॥ नित्यं तन्निकटस्थायी तस्याज्ञापरिपालकः ॥ १९ ॥ अतिविश्वस्तचित्तेन तेनासौ वाटिकावने ॥ कृतः सर्वात्मना सम्यङ् ममायामिति बुद्धिना ॥ २० ॥

श्यामशरीर होगयाथा और महाचंचलतासे पीडित हो सारी पृथ्वीमें भ्रमण करताथा ॥ १७ ॥ उसका एक मित्र वाटीपती वनचर था यह मालाका बनानेवाला प्रसन्नात्मा इसको दीन जान सदा कृपा करताथा ॥ १८ ॥ कारण कि यह सब लोगोंसे धिक्कारको प्राप्त हो वहीं निवास करताथा यह नित्य उसके निकट रहकर उसकी आज्ञा मानता था ॥ १९ ॥ यह उसके साथ वाटिकावनमें बडे विश्वस्त चित्तसे रहताथा और अपनेहीकी समान मानकर वह फलादि लेलेता ॥ २० ॥

वह माली राजकाजमें लगनेके कारण उस बगीचामें नहीं आता और कभी स्वामीके साथ कहीं चला जाताथा कभी शीघ्र चला आता ॥ २१ ॥ उस समय यह फलोंको तोडकर खाता और संचय करताथा पक्के फल खाता और बेंचभी डालताथा ॥ २२ ॥ और उस द्रव्यको आशंकित हो स्वयं ग्रहण करलेताथा जब वनका स्वामी पूछता तब लज्जा त्याग उत्तर देताथा ॥ २३ ॥ मैं तो सदा भिक्षा लाताहूं और सदा तुम्हारे वनकी सेवा करता हूं तोभी पक्षी बहुतसे फल भक्षण करजाते हैं ॥ २४ ॥ देखो कुछ पक्षियोंको मैंने माराभी है उनके अस्थि और मांस पडेहुए हैं ॥ २५ ॥ उस

राजकार्यगरीयस्त्वान्नायाति वाटिकावनम् ॥ कदाचित्स्वामिना सार्द्धं समायाति स सत्वरम् ॥ २१ ॥ चित्रकः सततं चिन्वन्भक्षयन्फलसंचयम् ॥ पक्कान्यश्नन्स्वयं नित्यं विक्रीणन्सफलानि च ॥ २२ ॥ द्रविणं तद्भवं सर्वं स्वयं गृह्णात्यशंकया ॥ यदापृच्छद्वनाधीशस्तदा वदति निस्त्रपः ॥ २३ ॥ भिक्षामश्नामि सततं परिचर्यामि ते वनम् ॥ तथापि पत्रिणः सर्वे फलान्यश्नंति नित्यशः ॥ २४ ॥ पश्यान्तो मया केचिन्नाशिता गगनेचराः ॥ तेपामस्थीनि मांसानि पिच्छानि पतितानि च ॥ २५ ॥ प्रत्ययार्थं वधं चक्रे पक्षिणां वसुलोलुपः ॥ एवं प्रवर्त्तमानस्य जग्मुर्वर्षाणि दुर्धियः ॥ २६ ॥ सप्ताशीतिर्द्विजेशानो जराजर्जरितस्तदा ॥ कृतांतलुलितः कालकल्पदर्वीकरार्दितः ॥ २७ ॥ तमीयुः सहसा कालानुचराः कृष्णपिंगलाः ॥ यदालोकनतः सद्यो जीर्णं हृदयपंजरम् ॥ २८ ॥ ममार मूढधीनासौ लब्धवानग्निसत्क्रियाम् ॥ पापानि फलदानि स्युर्ना भुक्त्वा प्रव्रजंति हि ॥ २९ ॥

लालचीने उसके विश्वासके निमित्त पक्षियोंका वध किया इस प्रकार उस दुर्बुद्धिको बहुत दीन बीतगये ॥ २६ ॥ सतासी वर्षकी अवस्थामें शरीर जराग्रस्त होगया उस समय कालरूपी सर्पने उसको दबाया ॥ २७ ॥ कृष्णपिंगल नेत्रवाले यमके दूत उसके निकट गये जिनके देखनेसे हृदयपंजर शीघ्रही जीर्ण होजाय ॥ २८ ॥ अन्तमें उस दुर्बुद्धिकी मृत्यु हुई और अग्निसंस्कारभी प्राप्त न हुआ पाप अभक्तोंको बहुत शीघ्रफल देते हैं विना भोगे नहीं जाते ॥ २९ ॥

सौरिसेविकराकृष्टः स्रवन्नयननीरवान् ॥ हाहाकुर्वन्महानादं कशाघातनिपीडितः ॥ ३० ॥ जगाम कृच्छ्रतो मार्गमपुण्यजनभीषणम् ॥ स्मरन्पूर्वकृतं कर्म प्रलपन्गद्गदाक्षरम् ॥ ३१ ॥ अहो हा पश्यताज्ञानं ममानार्यस्य दुर्मतेः ॥ आसाद्य मानुषं देहं दुर्लभं त्रिदशैरपि ॥ ३२ ॥ किं कृतं धनलोभेन व्यर्थं नीतं शुभं वयः ॥ किं करोमि पराधीनः कालपाशवशंगतः ॥ ३३ ॥ चिरकालार्जितं सर्वं महायासैः कुमेधसा ॥ किं करोमि पराधीनः कालपाशवशंगतः ॥ ३४ ॥ न मया मानुषं जन्म लब्ध्वा किंचिच्छुभं कृतम् ॥ हुतं न ह्यग्नौ किंचिच्च न दत्तं दानमर्थिने ॥ ३५ ॥ क्षुधिते नान्नमुत्सृष्टं न नीरं तृषिते जने ॥ तिलोदकं पितृभ्योऽपि न सुरेभ्यो यवोदकम् ॥ ३६ ॥ न माघे श्यामलश्वेते पानीये मज्जनं कृतम् ॥ न माधवे मुक्तिकर्तृनर्मदामज्जनाच्छुचिः ॥ ३७ ॥ त्रिरात्रमुषितो नापि श्रीमत्सारस्वते तटे ॥ न कालिंदीतटं दिव्यमाश्रितः सप्तवासरम् ॥ ३८ ॥

यमदूतोंसे घसीटा हुआ नेत्रोंसे जल बहाता कोडोंके आघातसे हाहाकार करता ॥ ३० ॥ पापात्माओंके भीषण मार्गमें गमन करने लगा और पूर्वजन्मके किये अपने अपराधको स्मरण कर गद्गद स्वरसे रुदन करने लगा ॥ ३१ ॥ और कहने लगा; अहो ! मुझ अनाडी दुर्बुद्धिका अज्ञान तो देखो जो देवताओंकोभी दुर्लभ मानुष देहको प्राप्त होकर ॥ ३२ ॥ धनके लोभसे अपना सुन्दर शरीर व्यर्थ गमादिया; अब पराधीन कालपाशके वशीभूत हुआ मैं क्या करूं ॥ ३३ ॥ मुझ कुबुद्धिने सब कार्य चिरकालके उपार्जन योग नष्ट कर दिये अब मृत्युपाशके वशीभूत हुआ मैं क्या करूं ॥ ३४ ॥ मैंने मनुष्यजन्मको पायकर कुछभी शुभ कार्य न किया न अग्निमें हवन और अर्थीको कुछ दान दिया ॥ ३५ ॥ न भूँखेको अन्न और न प्यासेको पानी दिया पितरोंको तिलोदक और न देवताओंको यव और जल दिया ॥ ३६ ॥ न माघमें गंगा यमुनामें स्नान किया न वैशाखमें मुक्तिदाता नर्मदामें स्नान किया ॥ ३७ ॥ न सरस्वतीके किनारे तीन रात स्नान किया न यमुनाके किनारे सात दिन निवास किया ॥ ३८ ॥

और मुझ पापीने एकही बारमें करोडों पापोंको दूर करनेवाली गंगाका सेवन नहीं किया ॥ ३९ ॥ और तो क्या मुझ पापात्मा दुष्टबुद्धिने विष्णुके प्रिय पुरुषोत्तममासमें कहीं स्नानतकभी न किया ॥ ४० ॥ न मैंने हरिके प्रिय महीनेमें गंगाका सेवन किया गोमती कावेरी वा यमुनामें कभी स्नान न किया ॥ ४१ ॥ सरस्वती क्षिप्राका कभी सेवन न किया अहो मेरा संचित द्रव्य निरर्थक भूमिमें पडा रहगया ॥ ४२ ॥ जबतक जिया तबतक दुर्बुद्धिसे आत्माको क्लेश दिया कभी मैंने जठराग्निको तृप्त नहीं किया और न कभी अपने देहको वस्त्रसे आच्छादित किया जातिके बन्धु तथा पार्श्ववर्ती

सद्यः पातककोटचोघशोषिशुभ्रसुरापगा ॥ विगाहिता महापुण्या नैव दुष्कृतकारिणा ॥ ३९ ॥ न च विष्णुप्रिये मासे विख्याते पुरुषोत्तमे ॥ कुत्रापि स्नातवान्मूढो नाहं पाप्मातिदुष्टधीः ॥ ४० ॥ न मया सेविता गंगा श्रीमन्मासे हरिप्रिये ॥ गोमती वापि कावेरी प्रिया वापि कलिंदजा ॥ ४१ ॥ ख्याता सरस्वती क्षिप्रा या वा कापि समुद्रगा ॥ अहो मत्संचितं द्रव्यं स्थितं भूमौ निरर्थकम् ॥ ४२ ॥ यावज्जीवं परिक्लिष्टः स्वात्मा दुर्बुद्धिना मया ॥ कदापि जाठरो वह्निर्नान्नैः संतर्पितो मया ॥४३॥ नापि सद्वाससाच्छन्नः स्वदेहः कृपणात्मना ॥ न ज्ञातयो बांधवाश्च स्वजनाः पार्श्ववर्तिनः ॥४४॥ भागिनेयाः सुता जामिर्जनित्री जनकोऽनुजाः ॥ वध्वोऽनुजांगना जाया ह्यन्येऽपि मानवास्तथा ॥४५॥ सदन्नैरेकवारं च तर्पिता न मया क्वचित् ॥ अष्टचत्वारिंशकेषु संस्कारेषु न मेऽभवत् ॥४६॥ संस्कारो मानुषे देहे दुर्गतिं येन नाप्नुयाम् ॥ कां गतिं नु गमिष्यामि तरण्यात्मजलंभिताम् ॥ ४७ ॥

स्वजन ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ भानजे भगिनी पुत्र यामि माता पिता छोटे भाईकी स्त्री स्त्री उनका सम्बन्धवाला तथा दूसरे मनुष्य ॥ ४५ ॥ अच्छे अन्नसे कभी मैंने तृप्त नहीं किये अडतालीस संस्कारोंमें एकभी मैंने सेवन नहीं किया ॥ ४६ ॥ मनुष्यदेहका संस्कार न होनेसेही दुर्गति होती है मैं आत्मवचन करनेवाला किस गतिको प्राप्त हूंगा ॥ ४७ ॥

अब मैं अपने कृत्यको भोगूंगा मेरी मुक्ति कभी न होगी इस प्रकार उस विलाप करते हुएको दूत यमके लोकको लेगये ॥ ४८ ॥ उसकी आज्ञासे तत्काल इसको प्रेतयोनि मिली पीछे यमराजने मंत्रीसे कहा ॥ ४९ ॥ हमारी आज्ञासे सौवर्षतक प्रेतयोनि दो; कारण कि यह दुर्बुद्धि है इसे बडा दारुण प्रेतत्वप्रदान करो ॥ ५० ॥ इसने सदा पराये अपरिमित अन्न भक्षण किये हैं और फल चुराये हैं इस कारण इसको यह योनि दो ॥ ५१ ॥ फिर तेरह जन्म इसको भयंकर वानरके दो वर्षा वात गरमी हिम क्षुधा तृषा व्याधि भयसे व्याकुल रहे ॥ ५२ ॥ पीछे इसको मैं अनेक

भुक्त्वा जीवकृतं कर्म मुक्तिर्नास्ति कदापि मे ॥ एवं विलपमानं तं निन्युर्वैवस्वतांतिकम् ॥ ४८ ॥ तदाज्ञया प्रेतयोनिमापन्नस्तत्क्षणादसौ ॥ पश्चात्तमूचिवान्सोरिरभ्यर्णासन्नमंत्रिणः ॥४९॥ अहोऽयं नीयतां विप्रः पापबुद्धिर्मदाज्ञया ॥ शतायुतानि वर्षाणां प्रेतत्वमतिदारुणम् ॥ ५० ॥ परकीयाणि भुक्तानि सुधाकल्पान्यसंख्यया ॥ फलान्यनेन चौर्येण तस्मादस्मै प्रदीयताम् ॥५१॥ त्रयोदशायुतं कृत्वा कपिजन्मभयप्रदम् ॥ वर्षवातातपहिमक्षुत्तृड्व्याधिभयाकुलम् ॥५२॥ पश्चादहं प्रदास्यामि बह्वीर्नरकयातनाः ॥ दशार्बुदानि वर्षाणि प्रातिकुंडं निवत्स्यति ॥ ५३ ॥ इति तेन समादिष्टा मंत्रिणो भीषणाननाः ॥ तदा चक्रुः प्रभोराज्ञां दुष्टविप्रे समाहिताः ॥ ५४ ॥ प्रेतदेहं ततो भुक्त्वा कानने द्रुमवर्जिते ॥ निर्जले बहुकालं स कपित्वमगमद्द्विजः ॥ ५५ ॥ दिव्ये कालंजरे शैले जंबूखंडे मनोहरे ॥ तत्र दिव्यसरः प्रख्यं कुंडं शक्रविनिर्मितम् ॥ ५६ ॥ कुररीमुररीकृत्य कुररः किल कूजति ॥ यत्रोच्छलज्जलच्छन्नपक्षच्छायालसच्छुचे ॥ ५७ ॥

नरककी यातना दूंगा यह दशदश अर्ब वर्ष प्रत्येक नरककुंडमें निवास करैगा ॥ ५३ ॥ जब इस प्रकार भयंकर मुखवाले मंत्रियोंको उन्होंने आज्ञा दी तब वे उस दुष्ट विप्रकी वही दशा करने लगे ॥ ५४ ॥ तब वह वृक्षरहित वनमें प्रेतदेह भोगकर फिर निर्जन स्थानमें वानरके शरीरको प्राप्त हुआ ॥ ५५ ॥ दिव्य कालिंजर पर्वतके मनोहर जम्बूखण्डमें वहां एक दिव्य सरोवर इन्द्रका बनायाथा ॥ ५६ ॥ जहांके जलके समीप कुररी पक्षी बोलतेथे जहांके

॥५७॥ वह मृगतीर्थनामसे विख्यात देवताओंको दुर्लभ था जहां प्राप्त हो पितर अपनी गतिको
जलके उछलनेस पक्षछायाकी समान छाबि दीखती थी ॥५७॥ वह मृगतीर्थनामसे विख्यात देवताओंको दुर्लभ था जहां प्राप्त हो पितर अपनी गतिको
प्राप्त हुएथे ॥५८॥ किंचित् कारणके उद्देशसे यह मृगरूपी होगया सो यह दुष्ट पहले जन्मके कपित्वको प्राप्त हुआ ॥५९॥ शौनकजी बोले ॥ हे सूतजी
यह तो आप कहिये कि अनेक पातक करनेवाला वह शाखामृग किस प्रकारसे इस त्रिलोकीके पवित्र करनेवाले तीर्थमें निवास करता हुआ ॥ ६० ॥
सूतजी बोले ॥ हे शौनकजी ! धन्य हो आपने मुझे कृतकृत्य करदिया इसमें एक साधारण पुरातन कारण है ॥६१॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तम-

मृगतीर्थमिति ख्यात सुराणामपि दुर्लभम् ॥ यत्रेयुः स्वर्गतिं शुभ्रां पितरं पूर्वदैहिकीम् ॥ ५८ ॥ किंञ्चित्कारणमुद्दिश्य
जाता ये मृगरूपिणः ॥ तत्रासौ प्रथमं जन्म कपित्वं लब्धवान्खलः ॥ ५९ ॥ शौनक उवाच ॥ पौराणिक मम ब्रूहि
तर्थि त्रैलोक्यपावने ॥ उवास स कथं शाखामृगः पातककोटिमान् ॥ ६० ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मन्धन्योऽसि सच्छ्रोता
कृतकृत्योऽस्म्यहं त्वया ॥ सामान्यं कारणं किंचिदत्रास्त्यतिपुरातनम् ॥६१॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये
कदर्यविप्राख्यान एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ यदा दाशरथी रामो नाममात्रभयापहः ॥ यन्नामस्मृति-
मात्रेण तरेदंजो भवांबुधिम् ॥ १ ॥हतवान्रावणं युद्धे बध्वा सेतुं महोदधौ ॥ बिभीषणादृते कोऽपि राक्षसो नावशे-
षितः ॥ २ ॥ ततस्तनूनपाच्छुद्धा जानकी स्वीकृतामुना ॥ रावणे च हते तस्मिन्ब्रह्मरुद्रसुरेश्वरैः ॥ ३ ॥ प्रीतैर्वरं
वृणीष्वेति वचस्युक्ते ततोऽब्रवीत् ॥ रामो राजीवपत्राक्षः कालकोटिदुरासदः ॥ ४ ॥

माहात्म्ये कदर्यविप्राख्याने एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ सूतजी बोले ॥ जिस समय दशरथपुत्र रामचन्द्र नाममात्रसेही भयके दूर करनेवाले कि
जिनके नामस्मरणमात्रसे मनुष्य संसारसागरसे पार होजाता है ॥ १ ॥ सागरमें पुल बांधकर रावण शत्रुको मारते हुए केवल एक विभीषणजी
अवशेष रहे ॥ २ ॥ और फिर जानकीजी अग्निके द्वारा शुद्ध हुईं और रावणके मरनेपर ब्रह्मा रुद्र सुरेश्वर ॥ ३ ॥ प्रसन्न हो रामसे कहने लगे

कि आप वर मांगिये यह सुन रघुनाथजी बोले जो कमललोचन गण कालकी समान दुरानद हैं ॥ ४ ॥ वे बोले हे देवताओ ! यदि वरदान देतेहो तो यह शूर वानर रीछ जो राक्षसोंसे मारेगये हैं ॥ ५ ॥ यह मेरे हितकारी होनेसे क्षतरहित हो पुनर्जीवित होजांय और यह वीर जिस जिस वनमें निवास करें ॥ ६ ॥ वहां वहांके वृक्ष पत्र पुष्प फल छायासे युक्त हों वहां सुन्दर जल और शीतल वन होजांय ॥ ७ ॥ हे देवताओ ! मुझे यह वर दो यह वानरजाति मेरी प्रिय है. ऐसाही हो; यह कह देवता स्वर्गको गये ॥ ८ ॥ इससे रामके प्रभावसे जहां कहीं शाखामृग होता है वहां वन फल पानी

सुराः शृणुध्वं मे वाक्यं यदि देयो वरोऽस्ति मे ॥ एते वै वानराः शूरा रक्षोभिर्भक्षिता हताः ॥ ५ ॥ अक्षता जीवमानास्ते संतु मत्प्रियकारिणः ॥ यत्रयत्र वने वीरा वसेयुर्मे वनेचराः ॥ ६ ॥ पत्रपुष्पफलैर्नम्राः सुच्छायाः संतु ते द्रुमाः ॥ करलभ्यानि वारीणि शीतलानि वनानि च ॥ ७ ॥ एषोऽस्तु मे वरो देवाः कपिजातिर्मम प्रिया ॥ तथेत्युक्ते तु ते सर्वे जग्मुर्देवास्त्रिविष्टपम् ॥ ८ ॥ अतो रामप्रभावेण यत्र शाखामृगो भवेत् ॥ तद्वनं फलपानीयपुष्पपत्रचयावहम् ॥ ९ ॥ परंतु पापपुण्याभ्यां सुखदुःखान्यनुव्रजेत् ॥ महावानररूपेण ववृधे पर्वतोपमः ॥ १० ॥ क्षुधातुरोऽतिपापेन दीर्घतृडतिलोलुपः ॥ जन्मतस्तस्यवक्त्रेऽभूद्व्यथा परमदारुणा ॥ ११ ॥ यया नवनवस्रावि शोणितं वर्त्ततेऽनिशम् ॥ अत्यंतवेदनाविष्टो भोक्तुं किंचिच्छशाक न ॥ १२ ॥ पानीयमपि नो पातुं सेहे प्राक्तनकर्मतः ॥ स च वानरचापल्याद्द्रुमेभ्यः फलकोटयः ॥ १३ ॥ लुनाति वदनाभ्याशमानीय त्यजति त्वरन् ॥ समिद्धो जाठरो वह्निरनिशं दहते भृशम् ॥ १४ ॥

पुष्प पत्रादिसे युक्त होताहै ॥ ९ ॥ परन्तु पाप पुण्यके अनुसार सुख दुःख उनके पीछे जाता है वह बडे वानररूपसे पर्वतकी समान बढा ॥ १० ॥ और बडे पापसे क्षुधातुर हो दीर्घ प्याससे व्याकुल होनेलगा और जन्मसेही उसके मुखमें दारुण व्यथा हुई ॥ ११ ॥ निरन्तर उसमेंसे रुधिर और राद निकलतीथी और अत्यन्त वेदनाको प्राप्त हो वह कुछ खानेको समर्थ न हुआ ॥ १२ ॥ पूर्वजन्मके पापसे वह जलभी पान नहीं करसकताथा परन्तु चपलतासे वृक्षोंके अनेक फल तोड डालता ॥ १३ ॥ परन्तु खा नहीं सकता इससे बडा कष्ट होता जठराग्नि उसको महाकष्ट देती ॥ १४ ॥

तृषाते सब अंग व्याकुल कंठ सूखगये इधर उधर लोटता हुआ महावेदनाको प्राप्त हुआ ॥ १५ ॥ इस वृक्षसे उस वृक्षपर घूमता हुआ मृत्युकोही सुख-
दायक मानता हुआ कभी पृथ्वीमें गिरकर महाशब्द करता था ॥ १६ ॥ और बडी ग्लानिको प्राप्त होता जैसे जलसे भ्रष्ट मच्छी, वानरी चपलतासे
फिर इधर उधर धावमान होता ॥ १७ ॥ इस प्रकार क्षुधासे व्याकुल हो भ्रमण करताथा रुधिर गिरने और व्रण होनेसे उसके दांत गिरगये ॥ १८॥
इस प्रकार उसके नित्य निराहार रहनेसे दैवयोगसे पुरुषोत्तममास प्राप्त होगया ॥ १९ ॥ उस महीनेमेंभी शीत वातादिसे व्याकुल वह उसी प्रकार स्थित

तृषाकुलितसर्वांगः सशुष्कगलकंदरः॥ इतस्ततो लुण्ठमानो ह्यतीव वेदनातुरः ॥ १५ ॥ द्रुमाद्द्रुमं भ्रमन्दीनो मेने मृत्युं
सुखावहम् ॥ कदाचित्पतते पृथ्व्यां जल्पते विकलस्वरम् ॥१६॥ रौति ग्लानिमवाप्नोति नीरभ्रष्टो यथा झषः ॥ कापे-
यचापलत्वेन भ्रमन्गच्छति वासरम् ॥ १७ ॥ एवं क्षुधासमाविष्टः श्लथद्गात्रो वमन्मुखः ॥ पेतुर्दंतास्ततः सर्वे व्रणिनो
रुधिराप्लुताः ॥ १८ ॥ एवं प्रवर्ततस्तस्य निराहारस्य नित्यशः ॥ दैवयोगादुपागच्छत्स श्रीमान्पुरुषोत्तमः ॥ १९ ॥
तस्मिन्नपि तथैवास्ते शीतवातातपादिपाट् ॥ कदाचिद्बहुले पक्षे विचरन्गहने वने ॥ २० ॥ तृषितः कुंडनिकटे पानीयं
नापिबत्क्वचित् ॥ क्षुधितश्चपलत्वेन तत्रोच्चैर्वृक्षमारुहत् ॥ २१ ॥ वृक्षाद्वृक्षान्तरं गच्छन्न्यपतज्जलकुंडके ॥ चिरंतनानि-
राहाराच्छुष्कसर्वेंद्रियप्रभः ॥२२॥ निर्बलः शिथिलप्राणः पतन्निव विनिर्गतः ॥ भ्रमतीतस्ततस्तत्र भुजाभ्यां वारि
दोलयन् ॥ २३ ॥ सोपानमाजगामाशु पतञ्छैवालतः क्षणात् ॥ न च कश्चित्समागत्य वारयामास वानरम् ॥ २४ ॥

रहा. कदाचित् गहन वनमें विचरण करता हुआ ॥ २० ॥ प्यासा होकरभी कुंडके निकट जलपान न करसका और भूंखा हो चपलताके कारण वृक्षपर
चढगया ॥ २१ ॥ वृक्षसे वृक्षके ऊपर जाता हुआ जलके कुंडमें गिरपडा बहुत काल निराहार रहनेसे उसकी इंद्रियें सूख गईथीं ॥ २२ ॥ निर्बल और
शिथिलप्राण होकर उसमेंसे निकलने लगा और भुजाओंसे जलको ताडन करता फिरने लगा ॥ २३ ॥ फिर सोपानमार्गको प्राप्त होकर गिरपडा

परन्तु किसीने उसको निवारण न किया ॥ २४ ॥ इस प्रकार तीन दिनतक जलमें विचरतारहा वही उसका तप नारायणकी कृपासे होगया ॥ २५ ॥ तीसरे दिन दुपहरके समय वह वानर जलमें प्राणरहित होकर गिरपडा ॥ २६ ॥ और तत्काल वानरी शरीरको त्याग पापरहित हो शीघ्र देवत्वको प्राप्त हो बडे मनोहर शरीरसे शोभित हुआ ॥ २७ ॥ करोड कंदर्पकी समान शोभायमान नीले मेघकी समान कान्तिमान् स्फुरायमान किरीट और कंकण बिजलीकी समान कान्तिमान् ॥ २८ ॥ बाजूबंद अंगूठी हार खडुए नूपर पहरे कटिसूत्र यज्ञोपवीत धारे चलायमान मकराकृत कुंडलसे युक्त ॥ २९ ॥

एवं दिनत्रयं यावद्भ्राम जलमध्यतः ॥ तदेवास्य तपो जातं भगवत्कृपया द्विज ॥ २५ ॥ तृतीयदिवसे मध्यं गते भास्वति वानरः ॥ परासुरपतत्तीर्थवारिक्लिन्नकलेवरः ॥ २६ ॥ उत्सृज्य सहसा देहं कापेयं गतकल्मषः ॥ सद्यो देवत्वमापन्नो रेजेऽतीतमनोहरः ॥२७॥ कंदर्पकोटिलावण्यो नीलनीरदसन्निभः ॥ स्फुरत्किरीटवलयो विलसच्चपलांबरः ॥२८॥ केयूरमुद्रिकाहारो लसत्कटकनूपुरः ॥ कटिसूत्रो ब्रह्मसूत्रश्चलन्मकरकुंडलः ॥ २९ ॥ कांचीकलापविभ्राजत्कटिर्मणिमयांगदः ॥ त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रन्विभ्राजयन्दिशः ॥३०॥ नीलकुंचितसुस्निग्धचिकुरावृतसन्मुखः ॥ चतुर्बाहुर्लसन्मूर्त्तिर्यामिनीपतिसच्छविः ॥ ३१ ॥ तद्भासा काननं सर्वं रुरुचे कांचनप्रभम् ॥ यावदाक्रम्य गगनमास्थितः पुरुषोत्तमः ॥ ३२ ॥ तावद्विमानमागच्छद्धरिसेवकवेष्टितम् ॥ वीणामृदंगपटहपणवानकगोमुखान् ॥ ३३ ॥ भेरभेरीलसच्छंखनिःसाणमुरुजादिकान् ॥ वादयद्भिर्नरवरैराश्रितं बहुलोत्सवैः ॥ ३४ ॥

कांचीसमूहसे विराजित कमरमें मणिमय बाजूबंद पहरे त्रिलोकीको मोहनेवाला रूप किये सब दिशाओंको विराजित किये ॥ ३० ॥ नीले घूंघरवाले बालोंको धारण कर श्रेष्ठ शोभासे युक्त होकर चार भुजाओंसे युक्त मूर्ति चन्द्रवत्प्रियदर्शन ॥ ३१ ॥ उसकी कान्तिसे सारा वन प्रकाशित हो गया जबतक वह पुरुषोत्तम वनको आक्रमण कर स्थित होता है ॥ ३२ ॥ तबतक हरिके सेवकोंसे युक्त विमानको देखा वीणा मृदंग पटह पणव नामक बाजे बजने लगे ॥ ३३ ॥ भेर भेरीसे शोभित निशान मुरजादि बाजे बजने लगे उनको बजाते हुए मनुष्य बडे उत्सवको करने लगे ॥ ३४ ॥

चित्र विचित्र स्त्री चारोंओरसे उनको घेरने लगीं विद्याधर अप्सरा गंधर्व किन्नर उरग यह अनेक क्रियासे व्यग्र हो उसको देख प्रसन्न हुए ॥ ३६ ॥ यह अपनी दशा देखकर वह बडा विस्मित हुआ और कोई उनके ऊपर सुंदर छत्र चन्द्रमाकी समान ॥ ३७ ॥ धारण करता हुआ कोई जय उच्चारण करने लगा कोई चमर कोई ताम्बूल ग्रहण करता हुआ ॥ ३८ ॥ सहस्रों रत्नोंसे खचित सुवर्णके पात्रोंको कोई ग्रहण कर कोई उनमें अमृतकी समान जल

प्रमदाभिर्विचित्राभिरनुकूलाभिरावृतम् ॥ ३५ ॥ विद्याधरैरप्सरोभिर्गंधर्वैः किन्नरोरगैः ॥ नानासेवाक्रियाव्यग्रैस्त-दालोक्य महोत्सवैः ॥ ३६ ॥ विलोक्य विस्मितोऽतीव स्मृतपूर्वकृतावलिः ॥ कश्चित्तदुपरि च्छत्रं पांडुरं शशिभासुरम् ॥ ३७ ॥ दधार व्यजनैरेवं वीजयन्नुपरि स्थितम् ॥ चामरं जगृहे काश्चित्तांबूलान्यग्रतो परः ॥३८॥ खचितं रत्नसाहस्रैः पात्रं स्वर्णविनिर्मितम् ॥ काचिद्गृह्य स्थिताभ्यर्णं स्वर्धुनीवारिसंभृतम् ॥ ३९ ॥ पीयूषापूरितं पात्रं संगृह्य चापरा स्थिता ॥ काश्चिन्नृत्यविशेषेण तोषयामासुरीश्वरम् ॥ ४० ॥ काचिद्गानेन रम्येण वाद्यैरन्या सुशोभनैः ॥ एवं वैभवमालोक्य चित्रन्यस्त इवाभवत् ॥ ४१ ॥ किमेतत्केन पुण्येन प्राप्तोऽयं वै फलोदयः ॥ भ्रांतिर्ममाद्य संजाता इति संचिंतयन्स्थितः ॥४२॥ न तत्स्मरामि मत्कृत्यं येनाहं प्राप्तवानिदम् ॥ इति संशयमापन्नं विष्णुभृत्यौ तमूचतुः ॥४३॥

इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये विष्णुदूतागमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

भरकर उसके निकट स्थित हुए ॥३९॥ कोई अमृतमय पात्र ले उसके समीप स्थित हुई कोई उसको नृत्य करके संतुष्ट करने लगीं ॥४०॥ कोई मनोहर गान और बाजेसे इसे प्रसन्न करती हुई यह इस प्रकारका वैभव देख चित्र लिखेकी समान होगया ॥ ४१ ॥ यह क्या है और किस पुण्यके प्रतापसे मुझे प्राप्त हुआ है यह मुझे बडी भ्रांति है यह विचारता हुआ वह स्थित हुआ ॥ ४२ ॥ कि मुझे उस कृत्यका स्मरण नहीं होता जिसके प्रतापसे मैं इस गतिको प्राप्त हुआहूं इस प्रकार उस सन्देहको प्राप्त हुएसे विष्णुभक्त कहने लगे ॥ ४३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये विष्णुदूता-

गमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ विष्णुके दूत बोले हे प्रभो ! वैकुंठको जाओ बहुत कालतक क्यों विलम्ब करते हो तुमको सालोक्य मुक्ति प्राप्त हुई है मनमें संदेह न करो ॥ १ ॥ देवताने कहा अहो आश्चर्य है कि तुम मुझे ज्ञानसे वा अज्ञानसे लेनेको आगये हो मेरे तो बहुतसे कुत्सित कर्म भोगनेके हैं ॥ २ ॥ सो कौनसे कर्मसे मैं निष्क्रिय हो कर्मोंका आनंद भोगनेवाला हुआ जो मैंने पहले किया है वह ऐसा नहीं जो अनिष्टरूप न हो ॥ ३ ॥ जितनी वर्षाकी धारा अथवा पृथ्वीमें रजके कण हैं तथा जितनी तारा हैं उतनेही मेरे पाप हैं ॥ ४ ॥ यह सुन्दर चित्रमण्डप कैसा

विष्णुदूता ऊचुः ॥ प्रभो प्रयाहि वैकुंठं चिरं किमिह तिष्ठसि ॥ सार्ष्टिमुक्तिस्त्वया लब्धा मास्तु ते संशयो यदि ॥१॥ देव उवाच ॥ अहो ज्ञानादथाज्ञानान्नेतुं मां वामिहागतौ ॥ बहूनि मम कर्माणि संति भो गर्हितात्मनः ॥ २ ॥ केन मे निष्क्रयो जातः सहसोदयकर्मणाम् ॥ ना चेष्टं विद्यते कर्म न मया हि कृतं पुरा ॥ ३ ॥ यावन्त्यो वर्षतो धारास्तृणानि भुवि पांसवः ॥ द्युभासो गगने देवौ तावत्पापानि संति मे ॥ ४ ॥ किमेतद्दृश्यते चित्रं मंडपं हरिसुन्दरम् ॥ न याति प्रत्ययो मह्यं वैकुंठभुवनं प्रति ॥ ५ ॥ इति वाचमुपाकर्ण्य विष्णुदूतावथोचतुः ॥ नाथ नाथ किमेतत्ते ह्यज्ञानं साधनं कृतः ॥ ६ ॥ श्रीविष्णोराज्ञया त्वां वै नेतुमत्र समागतौ ॥ विष्णुप्रियो महापुण्यो नाम्ना यः पुरुषोत्तमः ॥ ७ ॥ यस्मिंस्त्वया तपश्चीर्णं यद्दुर्लभ्यं सुरैरपि ॥ अविज्ञातं महाराज कपिदेहेन यत्कृतम् ॥ ८ ॥ परोक्षं कानने कृत्यं तदनंत्याय कल्पते ॥ निरुपाधिप्रियो विष्णुः परोक्षं हरिवल्लभम् ॥ ९ ॥

दीखता है मैं वैकुण्ठके योग्य हूं यह मुझे विश्वास नहीं आता ॥ ५ ॥ वह वचन सुन विष्णुके दूत कहने लगे हे स्वामिन् ! आपको यह क्या अज्ञान साधन कुछ नहीं है ॥ ६ ॥ हम विष्णु भगवान्की आज्ञाहीसे तुमको लेने आये हैं जो विष्णुका प्रिय पुरुषोत्तम मास है ॥ ७ ॥ इसमें देवताओंकोभी दुर्लभ तपस्या तैंने की है- हे महाराज ! वानरदेहसे जो आपने पुण्य किया है वह आपको ज्ञान नहीं है ॥ ८ ॥ जो तुमने परोक्ष वनमें किया है वह अनन्त

हो जायगा परोक्ष उपाधिरहित जो किया जाय वह अनन्त होजाता है ॥ ९ ॥ जो कि तुमने मुखरोगके मिषसे आहार नहीं किया है और वानरी स्वभावसे वनके फल तोडे ॥ १० ॥ और पृथ्वीपर डाले उससे दूसरे मनुष्य तृप्त होगये मूल फल समर्पण किये किन्तु स्वयं भक्षण नहीं किये ॥ ११ ॥ और पानीभी न पिया यही तुम्हारा दुश्चर तप हुआ. फलदानसे तैंने महान् उपकार किया है ॥ १२ ॥ कठिन शीत वात आतप झेलकर वनमें विचरते हुए महातीर्थमें तीन दिनतक स्नान किया ॥ १३ ॥ तुम्हारे कृत्यका यदि कोई लक्ष अंशभी करें तो वह विष्णुपदको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

मुखरोगमिषेणैव नाहारमकरोद्भवान् ॥ कापेयचापलत्वेन फलान्युत्कृत्य वृक्षतः ॥ १० ॥ क्षिप्तानि धरणीपृष्ठे तृप्तास्तैरितरे जनाः ॥ फलं मूलं तथा पर्णं न त्वया भक्षितं क्वचित् ॥ ११ ॥ पानीयमपि नो पीतमेतत्ते दुश्चरं तपः ॥ परोपकारः सुमहान्कृतस्ते फलदानतः ॥ १२ ॥ शीतवातातपा रौद्राः सोढा विचरता वने ॥ महातीर्थवरे रम्ये त्र्यहमाप्लवनं कृतम् ॥ १३ ॥ तव कृत्यस्य लक्षांशं कोट्यंशमपि कश्चन ॥ करोति नरशार्दूलः सोऽपि विष्णुपदं व्रजेत् ॥ १४ ॥ किं पुनस्तव कृत्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ॥ यस्त्वया साधितः स्वार्थो नान्यः कर्तुं क्षमः क्षितौ ॥ १५ ॥ न विज्ञातः कथं देवप्रभावः पौरुषोत्तमः ॥ यस्मिन्नेकोपवासेन मुच्यते कोटिकिल्बिषैः ॥ १६ ॥ नानेन सदृशं पुण्यमस्ति लोकत्रयेऽपि च ॥ नैतत्तुल्यं शुभं चित्तं नैतत्तुल्यं हरिप्रियम् ॥ १७ ॥ ते धन्याः कृतपुण्यास्ते त एव भुवि मानवाः ॥ नाविज्ञातो गतो येषां मासः श्रीपुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

फिर आपकी बराबर तप करनेसे किस प्रकार शाश्वती मुक्ति न होगी जो आपने अर्थ साधन किया वह तेरे सिवाय कोई नहीं करसकता है ॥ १५ ॥ हे देव ! तुमने पुरुषोत्तम मासका प्रभाव क्यों नहीं जाना जिसके एक दिन उपासना करनेपरभी अनेक पाप दूर होजाते हैं ॥ १६ ॥ इसकी बराबर त्रिलोकीमेंभी पुण्य नहीं है कोई इसकी समान सुन्दर चित्त और न कोई इसकी समान हरिका प्रिय है ॥ १७ ॥ वे मनुष्य धन्य और कृतपुण्य हैं

वेही पृथ्वीमें श्रेष्ठ हैं तैंने पुरुषोत्तम मासभी वीता न जाना ॥ १८ ॥ उनका जीना सफल है उनकी क्रिया सफल है उनके ब्रह्मचर्य और अध्ययन सफल हैं ॥ १९ ॥ दान पितृकार्य सूर्य यज्ञ निर्मल कर्मयुक्त भारतखण्डमें जन्म होना बडा दुर्लभ है ॥ २० ॥ जिनका यह पूर्ण मास स्नान दान और जपमें वीतगया है वही सब साधनसे पुरुषश्रेष्ठ वैष्णव हैं ॥ २१ ॥ वह पापकर्ममें निरत अजितेन्द्रिय धिक्कारके योग्य है जो विष्णुके प्रिय मासमें कोई सत्क्रिया नहीं करता है ॥२२॥ इस प्रकार वह विष्णुदूतोंके वचन श्रवण कर अत्यन्त चकित होकर रोमांचितशरीर होगया ॥ २३ ॥

सफलं जीवितं तेषां सफलाश्च परिक्रियाः ॥ ब्रह्मचर्यादिवृत्तानि श्रुतान्यध्ययनानि च ॥ १९॥ दानानि पितृकार्याणि सौराणि क्रतवोऽमलाः ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म भूखंडे भारते शुभे ॥ २० ॥ येषां सर्वोत्तमो मासः स्नानदानजपैर्गतः ॥ सर्वसाधनभूयिष्ठो वैष्णवः पुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥ धिगसौ पापको रौद्रः पापकार्यजितेंद्रियः ॥ विष्णुप्रियतमे मासे सत्क्रियावर्जितश्च यः ॥२२॥ इति तद्वर्णितं विष्णुदूताभ्यामनुभूय सः ॥ अत्यंतचकितो हृष्टः पुलकांचितसद्वपुः ॥२३॥ तीर्थदैवतमामंत्र्य गिरिं कालंजरं ततः ॥ वनदेवीं वनस्थांश्च सर्वान्गुल्मलतातरून् ॥२४॥ ततः प्रदक्षिणीकृत्वा विमानं सुरदुर्लभम् ॥ समारुह्य चतुर्बाहुर्विचित्रवपुषा लसन् ॥ २५ ॥ पश्यत्सु सुरवृंदेषु नानालेखगणार्चितः ॥ नानावादित्रनिनदैः कुसुमासारवीजितः ॥ २६ ॥ साकं जयारवैरुच्चैर्वेष्टितः प्रमदाजनैः ॥ स्वर्गसीमंतिनीलौल्यकारिसद्रूपसंपदा ॥ २७ ॥ रोचन्वै विबुधाँल्लोकांश्चतुरापांगवीक्षितः ॥ सेंद्ररुद्रादिभिर्देवैः सम्यक्च परिपूजितः॥ २८ ॥

तीर्थ देवता और कालंजर पर्वतको आमन्त्रण करके वनदेवी देवता सब गुल्मलता वृक्षोंको ॥ २४ ॥ प्रदक्षिणा कर देवताओंके दुर्लभ विमानमें चढ विचित्र शरीर चारभुजा ॥ २५ ॥ अनेक देवताओंको देख उनसे पूजित हो अनेक बाजों और फूलोंसे अर्चित हो ॥ २६ ॥ अनेक प्रकारके प्रमदाजनोंसे युक्त स्वर्गकी स्त्रियोंके रूपसंपदासे चलायमान ॥२७॥ अनेक प्रकारकी चतुरतासे वीक्षित इन्द्र रुद्रादि देवताओंसे अच्छी प्रकार पूजित हो ॥ २८ ॥

विष्णुके परमपदको गया; जहांसे फिर कोई जाकर नहीं लौटता और संन्यासी जहां अनेक सुख भोगते हैं ॥ २९ ॥ जहां कालचक्रका भय और जरा मृत्यु नहीं है। शोक मात्सर्य आधि व्याधि कलि भ्रम जहां नहीं है ॥ ३०॥ न मोह न अशुभबुद्धि न दुःख न लोभ रोग आदिक हैं तम रज सत्व जहां नहीं हैं सत रज मिलाहुआ जहां वर्तता है ॥ ३१ ॥ वहां यह देव कपित्व शरीर त्यागनकर महासुख पाकर नारायणरूपसे रमण करने लगा ॥ ३२ ॥

जगाम नित्याधिष्ण्यानि यद्विष्णोः परमं पदम् ॥ यद्गत्वातीव मोदंते शुद्धाः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २९ ॥ न यत्र कालचक्रस्य भयं न च जरा मृतिः ॥ न शोको न च मात्सर्यं नाधिर्व्याधिः कलिर्भ्रमः ॥ ३० ॥ न मोहो नाशुभा बुद्धिर्नार्तिर्लोभगदादयः ॥ न तमो न रजः सत्त्वं ताभ्यां मिश्रः प्रवर्तते ॥ ३१ ॥ तत्रासौ चित्रको विप्रस्त्यक्त्वा कपिवपुः क्षणात् ॥ अवाप्य विपुलं सौख्यं रेमे नारायणात्मनः ॥ ३२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं वृत्तांतमात्रेण पुरा वृत्तं यथा द्विजाः ॥ निवेदितं त्वया पृष्टं तव भार्गवनंदन ॥ ३३ ॥ एवं प्रभावो मासस्य विप्रेश पुरुषोत्तमः ॥ किं तेन जायमानेन नार्चितो येन वै हरिः ॥ ३४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये चित्रकस्य वैकुंठप्राप्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ सूत उवाच ॥ त्रिदिवस्थाः प्रशंसंति सर्वे देवाः सवासवाः ॥ केनचित्पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ॥ १ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकारसे उस ब्राह्मणका चरित्र हुआ है। हे भार्गवनंदन ! जो आपने पूछा सो तुमसे वर्णन किया ॥ ३३ ॥ हे विप्र ! इस प्रकार पुरुषोत्तममासका माहात्म्य है उसके उत्पन्न होनेसे क्या है जिसने नारायणका चिन्तन नहीं किया है ॥ ३४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तम-माहात्म्ये चित्रकस्य वैकुंठप्राप्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ सूतजी बोले ॥ स्वर्गमें इंद्रादिदेवता इस बातकी इच्छा किया

करते हैं कि, किसी पुण्यके प्रतापसे हमारा मर्त्यलोकमें जन्म हो ॥ १ ॥ इस भारतवर्षमें जन्म पानेसे सब साधन बनजाते हैं उस समय सब प्रकारसे नारायणके मासकी सेवा करैं ॥ २ ॥ यह पुरुषोत्तममास एकही बार सेवनसे नारायणके लोककी प्राप्ति करता है लज्जारहित मनुष्य इस प्रकारके मासकी सेवा नहीं करते हैं ॥ ३ ॥ वे मृत्यु जन्मको प्राप्त होनेवाले किस प्रकार मुक्तिको प्राप्त होंगे ? न उनको पुत्र और न मुक्तिका सुख प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ कुएके रहठघरोहेकी समान उनका वारंवार गमनागमन होताहै ॥ ५ ॥ फिर वे नारायणके दूत परस्पर जाते हुए एक दूसरेसे

सर्वसाधनसम्पन्नेऽजनाभे खण्डनायके ॥ तर्हि सर्वात्मना मासं सेवयामो हरिप्रियम् ॥ २ ॥ हरिलोकप्रदं पुण्यमंजसा पुरुषोत्तमम् ॥ ईदृशं मानवा मासं नार्चयंति गतह्रियः ॥३॥ कथं मुक्ता भविष्यंति मृत्युजन्मभवाद्द्विजाः ॥ न च पुत्रसुखं तेषां न च मुक्तिः कदाचन ॥ ४ ॥ यातं यातं प्रकुर्वंति कूपकुंभभ्रामिर्यथा ॥ विमानगाय विप्राय चित्रकाय महात्मने ॥ ५ ॥ पुनरूचतुरन्योन्यं प्रेम्णा मासस्य सद्विधिम् ॥ हरेर्दूतौ गच्छमानौ तद्गाथाकृतमानसौ ॥ ६ ॥ अस्मिन्मासे द्विजश्रेष्ठा नासद्वस्त्राणि धारयेत् ॥ न पिबेत्परपानीयं न स्नायात्परवारिणा ॥ ७ ॥ न स्वपेत्परशय्यायां न च सेवेत्पराग्निकम् ॥ परान्नं नोपभुंजीत न कुर्वीत परक्रियाः ॥ ८ ॥ परकीयान्न सेवेत वस्त्रोपानत्कमंडलून् ॥ नार्चयेद्देवताः सर्वा धिया विषमया क्वचित् ॥ ९ ॥ परापवादान्न ब्रूयाच्छृणुयान्नानृतं वदेत् ॥ सर्वान्नं नोपभुंजीत शक्तश्चेत्तद्धुपोषणम् ॥ १० ॥

पुरुषोत्तममासकी विधि कहते चले ॥ ६ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इस महीनेमें न तौ असद्वस्त्र धारण करे न दूसरेका जल पीये न दूसरेके लाये जलसे स्नान करे॥ ७ ॥ न दूसरेकी शय्यामें सोवे न दूसरेकी अग्निका सेवन करे न पराया अन्न खाय न पराई क्रिया करे ॥ ८ ॥ दूसरेके वस्त्र जूते कमंडलु आदिका सेवन न करे, विषमबुद्धिसे देवताओंकी अर्चा न करे ॥ ९ ॥ न पराई निंदा करे, न सुने, झूंठ न बोले सम्पूर्ण अन्न न खाय जो फलादिसे देह धारण कर

सके ॥ १० ॥ वित्तशाठ्य न करता हुआ ब्राह्मणोंको अन्न धन दे. धन होनेपर जो दान नहीं करता वह नरकगामी होता है ॥ ११ ॥ नित्य २ ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन देकर जो शेष भोजन आप करता है उसके पुण्यका फल सुनो ॥ १२ ॥ जिसने ब्राह्मणात्मक नारायणको तृप्त किया उसने त्रिलोकीको तृप्त करादिया जिन्होंने पूजा अच्छादनसे नित्य ब्राह्मणको तृप्त किया है ॥ १३ ॥ अनेक प्रकारके मोदक नाना ताम्बूलके बीडे वस्त्र छोटे बडे भोग सुगंधित अच्छे चंदन ॥ १४ ॥ कर्पूर अगर कस्तूरी आदि द्रव्योंसे ब्राह्मणोंका पूजन करे। इस प्रकार जिसने पुरुषोत्तममासमें विष्णुका अर्चन

वित्तशाठ्यमकुर्वाणो धनं दद्याद्द्विजातये ॥ विद्यमाने धने दौस्थ्यं कुर्वन्निरयगर्भगः ॥ ११ ॥ नित्यं नित्यं द्विजेंद्रेषु दत्त्वा भोजनमुत्तमम् ॥ भुनक्ति शेषमात्रं च तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १२ ॥ ब्रह्मांडं तर्पितं तेन येन विप्रात्मको हरिः ॥ तोषितः श्रद्धया विप्र पूजनाच्छादनाशनैः ॥ १३ ॥ मोदकैर्मधुरैर्नाना भक्ष्यैस्तांबूलवीटकैः ॥ वस्त्रैरुच्चावचैर्भोगैः सुगंधैश्चंदनैः शुभैः ॥ १४ ॥ कर्पूरागरुकस्तूरीकुंकुमैरर्चयेद्द्विजान् ॥ एवं यैरार्चिता विप्रा मासेऽस्मिन्पुरुषोत्तमे ॥ १५ ॥ स्वर्णभारसहस्रस्य दत्ते यत्फलमाप्नुयात् ॥ प्रत्यहं राजसूयस्य वाजिमेधसवस्यच ॥ १६ ॥ सदक्षिणं फलं लब्धमंजसैव द्विजेश्वर ॥ किंचिदप्यधिकं मासि कुर्वतां पुरुषोत्तमे ॥१७॥ विष्णुर्वदति विप्रेभ्यो मत्प्रियो नास्ति कश्चन ॥ मासेनानेन सदृशः सत्यमेतन्न चान्यथा ॥१८॥ धन्यास्ते पुरुषा लोके ये नित्यं पूजयंति माम् ॥ न ते धन्याः कदाचित्स्युर्मासे पूजनवर्जिताः ॥ १९ ॥

किया है ॥ १५ ॥ जो सौ सहस्र सुवर्ण दानका फल है वा राजसूय और अश्वमेधका जो फल है ॥ १६ ॥ और सौ अश्वमेधका जो फल है उससे अधिक पुरुषोत्तम मासका फल है ॥ १७ ॥ विष्णु भगवान्‌ने द्विजसे यह वार्ता कहदी है कि, इस माससे अधिक मुझे अन्य वस्तु प्रिय नहीं है यह सत्य है अन्यथा नहीं है ॥ १८ ॥ लोकमें वे पुरुष धन्य हैं जो नित्य मेरी पूजा करते हैं इस मासके पूजन किये विना लोग धन्य नहीं

मासस्यैतस्य ये भक्तास्ते यांति परमां गतिम् ॥ तेषां मुक्तिप्रदः साक्षादहं तिष्ठामि पार्श्वतः ॥ २० ॥ तस्माद्भजत मे भक्ताः पवित्रं पुरुषोत्तमम् ॥ लोकानंत्यप्रदातारं जन्ममृत्युनिवारकम् ॥२१॥ इन्द्रद्युम्नः शतद्युम्नो नहुषश्च भगीरथः ॥ मनोरथसमुद्रांतमीयुरन्येऽप्यनकेशः ॥ २२ ॥ मन्त्रराजमिमं विप्र शृणु ते वच्मि दुर्लभम् ॥ अन्येरितोऽपि यच्छ्रुत्वा मुच्यते भ्रूणहत्यया ॥ २३ ॥ नमो भगवते वासुदेवाय महत्या श्रद्धया युतः ॥ २४ ॥ यद्वा नारायणायेति नमः प्रणवपूर्वकम् ॥ अथवा नमो विष्णवेति जपेत्प्रणवपूर्वकम् ॥ २५ ॥ यद्वा पंचाक्षरो जापः कार्यः श्रद्धासमन्वितैः ॥ यस्मिञ्छ्रद्धा भवेद्यस्य तेनैव तोषयेत्प्रभुम् ॥ २६ ॥ लक्षमेकं जपेदेनं मासेऽस्मिन्मम वल्लभम् ॥ श्यामाञ्श्वेतान्मधुतिलाञ्जुहुयान्निर्जराननने ॥ २७ ॥ तर्पणं ब्रह्मभोज्यं च जपं कुर्याद्दशांशतः ॥ मंत्रं जपेदृषिर्देवश्छन्दोबीजान्वितं सदा ॥ २८ ॥ न्यासेन विनियोगेन जप्तश्चेत्किल्बिषापहः ॥ षडंगेषु न्यसेन्मंत्रं प्रणवाक्षरसंयुतम् ॥ २९ ॥

होते ॥ १९ ॥ जो इसके भक्त हैं वे परमगतिको प्राप्त होते हैं. मैं सदा मुक्तिका देनेवाला स्थित हूं ॥२०॥ इस कारण मेरे भक्त इस पवित्र मासका भजन करते हैं मैं इनको जन्म मृत्युके निवारण करनेवाले श्रेष्ठ लोक देताहूं ॥ २१ ॥ इन्द्रद्युम्न शतद्युम्न नहुष भगीरथ यह अनेक अपने मनोरथसमुद्रके पारको प्राप्त हुए हैं ॥ २२॥ हे विप्र ! यह श्रेष्ठ मंत्रराज है सुनो मैं इसे आपके प्रति कहताहूं दूसरे इसको श्रवण कर ब्रह्महत्यासे छूटजाते हैं ॥२३॥ "नमो भगवते वासुदेवाय" इस मंत्रको बडी श्रद्धासे या "ॐ नमो विष्णवे" इस मंत्रको श्रद्धासे जपै ॥२४॥ वा "ॐ नमो नारायणाय" अथवा पंचाक्षरका जप, श्रद्धापूर्वक करना चाहिये जिस मंत्रमें श्रद्धा हो उसीसे प्रभुको सन्तुष्ट करै ॥२५॥२६॥ इस मेरे प्रियमासमें एक लक्ष मंत्रजप करै और काले वा श्वेत तिलोंमें शहत मिलाकर हवन करे ॥२७॥ उसका दशांश तर्पण और ब्राह्मणभोजन करावै. ऋषि देव और छंदोंका उच्चारण कर मंत्र जपै ॥२८॥ और न्यासादि द्वारा पापरहित इस परमपवित्र मन्त्रको जपै प्रणवाक्षरके सहित षडङ्गन्यास कर इस मन्त्रका जप करै ॥ २९ ॥

इस प्रकार जप करनेसे यह प्राणी बहुत शीघ्र संसारसागरके पार होजाता है, इस विधिके करनेसे चारों वर्गकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥ सदा श्यामवर्ण चतुर्भुजरूपका ध्यान करना शंख चक्र गदा पद्मधारी सुंदर भूषण पहरे ॥ ३१ ॥ ऐसा ध्यान करनेसे सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होता है। विशेषकर पुरुषोत्तममासमें सब फल मिलते हैं. हे द्विजराज ! मैं तुम्हारे प्रति यह सब विधान कहताहूं ॥ ३२ ॥ हे ब्राह्मण ! यह कभी किसीके आगे कहना न चाहिये सदा पुरातन श्रवण करना चाहिये ॥ ३३ ॥ जिसके पद श्रवणमात्रसे अनेक पापसमूह नष्ट होजाते हैं. गंगादि श्रेष्ठ नदी सब तीर्थ और सागर ॥ ३४ ॥ नैमिष

एवं जपँल्लभेज्जीवो ह्यंजसा भवमोचनम् ॥ चतुर्वर्गं लभेद्धीरो ह्यनायासेन सर्वथा ॥३०॥ सदा ध्यायेदिदं रूपं श्यामवर्णं चतुर्भुजम् ॥ शंखचक्रगदापद्मजुष्टं भुवनभूषणम् ॥ ३१ ॥ लभेत सकलान्कामान्विशेषात्पुरुषोत्तमे ॥ द्विजराज प्रवक्ष्यामि तुभ्यं विधिमिह शृणु ॥ ३२ ॥ नेदं कस्यापि कथित कदाचिदपि भूसुर ॥ श्रोतव्यमेतत्सततं पुराणमृषिसंस्तुतम् ॥ ३३ ॥ यत्पदश्रुतिमात्रेण नश्यंति पापराशयः ॥ गंगादिसरितः श्रेष्ठाः सर्वतीर्थानि सागराः ॥३४॥ नैमिषादीन्यरण्यानि हिमालयमुखा नगाः ॥ कूपाः कुंडानि गर्त्ताश्च पल्वलानि सरांसि च ॥ ३५ ॥ सुरायतनमुख्यानि तीर्थानि विविधानि च ॥ सुरा रामाः सुरम्याश्च सर्वकिल्बिषकृंतनाः ॥ ३६ ॥ तेषु सर्वेषु सुस्नातो सर्वयागकरः स च ॥ विद्याव्रततपःस्नातः श्रुत्वाख्यानमिदं भवेत् ॥ ३७ ॥ जप्त्वा मनुमिमं विप्र कोटिजन्मकृतापहः ॥ मुच्यते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ ३८ ॥

आदि अरण्य हिमालय आदि पर्वत कूप कुंड गर्त सरोवर छोटे सरोवर ॥ ३५ ॥ देवताओंके प्राप्त किये मुख्य तीर्थ देवताओंकी वाटिका जो पाप दूर करनेवाली हैं ॥ ३६ ॥ वह उन सबमें स्नान करचुका और सब योगका करनेवाला है. सब विद्या व्रत और तपमें स्नान करचुका जिसने यह आख्यान सुनलिया ॥ ३७ ॥ हे मुनिराज ! कोटि जन्मके उसके पाप दूर होजाते हैं और मुक्त हो जाता है इसमें सन्देह नहीं यह सत्य है ॥ ३८ ॥

सूतजी बोले ॥ इस प्रकारके वचन सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और विमानके ऊपर चढकर हरिके निवासस्थान विष्णुकी सायुज्यताको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ निरंतर यह पुराण सुननेसे अत्यन्त शुद्धिकी प्राप्ति होती है. धर्म अर्थ काम मोक्ष वाक्शुद्धि तथा अतुलरूपता प्राप्त होती है ॥ ४० ॥ धन यश सुख पुत्र पौत्र आरोग्य प्रताप वांछित फल आयुष्य मोक्ष कुलवृद्धिको नारायण प्रदान करते हैं ॥ ४१ ॥ यह वचन सुनकर शौनकादि

सूत उवाच ॥ द्विजेश एतच्चरितं निशम्य द्विजोत्तमः प्रीतमना बभूव ॥ विमानमारुह्य जगाम विष्णोः सारूप्यमासाद्य हरेर्निवासम् ॥ ३९ ॥ निरंतरं श्राव्यमिदं पुराणमत्यंतशुद्धिं पठितं प्रयच्छेत् ॥ धर्मार्थकामानपुनर्भवं च यच्छेत वाक्शुद्धिमतुल्यरूपाम् ॥४०॥ धन्यं यशस्यं सुखपुत्रपौत्रारोग्यप्रतापाद्भुतवांछितं च ॥ आयुष्यमोक्षं कुलवृद्धिमुग्रां ददाति लोकं प्रचुरं द्विजेशाः ॥४१॥ श्रुत्वेति विप्राः किल शौनकाद्याः सूतं तदोचुर्विनयानतास्ते ॥ धन्योऽसि धन्योऽसि चिरंतनोऽसि जगत्पवित्रीकरणोऽसि सूत ॥४२॥ यथैव विष्णोर्जगदार्तिहारि नाम त्वदीयं च तथैव सूत ॥ त्वं नो गुरुः पूज्यतमश्च विष्णोर्भक्तिप्रदस्त्वं किमु ते वदामः ॥४३॥ तवास्तु कीर्तिर्जगति प्रशस्ता छन्दांसि यावद्धि ततानि वीर ॥ तावत्प्रतापोऽस्तु तवोग्रतेजसस्तवानृणा नो वयमत्र जातु ॥४४॥ तवाननोद्गीतहरिप्रधानश्लोकाक्षराणां प्रतिकोटिदानैः ॥ स्यामो नृणां नापि समुद्रनेमिप्रदाः सुराणामपि राज्यदानात् ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण कहने लगे हे सूत ! तुम धन्य हो धन्य हो तुम जगत्के पवित्र करनेवाले हो ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार विष्णु जगत्के दुःख हरनेवाले हैं हे सूत ! इसी प्रकारका नाम तुम्हारा है। तुम हमारे गुरु पूज्यतम और विष्णुकी भक्ति देनेवाले हो हम तुमसे क्या कहैं ॥ ४३ ॥ तुम्हारी कीर्ति जगत्में बडी प्रशस्त है हे वीर ! जिस प्रकार छन्द हैं तैसेही तुम्हारा प्रताप उग्रतेजसे युक्त हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं ॥ ४४ ॥ तुम्हारे मुखसे निकले हुए नारायणके

नामरूपी श्लोक अक्षरके प्रति कोटि दानसे हम अनृण नहीं । समुद्रपर्यन्त पृथ्वीदानसेभी उऋण नहीं होसकते ॥ ४५ ॥ हे मनोज्ञ ! विस्तारसे आपने चरित्र सुनाया हम आपसे प्रसन्न हैं हे साधो ! इसी बहानेसे हमें आपका दर्शन हुआ आप शीघ्र आनेको सुखसे जाइये ॥ ४६ ॥ वह बुद्धिमान् इस प्रकार ब्राह्मणोंके आशीर्वादको ग्रहण कर उनकी प्रदक्षिणा करनेसे प्रसन्न हो उन्हें नमस्कार कर अपने स्थानको गये और ब्राह्मण अपने स्थानमें

प्रयाहि मा विस्मर नो मनोज्ञ वयं च ते प्रीतियुता भवामः ॥ संदर्शनं ते निमिषेण साधो सुखेन गच्छ स्वचिरागमाय ॥ ४६ ॥ इत्याशिषः संप्रति गृह्य धीमान्प्रदक्षिणावर्त्तनजातहर्षः ॥ नत्वा जगामाशु धरासुरेशान्स्वधामविप्राश्चिताः स्म तस्थुः ॥ ४७ ॥ अहो किमेत्कथितं द्विजेंद्रा वरिष्ठमाख्यानमिदं पुराणम् ॥ मासस्य दिव्यं पुरुषोत्तमस्य माहात्म्यमग्र्यं जगदार्तिहारि ॥ ४८ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पुरुषोत्तममाहात्म्ये नियमनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ संपूर्णमिदमधिकमासमाहात्म्यम् ॥

स्थित हुए ॥४७॥ अहो ब्राह्मणो ! तुमने सुंदर यह पुराण सुना यह बडा श्रेष्ठ है इस श्रेष्ठ आख्यानको श्रवण करो, यह पुरुषोत्तममास जगत्का दुःख दूर करनेवाला है ॥ ४८ ॥ इति श्रीपुरुषोत्तममाहात्म्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां नियमनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा–आदिपुरुष अव्यक्त अज, गुणागार गुणधाम ॥ जगपालक घालक असुर, जगद्विदित गुणग्राम ॥ १ ॥
हरिहररूप अनन्त प्रभु, माया गुण गोपार ॥ माधव अशरणके शरण, पुनि दायक फल चार ॥ २ ॥
रामरूप बहुरूप प्रभु, भक्तनके शिरताज ॥ विष्णु जिष्णु मण्डन भुवन, जनके साधत काज ॥ ३ ॥
वासुदेव व्यापक सबल, विबुधगणनके ईश ॥ हरत पीर जनकी तुरत, जबहिं नवावत शीश ॥ ४ ॥

है यह प्रभुकी बानि नित, राखत जनकी लाज ॥ सोइ प्रभु मम सब भाँतिसे, पूरे करि हैं काज ॥ ५ ॥
प्रेमसहित कर जोरकर, तिनके चरण मनाय ॥ एहि पुरुषोत्तममासकर, टीका कियो बनाय ॥ ६ ॥
संवत गुण शर अंक विधु, ज्येष्ठ कृष्ण रविवार ॥ छठ तिथि सब विधि सुख करनि, पूरण ग्रन्थ विचार ॥ ७ ॥
दीन बंधु अशरण शरण, सकल सुमंगल मूल ॥ प्रभु ज्वालाप्रसादपर, सदा रहहु अनुकूल ॥ ८ ॥
वसत रामगंगा निकट, शहर मुरादाबाद ॥ गुण गावत श्रीकृष्णके, नित ज्वालापरसाद ॥ ९ ॥



इदं पुस्तकं कल्याणनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मज-गङ्गाविष्णोः अध्यक्ष " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " मुद्रणालये मेनेजर पंडित-शिवदुलारे वाजपेयी इत्यनेन स्वाम्यर्थं मुद्रितं प्रकाशितं च। संवत् १९७७, शके १८४२.